



पुष्टिमार्गीय सेवा पद्धति और कृष्ण भक्त कवियों में उसकी अभिव्यक्ति

(१६वें-१७वें शताब्दी)



अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ की
पी० एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

१६७७



निर्देशक :—

डा० गैदालाल शर्मा

एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,

अलीगढ़ ।

प्रस्तुतकर्त्री :—

श्रीमती सावित्रीदेवी शर्मा

एम० ए० (हिन्दी)

शोध-छात्रा, हिन्दी-विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,

अलीगढ़ ।

C e r t i f i c a t e

Certified that the thesis entitled " Pushtimargiya
Jevn Paddhati Aur Krishna Bhakta Kavion Men Uski Adhiviyakti "
presented by Mrs. Savitri Devi Sharma is an original work
for Ph.D. It is the result of Mrs. Savitri Devi Sharma's
own efforts. She has fulfilled all the conditions laid down
in the Ordinances of MU in this respect.

CALL No. { _____ ACC. No. T 1832

AUTHOR _____
TITLE _____

THESIS SECTION

[Signature]
(G.L. SHARMA)
Supervisor

THE BOOK MUST BE CHECKED AT THE TIME
OF ISSUE



**MAULANA AZAD LIBRARY
ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY**

RULES:—

1. The Book must be returned on the date stamped above.
2. A fine of **Re. 1-00** per volume per day shall be charged for text-books and **10 Paise** per volume per day for general books kept over-due.

भूमिका

ब्रज और ब्रज साहित्य का महत्व सर्वविदित है । १६वीं-१७वीं शताब्दी का कृष्णभक्त काव्य भक्ति धर्म और कर्म का उज्ज्वल प्रमाण है । आचार्य वल्लभ ने पुष्टिमार्गीय भक्ति को सर्वविदित महत्व प्रदान किया है । भावना ही इस पुष्टिमार्ग का प्राण है । भाव साधना को प्रसूता देते हुए सेवा को इस अद्भुत रीति को उनके विशेष अनुरागी भक्त कवि ही जान पार हैं । पुष्टिमार्ग के परब्रह्म श्रीकृष्ण का अनुग्रह ही एकमात्र वह साधन है जो स्वयं साध्य के रूप में प्रकट होता है । ' पुष्टिः पोषाणां, पोषाणां तदनुग्रह ' आदि कथन पुष्टि के भगवद्गुण के ही प्रतीक हैं । आचार्य वल्लभ मयादा मार्ग से पुष्टि मार्ग वैशिष्ट्य ब्रह्मसूत्र पर लिखे अपने अणुभाष्य में स्पष्ट लिखा है - ' अतएव पुष्टिमार्गं गीकृतम् ज्ञानादिनैरपेक्ष्यं, मयादि गीकृतस्य तु तदुपेक्षात् त्वं च मुक्तमिति भावः ' ।

पुष्टि मार्ग जिसमें पुष्टि पुरुषोत्तम श्रीमगवान् कृष्ण मनसा, वाचा, कर्मणा एवं आत्मना सह समर्पणशील जीवों का समुद्धार अपने पोषाण भाव 'अनुग्रह' से कर देते हैं । समस्त विषयों का परिज्याग कर सर्वभाव से प्रभु के चरणों में देह, गैह आदि का समर्पण ही पुष्टिमार्ग है जो केवल अनुग्रह से ही साध्य है ।

समस्त विषयः त्यागः सर्वभावैर्न यत्रहि ।

समर्पणं च देहादेः पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥

श्रीकृष्ण शरणां मम अष्टाक्षर मंत्र हमें ब्रह्म संबंध की पूर्ण पीठिका है । आत्मनिवेद के पश्चात् जोव अपना सर्वस्व भगवान् श्रीकृष्ण को समर्पित के देता है और सर्वात्मना भगवद्दास बन कर ही रहता है । श्रीकृष्ण की सेवा के अतिरिक्त भक्त न कोई पृथक् अस्तित्व है न ही पृथक् कर्म । पुष्टिमार्गीय सेवा के प्रमुख तत्वों में राग, भोग एवं श्रृंगार है । नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ही

सर्वभावेन भाजनीय हैं और सेवनीय हैं मंगलमय प्रभु की सेवा ही सर्वोत्कृष्ट धर्म है । यह सेवा रूप धर्म स्वयं रस है और सेवारत जीव को अलीकिक सुख की अनुभूति सर्वथा सम्भव है । सेवाधर्म तत्त्वाणा ही परमानन्द अनुभूति कराता है । सेवा धर्म सब बंधनों से मुक्त कर ब्रजाधोश श्रीकृष्ण में विमुक्त कर देता है -

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो ब्रजाधियः

स्वस्याममव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचन ।

यही पुष्टिमार्ग और उसकी सेवा भावना कृष्ण भक्त कवियों के साहित्य में प्रतिफलित है अतः विषय को गम्भीरता एवं महत्व को लक्ष्य करते हुए प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय निर्धारित किया गया है । विषय दृष्टि से सुविधा के अनुसार प्रबन्ध को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है ।

प्रथम अध्याय में पुष्टिमार्ग के नामकरण के विषय में बताया गया है तथा पुष्टि भक्ति के स्वरूप के विषय का उल्लेख किया गया है । पुष्टि-मिश्रित पुष्टि भक्त कौन - कौन से हुए, इन्होंने पुष्टि सम्प्रदायों की क्या सेवा को आदि पर प्रकाश डाला गया है । सूरदास पुष्टिमागीय भक्ति का भी विवेचन है । श्रीकृष्ण को सर्वात्म्य मन से सदा सेवा करना ही परम धर्म है और यही काम है तथा यही मोक्ष है । सेव्य स्वरूप कौन-कौन से हैं और उसकी पूजा का किस-किस पर भार अर्थात् उन सेव्य स्वरूपों का अधिकारी कौन है ? इस पर प्रकाश डाला गया है । मयादा मागीय पूजा का उपासना स्वरूप और सेवा भावना से उसका अन्तर भी स्पष्ट किया गया है तथा मयादा मागीय तथा पुष्टिमागीय सेवा पद्धति के स्त्रीगत विधानों के विषयमें अनुसंधान भी किया गया है ।

द्वितीय अध्याय में सेवा के प्रकार और स्वरूप का विवेचन किया गया है, जिसमें पुष्टिमागीय उपासना, सेवा भावना को पूर्ण व्याख्या है तथा

पुष्टिमागीय सेवा भावना के विषय में अनेकों विद्वानों के मत हैं। पुष्टि-मागीय सेवा को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं - तनुजा, चित्तजा और मानसी। इनके द्वारा हो भक्त भगवान के ध्यान में हमारा चित्त सलग्न हो सकता है। भागवत की उपासना तथा सेवा भावना के स्वरूप का संक्षिप्त विवेचन है।

तृतीय अध्याय में तनुजा सेवा (तन से की जाने वाली सेवा) का निरूपण किया गया है। तनुजा के अन्तर्गत व्यावहारिक (नित्य नैमित्तिक सेवा) ललित (श्रृंगार तथा मंदिर का परिमार्जन आदि) और संकीर्तन - जो पुष्टिमागीय भक्तों के प्रसुप्त अंग थे आदि का विवरण है। इस अध्याय में राग, भोग तथा श्रृंगार पर विशेष बल दिया है। यह भी स्पष्ट किया गया है कि अष्टायाम सेवा की पद्धति वल्लभ सम्प्रदाय से प्रारंभ हुई। जो कि आज तक प्रचलित है।

चतुर्थ अध्याय में १६वीं-१७वीं शताब्दी के कृष्ण भक्त कवियों का व्यक्तित्व तथा कृतित्व उल्लिखित है जिसमें उनके जीवन संबंधी दृष्टान्त रचना काल तथा उनके द्वारा रचित काव्य ग्रन्थों पर प्रकाश डाला गया है। उदाहरणार्थ वल्लभ सम्प्रदायों कवियों से लेकर कुछ दूसरे सम्प्रदायों के कुछ कवि जैसे अष्टछापों समस्त कवि सुरदास, कृष्णदास आदि हरिव्यास जो, श्री भट्ट जी, स्वामी हरिदास जी। विट्ठलविपुल जो आदि कवियों का संक्षिप्त उल्लेख है।

पंचम अध्याय में १६वीं-१७वीं शताब्दी के कवियों में सेवा भावना को अभिव्यक्ति का उल्लेख है, इसमें अनेकों कवियों के उदाहरणों द्वारा सेवा भावना का स्थान निर्धारित किया गया है। अष्टायाम सेवा को ही अनेकों कृष्णभक्त कवियों ने अपनाया है। कहीं यदि अन्तर है तो वह बहुत सूक्ष्म सा हो है। अध्याय के प्रारंभ में उस उपम को परिस्थितियों का उल्लेख है। धर्म को जो पद्धतियां वल्लभ सम्प्रदाय के पहले से चली आ रहा थीं, उसमें

वल्लभाचार्य तथा विट्ठलनाथ जो न परिवर्तन को आवश्यकता अनुभव की । इसी कारण उन्होंने अपने एक नयी सेवा पद्धति को जन्म दिया जिसके कारण पतन को और जाती हुई जनता भगवान को और उन्मुख होती गई ।

षाष्ठम अध्याय में खण्ड 'क' भगवतोक्त स्तुतियों का पुष्टि सम्प्रदाय पर प्रभाव (१६वीं-१७वीं शताब्दी के कवियों पर पूर्ववर्ती प्रभाव) दिखाया गया है । इसी अध्याय के खण्ड 'ख' में कृष्ण भक्त कवियों की सेवा भावनात्मक परवर्ती कृष्ण भक्त कवियों जैसे रसखान, मोराबाई, रीति-काल के कवि घनानंद, मतिराम, देव, विहारो आदि प्रमुख कवियों पर क्या क्या प्रभाव पड़ा, का उल्लेख है । आधुनिक काल के कृष्ण भक्त प्रसिद्ध कवि बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर, ललितेश आदि प्रमुख कवियों को लिया गया है तथा तुलनात्मक बदाहरणों से प्रभाव प्रमाणित किया गया है ।

सप्तम अध्याय में अन्य सेवा पद्धतियों से पुष्टिमागीय सेवा पद्धति को तुलना प्रदर्शित की गई है तथा अष्टम अध्याय उपसंहार के रूप में परवर्ती कवियों पर प्रभाव दिखाया गया है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के विषय चयन और लेखन का श्रेय मेरे पूज्य चाचा जी डा० हरवंशलाल शर्मा को है जिनके आध्यात्मिक और बौद्धिक सफल जीवन का प्रभाव मुझ पर शैशव से हो पड़ा है । उनके वात्सल्य स्नेह की शीतल और स्निग्ध छाया से हो मुझे कार्य करने की प्रेरणा मिली है । उनकी सगी भतीजी होने का मुझे गौरव प्राप्त है । मेरा यह कार्य श्रद्धेय डा० गंदालाल शर्मा के निदेशन में हुआ है । इसके साथ ही साथ प्रो० विजयेंद्र स्नातक, प्रो० विष्णु पाल सिंह, प्रो० गोवर्धनाथ शुक्ल, प्रो० भगवतो प्रसाद सिंह, डा० शिवशंकर शर्मा राकेश आदि महानुभावों के भी समय-समय पर सुझाव और परामर्श देकर जो मेरा मार्ग दर्शन किया है उसके लिए मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । इसमें जो कुछ उपलब्धि है वह विद्वानों के विचार और कृतियों को है और

जो कुछ त्रुटियाँ हैं वह मेरी अपनो हैं । अंत में पुनः उन सब विद्वानों को जिनको कृति और विचारों से सहायता लेकर लाभ उठाया है, आधार प्रदर्शित करना पुनीत कर्तव्य समझतो हूँ । पुष्टिमागेय सेवा भावना के अध्ययन में पाठकों को यदि इस ग्रन्थ से किंचित् भी सहायता मिली तो मैं इसे विद्वानों का ही आशोवदि समझूँगा ।

विनीता

१ सावित्री देवी शर्मा

दिनांक जुलाई, १९७७

(सावित्री देवी शर्मा)

विषय-सूची

पुष्टिमागीय सेवा पद्धति और कृष्णामक्त कवियों में उसकी अभिव्यक्ति
(१६वीं - १७वीं शताब्दी)

१- मूमिका

२- प्रथम अध्याय

- पुष्टिमागीय उपासना का स्वरूप विवेचनः

(अ)- सेवा स्वरूपों का वर्णन-विधान,
म्यादा और पुष्टि का तात्त्विक
अन्तर ।

(ब)- म्यादामागीय पूजा या उपासना
का स्वरूप और सेवा - भावना
से उसका अन्तर ।

(स)- पुष्टिमागीय सेवा-पद्धति,
स्रोत-विधान ।

३- द्वितीय अध्याय

- सेवा के प्रकार और स्वरूप -

१- तनुजा

२- वित्तबा

३- मानसी

४- तृतीय अध्याय

- तनुजा के प्रकार और स्वरूप -

१- व्यावहारिक

२- ललित

३- संगीत-कीर्तन

५- चतुर्थ अध्याय

- १६वीं - १७वीं शताब्दी के कृष्णामक्त
कवि -

१- व्यक्तित्व

२- कृतित्व

६- पंचम अध्याय

- १६वीं - १७वीं शताब्दी के कृष्ण
भक्त कवियों में सेवा-भावना की
अभिव्यक्ति ।

७- षष्ठ अध्याय

- १६वीं - १७वीं शताब्दी के कृष्ण
भक्त कवियों पर पूर्ववर्ती प्रभाव

८- सप्तम अध्याय

- पुष्टिमागीय सेवा पद्धति की अन्य
सेवा पद्धतियों से तुलना

९- अष्टम अध्याय

- उपसंहार :
परवर्ती कवियों पर प्रभाव

प्रथम अध्याय

पुष्टिमागीय उपासना का

स्वरूप विवेचन :

(अ) सेव्य स्वरूपों का अर्वा-विधान,
मयादा और पुष्टि का तात्त्विक
अन्तर

(ब) मयादा-मागीय पूजा या उपासना
का स्वरूप और सेवा भावना से
उसका अन्तर

(स) पुष्टिमागीय सेवा-पद्धति
स्रोत-विधान

प्रथम अध्याय

पुष्टिमागीय उपासना का स्वरूप विवेचन -

(अ) सेवा स्वरूपों का अर्चा-विधान

मयादा और पुष्टि का तात्त्विक अन्तर

(ब) मयादा-मागीय पूजा या उपासना का स्वरूप और सेवा भावना से उसका अन्तर

(स) पुष्टिमागीय सेवा पद्धति -

स्रोत-विधान

पुष्टिमागीय सेवा का स्वरूप -

आचार्य वल्लभ ने अपने सिद्धान्तों को अधिकाधिक सूत्रात्मक रूपों में प्रस्तुत किया है। इन सूत्रों के गहन तथा विस्तृत अर्थ निकलते हैं। इन्होंने पुष्टिमागी के वैभव को समृद्ध एवं विस्तृत बनाया तथा पुष्टिमागीय सेवा इस समय में अपना मूल रूप धारण कर चुकी थी।

षाडश ग्रन्थों के क्रम में सिद्धान्त मुक्तावली का तृतीय स्थान है। इसके पहले श्लोक में आचार्य ने सेवा करने का ऋ आदेश दिया है। इससे पूर्व के यमुनाष्टक और बालबोध नामक दो अन्य ग्रन्थ आते हैं। यमुनाष्टक के अंत में आचार्य जी के कथनानुसार स्वभाव-विजय का अर्थ है। हमारे अहंता ममत्तानय विपरीत स्वभाव में परिवर्तन आ जाना जोव सांसारिक बंधनों से जकड़ा हुआ है परन्तु प्रभु सेवा के लिए सर्व प्रथम स्वभाव पर विजय प्राप्त कर लेना है। अपने द्वितीय ग्रन्थ अर्थात् बाल-बोध में आचार्य जी का कथन है कि जीव मात्र स्वभाव अर्थात् अपने देव, मनुष्य, अक्षुरादि स्वभाव से अथवा भावत्सेवा हमारा धर्म है, उसके न करने से हम अपराधी हैं, जिसे दूर करने के लिए श्रवण-भक्ति करना आवश्यक है (श्रोमदभाष्यत-शास्त्र का श्रवण करना और कीर्तन आदि नवधा भक्ति करनी) तत्पश्चात् भावान में उत्पन्न प्रेम द्वारा इस लोक

तथा परलोक संबंधो सब कार्य सिद्ध होते हैं । इसी प्रेम को आचार्य ने पूर्ण समर्पण माना है -

समर्पणोनात्मनो हितदियत्व भवेदधुनम्
अतदीयतया चापि केवलश्चेत् समाश्रितः ।

अर्थात् अपनी आत्मा तथा अपना सब कुछ भगवान को समर्पित करने से जोव का निश्चय तदियत्व सिद्ध होता है और ऐसा कहा गया है तदनुसार तदीयत्व सिद्ध न हो और केवल आश्रम हो किया जाय तो उत्तम गति होता है । इस ग्रन्थ के अन्त में आचार्य जो कहते हैं -

तदाश्रयतदीयत्ववु छ्ये किंचितं सनावरेत् ।
स्वधर्मानुतिष्ठन वैभारद्वैगुण्यमन्यथा
इत्येव कथितं सर्वं नेतज्ज्ञानेभ्रमः पुनः ।

अर्थात् तदाश्रय तथा तदीयत्व का ज्ञान प्राप्त करनेके साथ अपने वणाश्रिम रूप धर्म का आचरण करते हुए साधन का अच्छी तरह आचरण करे । यदि ऐसा न करे तो अश्रय दो गुना भार होता है । इस प्रकार हमने जो कुछ कहा है उसका जब भलो भांति ज्ञान हो जाता है तब किसी विषय में कुछ संदेह नहीं होता । इसमें आचार्य द्वारा वणाश्रिम पर बल दिया गया है । इस ग्रन्थ के बाद सिद्धान्त मुक्तावली में आचार्य का कहना है -

नत्वा हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धान्तविनिश्चयम् ।
कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परामर्ता ॥

अर्थात् ओ हरि को नमस्कार करके अपना विवेकपूर्ण निश्चय किया हुआ सिद्धान्त कहता हूँ । कृष्ण को सदा सेवा करनी चाहिए, वह मानसी सेवा सबसे उत्तम और परम फल स्वरूप माना जातो है ।

जिस प्रकार मयादा भक्तिमार्ग में सब मुक्ति फल रूपा है उसी प्रकार

पुष्टिमार्ग में सेवा स्वतंत्र पुरुषार्थ रूपा है एवं मानसो सेवा यहां फलरूपा है । सेवा का निरूपण करते हुए आचार्य वल्लभ के कथनानुसार चित्त को प्रभु में पिरो देना अर्थात् तल्लीन कर देने को सेवा बताया है । लालुभट्ट के कथनानुसार मानसो सेवा की सिद्ध तनुजा तथा वित्तजा सेवा के निरन्तर अभ्यास से हो सम्भव है । सेवा सांसारिक दुःखादि को समाप्त करने में सहायक होती है । विशेषकर तनुजा तथा मानसो का निरन्तर अभ्यास वैष्णव जीवन में अंशता ममतात्मक अज्ञान (जो सांसारिक दुःखों का मूल कारण है) को दूर करके ब्रह्म ज्ञान कराता है । मानसो सेवा का सिद्धि ही पुष्टिमागीय सेवा का मुख्य लक्ष्य है । आचार्य वल्लभ ने अपने इम ग्रन्थ के द्वितीय श्लोक में मानसो सेवा को दो भागों में विभाजित किया है - मूल रूप से पुष्टिमार्ग में सेवा हो साधन है और वही फल माना जाता है । इसी बात को ध्यान में रखते हुए वल्लभ जी ने तनुजा-वित्तजा को एक कोटि में तथा मानसो सेवा को द्वितीय कोटि में रखा है । तनुजा वित्तजा की सेवा जो क्रियात्मक सेवा कही जा सकती है। साधन कोटि में रखी गई है तथामानसो सेवा जिसे भावनात्मक अथवा अभ्यान्तर सेवा भी कहा जा सकता है, फलरूपा है । इसा को आचार्य ने 'सा परामता' कहा है अर्थात् पुरुषोत्तम स्वं परम फलरूपा कहा है । इसको सिद्धि के लिए तनुजा तथा वित्तजा का विधान कला गया है (तत्सिद्धये तनुवित्तजा) सि० मु० के दूसरे श्लोक में आचार्य जी का कथन है (ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिं ब्रह्मबोधनम्) अर्थात् चित्त में तापो प्रकार का सेवा करने से संसार के दुःखों से छुटकारा हो जाता है और ब्रह्म का यथार्थ स्वरूप जानने में आता है । पुष्टिमार्ग में ब्रह्म का स्वरूप क्या है, उस स्वरूप का निरूपण तृतीय श्लोक में किया गया है -

परब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दं ब्रह्म ।

रूपं तद्धि सर्वं स्यादेकं तस्याद्विलक्षणम् ।

इस श्लोक का टाका में लालुभट्ट ने कहा है - सबसे श्रेष्ठ परब्रह्म कृष्ण ही है। सत्चित् और आनन्द रूप से जो सर्वव्यापक है, वह अकार ब्रह्म कहलाता है ।

अक्षर ब्रह्म के दो रूप हैं एक जगत और दूसरा उसे विलक्षण । एक ओर टोका में इनका कहना है कि ब्रह्म का प्रथम रूप आधिदैविक परब्रह्म रूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र है । आध्यात्मिक अक्षरात्मक ब्रह्म द्वितीय रूप है एवं आधिदैविक प्रपंचात्मक जगत ब्रह्म का तृतीय रूप है । ये सभी परब्रह्म के रूप हैं । इसके लिए लालुभट्ट ने भी आचार्य के मतानुसार गंगा का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कि जिस प्रकार गंगा जलरूपिणी है उसी प्रकार जगत रूप ब्रह्म है - जैसे तीर्थ रूपिणी गंगा जो है वैसे ही अक्षर ब्रह्म है, जैसे दसों रूपा मूर्ति गंगा जी है वैसे ही साक्षात् कृष्ण हैं, ऐसा ही शास्त्रों में कहा गया है । अक्षर ब्रह्म में स्थित श्रीकृष्ण ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता होकर उत्पत्ति, लय आदि जगत का कार्य करते हैं । सि० मु० के १४वें श्लोक में आचार्य जी का कथन है, ' कृष्णभक्त ज्ञानी पुरुष अपनी आत्मा में परब्रह्म के दर्शन करता है - जिस प्रकार गंगा जी से दूर रहने वाला गंगा जल को अप्राप्ति के कारण दुःखी होता है, उसीप्रकार जिसका मन अहंता ममता रूपी संसार में लगा हुआ है वे भी भगवान् के स्वरूपानन्द के सुख से वंचित रहने के कारण दुःखित रहते हैं । जिन्होंने भक्ति मार्ग में प्रवेश किया है वे सब सांसारिक उपाधियों से मुक्त हैं । सेवा के मूल रूप दो हैं - (१) साधुन रूप सेवा जिसमें तनुजा विराजा सेवा गिनो जाता है, (२) साध्यरूपा अथवा फल रूपा मानसो सेवा जिसको प्राप्ति गोपियों को हुई थी । इन सेवाओं सिद्धि हो पु० मा० वैष्णव का परम लक्ष्य है ।

१- नातः परतरौ मन्त्रौ नातः परतरः स्त्वः ।
नातः परतरा विद्या तीर्थ नातः परात परम् ॥

वल्लभाचार्य जी के कथनानुसार ' पराभक्ति से बढ़कर न तो कोई मंत्र है न कोई स्तोत्र ही, न कोई विद्या है एवं न कोई तीर्थ ही है । भक्ति

१- त्रिद्वान्त मुक्तावलो १०

२- ,, ,, १४, १५

को चरमावस्था व्यसन है जब भक्त अपने इष्ट देव से पृथक होकर नहीं रह सकता तब व्यसन दशा की सिद्धि होता है। ऐसे भक्तों के लिए यदि गृहादि बाधक होते हैं तो अपनी इष्ट सिद्धि के लिए उन्हें भी त्याग देना चाहिए। यही वह भक्ति है जिससे बढ़कर विद्या, मंत्र, तीर्थ आदि कुछ नहीं है। इस अवस्था में जो व समस्त विषय वासनाओं का तथा मायामीह से पृथक होकर एक मात्र ईश्वर का शरण में चला जाता है। भगवदवेश इन्होंने भक्त के मन मंदिर में होता है। ऐसे भक्तों के हृदय में स्थित भगवान जब उनके हृदयोदगार तथा उनके मुखारविन्द से उच्चरित अपने गुण सुनते हैं तो अपने भक्त को पूर्ण आनंद में निमग्न कर देते हैं।

पुष्टिमार्ग का क्रियात्मक पद भगवत्सेवा ही है। पुष्टिमार्ग में भगवत्सेवा का ही सर्वाधिक महत्व है, इसलिए इसे मार्ग कहा जाता है। पुष्टि मार्ग भक्ति एवं सेवा में अन्योन्याश्रित संबंध है - चित्त को प्रभु में पिरोना अर्थात् तल्लो न कर देना ही आचार्य जो के अनुसार सेवा है। पुष्टिमार्गीय सेवा का मूलधार भावना है। इस सेवा में सेवक सभी विधि विधानों से पृथक होकर एक मात्र सेवा स्वरूप का ध्यात रखता है। गौ० हरिराय जो के अनुसार सेवा में स्नेहपूर्वक लोकवत् युक्ति से भगवान की परिचया होती है एवं पूजा में शास्त्र विधि से अर्चना केल होती है।

तात्पर्य यह कि यदि पुष्टिमार्ग के सेवक के सेव्य बालस्वरूप है तो सेवा भी बालक को परिचया को भांति होगी। यदि सेवा स्वरूप गोपीवल्लभ का है तो अर्चना भी गोपी भाव से। सेवा धर्म हृदय को गहन कृत्या से संबंधित है। सेवा ही प्रेम अथवा रसमयता का प्रादुर्भाव होता है एवं इसी प्रगाढ़ प्रेम से सेवा सिद्धि होती है। आचार्य जो ने निबंधान्तर्गत ईश्वर के प्रति जुहुड़ एवं उत्कट प्रेम को ही भक्ति कहा है। इसी पुष्टिमार्गीयभक्ति एवं सेवा को सम्प्रदाय में एक दूसरे का पर्याय समझा जाता है। शुद्ध पुष्टिभक्ति, व्यसन तथा मानसी सेवा एक दूसरे से पूर्ण समाहित हैं। सम्प्रदाय का व्यवहार पद आद्योपांत सेवा पर ही निर्भर है।

वल्लभ सम्प्रदाय में सच्चिदानंद श्रीकृष्ण हो एक मात्र सेवा स्वरूप हैं । सिद्धान्त मुक्तावली में आचार्य श्री वल्लभ के कथनानुसार सर्व श्रेष्ठ परब्रह्म तो श्रीकृष्ण ही हैं । ये ही श्रीकृष्ण चन्द्र, ब्रह्म , विष्णु, शिव रूप से जगत की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय आदि समस्त कार्यों का पूर्ण करते हैं । जिस प्रकार जल रूप गंगा जी हैं, उसी प्रकार जगत रूप ब्रह्म, जैसे तीर्थ रूप गंगा जी हैं वै अक्षर ब्रह्म हैं , जैसे देवी स्वरूपा गंगा जी हैं, वैसे साक्षात् कृष्ण हैं । आपके स्वरूप का साक्षात्कार करके विशुद्ध सत्त्वमय स्वरूप की सेवा करने पर आपके हो अनुग्रह से संभव है । भागवत के दशम स्कन्ध के चौदहवें अध्याय में ब्रह्मा जी ईश्वर स्तुति करते हुए कहते हैं, ' प्रभो एक मात्र आप ही स्तुति योग्य हैं, आपके चरण कमलों में नमस्कार करता हूँ। प्रभो आपका स्वरूप शुद्ध है सत्त्वमय है, आप सारे जगत् के विधाता हैं----- भगवत्सेवा द्वारा अहंता ममता का त्याग करके पुनः अपने स्वरूप को जान लेता है, इसी कारण पुष्टि सम्प्रदाय में भगवत्सेवा की सर्वोपरि बताया है । हृदय में स्नेह जागृत होने पर द्वेष, भय , ऋष लोभ काधादि भाव स्वतः नष्ट हो जाते हैं । काम, क्रोध लोभादि तामस भाव हैं, जबकि स्नेह और प्रेम का शुद्ध भाव शुद्ध है सात्त्विक भाव है । सत्त्वगुणोदय पर सभी भाव लुप्त हो जाते हैं और सेवा के लिए सेवक में दैन्य भाव उत्पन्न हो जाता है । सेवक में दीनता का भाव ही प्रधान है । पुष्टि सम्प्रदाय में तो भगवदनुग्रह से ही जीव में भगवत्सेवा का योग्यता उत्पन्न आता है । आचार्य जी ने प्रारंभ में ही श्रवण का तीन स्मरण पर बल दिया है । इसी अवस्था में बढ़ता हुआ जीव प्रेम लक्षणा भक्ति एवं मानसा सेवा को सिद्ध करता है । इस अवस्था में जीव को सेव्य स्वरूप के अमृत पान को विषट लालसा उत्पन्न हो जाता है । यहाँ व्याकुलता जीव तथा ब्रह्म में तारतम्य स्थापित कर देती है। जीव हर समय ईश्वर का अनिद्व सुख अनुभव करता है । श्रीमद्भागवत के ७४वें अध्याय के ३१वें श्लोक पर सुबीधियो टाका करते हुए लिखा है -

अमवतारः नावतारान्तरवत् केनचिदशेन ,

अज्ञात शक्तिहितो वा किन्तु साक्षात्पुरुषोत्तमस्यैव पूर्ण शक्तियतः ।

अर्थात् यह श्रीकृष्णअवतार किसी भी ऋंश से अथवा शक्तियुक्त अन्य अवतार जैसा नहीं परन्तु पूर्ण शक्तिवाले साक्षात् पुरुषोत्तम हो हैं । जब धेन पर-ब्रह्म को रमण करने की इच्छा होता है तो अपने ऐश्वर्यादि षाड्गुणों वाले असीक्तिक आधिदैविक, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट होकर अपनी शक्तियों के साथ बौद्ध्य रमण करते हैं ।

श्रीमदभागवत माहात्म्य में शान्दिल्य मुनि परोक्षित से ब्रजभूमि का रहस्य बताते हुए कहते हैं - ब्रज शब्द का अर्थ है व्यापक या व्याप्ति । सेवा एवं भक्ति के लिए आचार्य जो ने इन्होंने रसैशपूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को देखा रहित देवता बताया है ।

‘ कृष्णात् परं नास्ति देवं ~~दोषरहितं~~ ~~देवतं~~ वक्तुमी दोषा वर्जितम्’ अर्थात् कृष्ण के अतिरिक्त कोई भी देवता दोषरहित नहीं है । अतः पुष्टिमार्गीय वैष्णव की श्रीकृष्ण की ही सेवा करनी चाहिए । गौ० हरिराय जो ने भी अपने शिष्यापत्र में स्पष्ट आदेश दिया है कि पुष्टिमार्गी में ~~अव~~ भाव साधन और प्रमेय भगवान है । यदि ये श्रीकृष्ण की सेवा हो साधन रूप है और श्रीकृष्ण फलरूप है २६वें शिष्यापत्र के ३१वें श्लोक में यही मत है -

‘ अस्माकं साधनं साध्यं श्रीकृष्णः शरणं मम ’

श्री योगेश्वर जो ने इसी श्लोक को सेवा करते हुए लिखा है कि पुष्टिमार्गी में तो श्रीकृष्ण ही सेव्य है । श्रीआचार्य जो श्लोक करते हैं -

‘ सर्वदा सर्वभावेन भजनो यो ब्रजक्षिपः ’

स्वस्थायमेव धर्मी हि नान्यः क्वापि कदाचन ।

अर्थात् ब्रज के अभिपति श्रीकृष्ण का सेवा कर्तव्य है, स्मारा यह धर्म है और नाहीं हमारे पुष्टिमार्गी में जो कोई स्थित है तिनकीउ ये हो धर्म है ताहा करके पुष्टि-

मार्ग के फल को प्राप्त स्वतः सिद्ध होता है तब जो मुखारविन्दु का भक्ति है सो साक्षात् स्वरूप सेवा तब सिद्ध होता है जापि दर्शन स्वर्श सवांगि सुख को अनुभव है ताते स्वरूप सेवारं साक्षात्कार है यह मुखारविन्दु शक्ति कही सो सर्वोपरि है । श्री योगेश्वर जी के थनानुसार पुष्टिमागोयि भक्ति मुखारविन्द को भक्ति है जो साक्षात् स्वरूप सेवा की सेवा है ही उत्तम है । क्योंकि मयादा भक्ति और मुखारविन्द रूप पुष्टिभक्ति के फल में बहुत अन्तर है । पुष्टिमागोयि मुखारविन्द रूप भक्ति साक्षात् प्रभु को सेवा है । इसमें सेव्यप्रभु के मुखारविन्द का अनुभव होता है, अतः यहो सर्वोपरि है । यह जीव तो दुष्ट है, पापों से परिपूर्ण है, उसके पाप एक मात्र श्री हरि की शरण जन्म से ही दूर हो सकते हैं । ईश्वर बहुत दयालु हैं वे किसी का कष्ट सहन नहीं कर सकाते । अपनी शरण आये भक्त शीघ्र ही उद्धार कर उस पर अनुग्रह करते हैं । गोता में भगवान ने अर्जुन से कहा है -

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रजः ।

अहं त्वां सर्वं पापेभ्यो मोक्षिष्यामि मा शुचः ।

अर्थात् सब धर्मों की छोड़कर मेरी शरण में आओ । मैं तुम्हें निष्पाप बना मोक्षा दूंगा चिन्ता न करो । इसी प्रकार गो० हरिराय जो काकथन है -

दुराराध्यस्य त्रैव वंशोकरण साधनम्

कृष्ण सेवा प्रकुर्वीता भाग्यवन्तो जना मताः ।

अर्थात् प्रभु श्रीकृष्णसर्वथा दुराध्य हैं, उन्हें वश में करने का एकमात्र साधन सेवा है । अतः जो कृष्णको सेवा करते हैं वे लोग भाग्यवान हैं ।

(अ) सेव्य स्वरूपों का अर्च-विधान :

मयादा और पुष्टि का तात्त्विक अन्तर

महाप्रभु वल्लभ जी स्वयं भगवान नवनीत जी के सेवक थे और भागवत के सतत् स्वाध्यायो । उनके जीवन के दो मुख्य कार्य थे - श्री नवनीत प्रिय जी को सेवा और श्रीमदभागवत का चिन्तन । उनका कहना था कि यदि इनमें से एक कार्य भी निरन्तर चलता रहे तो उस जीव का जीवन भर भगवान में दृढ़ आसक्ति बनी रहती है ।

सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्ति दृढा भवेत् ।

भावज्जीवं तस्य नाशी न क्वापिति मतिर्भवेत् ।

इस सिद्धान्त के अनुसार आगे चलकर आचार्य जी के पुत्र गौसाई जी ने श्री नवनीत प्रिय जी के अतिरिक्त अपने सातों पुत्रों को भगवत सेवार्थ सात स्वरूप विरासत में दिये थे । जो आज भी उनके वंशधरों के सेव्य रूप में चले आ रहे हैं । इन सात स्वरूपों के अतिरिक्त श्रीनाथ जी का स्वरूप सभी का सेव्य है । इस प्रकार भगवान के कुलमिलाकर नौ स्वरूप हुए जिनका विवरण इस प्रकार है -

१- श्रीमहाप्रभु जी के सेव्य - श्रीनाथ जी अथवा गौवर्धन नाथ जी वर्तमान नाथद्वार में ।

२- श्री महाप्रभु तथा श्री गौसाई जी के सेव्य - श्री नवनीत प्रिय जी श्रीनाथद्वार में ।

३- श्री मथुरेश जी गिरधर जी के सेव्य - जतापुरा में (पहले कोटा में थे) ।

४- श्री विठ्ठलनाथ जी श्री गौविन्दराम के सेव्य - श्रीनाथद्वार में ।

५- श्रीद्वारिकानाथ या बालकृष्ण जी के सेव्य - कांकरौला में ।

६- श्री गोकुलनाथ जी के सेव्य - गोकुल में ।

७- श्रीगोकुल चन्द्रमा जी श्री रघुनाथ जी के सेव्य - कामवन में ।

८- श्रीबालकृष्ण जो यदुनाथ जो के सेव्य - दूरत में ।

९- श्रीमदनमोहन जो श्री घनश्याम जो के सेव्य- कामवन में ।

इन नौ स्वरूपों का सेवा श्री वल्लभाचार्य जो के समय से आज तक अनाद्य रूप से चलो आ रहा है । महाप्रभु के द्वितीय पुत्र गेस्वामो विठ्ठलनाथ जो ने सेवा का बड़ा सुन्दर क्रानिधारित किया था । उनके विषय में प्रसिद्ध है -

सेवा को यह अद्भुत रीत,
श्री विठ्ठल से सों राखे प्रीति ।

श्री विठ्ठलनाथ जो के सेवा के तीन क्रम रखे थे । राग, भोग, और श्रृंगार । साथ ही नित्य सेवा क्रम और वार्षिक उत्सव सेवा क्रम । नित्य सेवा क्रम में आठ दर्शनों की व्यवस्था की गई है जो इस प्रकार है -

१- मंगला - ५ बजे से ७ बजे तक ।

२- श्रृंगार - प्रातः ७ से ८ बजे तक ।

३- ग्वाल - प्रातः ९ से १० बजे तक ।

४- राग भोग - प्रातः १० से १२ बजे मध्याह्न ।

५- उत्थापन - मध्याह्नोत्तर ३ से ४ बजे तक ।

६- भोग - सायं ४ से ५ बजे तक ।

७- संध्या आर्ती - सायं ६ बजे ।

८- शयन - सायं ६ से ६ बजे तक ।

इन आठों दर्शनों के साथ राग अथवा कोतैन का व्यवस्था का गई है । अष्ट स्त्रियाँ अपना कोतैन सेवा के लिए प्रसिद्ध हैं ही । इनमें विशिष्ट समय पर एक एक स्त्री का ओसरा (अवसर) होता था । उसी समय पर वद मंदिर में पहुँच कर कोतैन सेवा करता था ।

पुष्टि सम्प्रदाय में कृष्णकी पर ब्रह्म और परम आराध्य देव माना

गया है। इस सम्प्रदाय के सैव्य स्वरूप श्रीनाथ जी को साक्षात् परब्रह्म माना जाता है। पुष्टिमार्ग को मान्यता के अनुसार श्रीनाथ जी का प्रकाटय सं० १५३५ की वैशाख कृष्णपक्षा एकादशी ब्रज के अन्तर्गत गोवर्धननाथ को गिरिराज पहाड़ी पर हुआ। उन्हीं दिनों श्रीवल्लभाचार्य जी यात्रा करते हुए उधर पहुँचे उन्हींने भी उस स्वरूप के दर्शन किए और उस वरु स्वरूप के पूर्ण भक्त हो गये। श्रीनाथ जी का स्वरूप श्रीकृष्ण के गोवर्धन धारण करने के भाव का है। उपरोक्त सातों रूप भगवान के साकार रूप माने जाते हैं। श्रीयमुना जी पुष्टिमार्ग के अनुसार श्रीकृष्ण में रत बढ़ाने वाली माने गयी है। पुष्टिमार्ग में भगवान के ब्रज लीला विहारों स्वरूप को प्रधानता दी गई है अतः इस मार्ग में सेवा दो प्रकार की बताई गई है - १- बालकृष्ण की लीला, २- रास लीला विहारों किशोर वय वाले श्रीकृष्ण की सेवा। सम्प्रदाय में मुख्य स्वरूप हैं जिन्हें नव निधियाँ कहा जाता है।

श्रीवल्लभाचार्य जी ने पुष्टिमार्गीय सेवा का प्रारंभ गिरिराज पर्वत पर श्रीनाथ जी की सेवा का प्रचलन करके कर दिया। सेवा में ब्रम्बद्धता, कलात्मकता तथा वैभवं का अवकाश श्रीविठ्ठलनाथ जी ने किया। उनका प्रथम पत्नी से ६ पुत्र, द्वितीय से एक पुत्र रत्न प्राप्त हुआ। अपने जीवन के चौथे चरण में उनका ध्यान भगवान को और आकर्षित हुआ तो उन्होंने अपने सातों पुत्रों में अपने अलस सम्पत्ति के वरु साथ सैव्य स्वरूपों का भा बटवारा कर दिया। अतः सातों पुत्रों ने अपने अपने स्वरूपों को पृथक्-पृथक् सेवा प्रारंभ की। तब से आज तक सेवा का वही रूप चला आ रहा है। प्राचीन काल में सम्प्रदाय के स्वरूप स्थलों को मंदिर में कह कर नन्दालय या गृह कहा जाता था। अतः आज भी सप्त स्वरूपों के सेवा स्थलों का नाम गृह नाम से प्रचलित है। बटवारे का उल्लेख कांकरोला के इतिहास के अनुसार सं० १६३५ बताया गया है। अतः सं० १६३५ से १८४८ के मध्य गौरीविठ्ठलनाथ ने इन स्वरूपों का बटवारा करके इन स्वरूपों को सम्प्रदायानुसार सेवा की व्यवस्था करवा दी। अब वे कहां-कहां

स्थित है। इनका संक्षिप्त परिचय देखिए -

प्रथम गृह -

विट्ठलनाथ के ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जीधे । सम्प्रदाय के प्रधान स्वरूप श्रीनाथ जी स्व श्री नवनीत प्रिय जो की सेवा का उत्तरदायित्व आपको सौंपा गया था । विट्ठलनाथ जी के बाद ये ही सम्प्रदाय के आचार्य हुए । श्रीनाथ जा और नवनीतप्रिया जो का सेवा भार प्रथम गृह को होने के साथ-साथ अन्य गोस्वामियों को भी उनका सेवा का अधिकार है । कुछ ऐसे अवसर भी आये हैं जब तिलकायत जी को आज्ञा दूसरे गृहों के स्वाभिमूर्त्यो ने श्रीनाथ जी को सेवा की । सैव्य निधियों के बटवारे में इस गृह को मथुराश जी का स्वरूप निज अधिकार में लिया था । वर्तमान समय में श्रीनाथ जी को सेवा और नवनीत जी की सेवा राजस्थान में हो रही है ।

श्रीनाथ जी

श्रीनाथ जी का स्वरूप मथुरा में गोवर्धन पर्वत पर अनेक भक्तन के युथ सखित विराजमान है । श्रीनाथ जी की प्रकटय वाता के आरंभ में ऐसा ही उल्लेख है - ' तहां श्री आचार्य जी सदा सर्वदा सेवा करत है । जब देवी जोवन के उद्धारार्थ भगवदाजात धरणि मंडलमें आप श्री आचार्य जी प्रकट भयो ' । सं० १६६६ में श्रीनाथ जी को उद्दिभुजा के दर्शन हुए । सं० १५३५ में श्रीनाथजी का मुखारविन्द प्रकट है । विसाख कृष्ण ११ वृहस्पतिवार का दिन तथा मध्याह्न काल का समय था , ठीक उस समय श्री आचार्य जी प्रकट हुए । आचार्य जा के गिरिराज पहुंचने पर श्रीनाथ जी ने स्वयं उन्हें अपनी सेवाको आज्ञा दी । ' मोको पाठे बैठाओ और मेरो सेवा के प्रकार बनाओ तब श्री आचार्य जीने एक छोटा मंदिर बनवाकर रामदास उनको सेवा का भार सौंपा । सं० १५५६ में पूरणामल द्वात्रिंश को श्रीनाथ जी के स्वप्न में दर्शन देकर मंदिर निर्माण का आज्ञा दी । उन्होंने ने १५५६ सं० से ही मंदिर का निर्माण प्रारंभ कर दिया

और १५७६ स० में पूर्ण हो गया। निर्माण पूर्ण होने पर श्री आचार्य जी ने श्रीनाथ जी का महोत्सव किया और बंगाली अधिकारियों को जीपा जिन्हें विद्वत्लनाथ जी ने हटा दिया। और कृष्णादास को मंदिर का अधिकारी बनाया तथा श्री कुंभनदास जी भी कीर्तन के लिए नियुक्त किए गये। स० १७२६ में श्रीनाथ जी को गिरिराज से हटाकर भेदाड़ ले जाया गया। जहाँ नाथद्वारा के मंदिर में वह स्वरूप आज भी विराजमान है। श्रीनाथ जी का स्वरूप स्याम है और उनके सम्पूर्ण अंग विभिन्न चिन्हों तथा आभूषणों से विभूषित हैं। षाष्ट कृत वातातृ में 'वत्सल कुल को प्राकटय' शीर्षक उन चिन्हों का वर्णन इस प्रकार है - अब श्री गोवर्धननाथ जी को अंग के साथ सब जगह के चिन्ह हैं। सो लिखित हैं। 'सुआ बोज'। शैया मंदिर का और मुख। ताके आसपास दोउ कौन में दोउ स्वरूप। दाहिने श्रीहस्त के पास पीठक में भेदा है। वक्के नाचे फणियाँ सर्प है। ताके नीचे चरण के पास गाय है। जख तममें दीय प्रगट है। एक कन्दरा में, मुँह बाहर है। वामें एक सर्प चली जात है। वरु वार्ह और एक सर्प है। ताके नाचे एक नृसंग जा को स्वरूप है तथा पर्वत शिला को भाव है। बायें चरण के पास दो मोर हैं। बाहे समधीरस पीठक है। नाभि के मोतर छिद्र है। श्रीकंठ के आभरण सहज है। इलरी पर्यन्त। चिन्ह है विष्णु है। यज्ञोपवीत है। यज्ञोपवीत मोतर तीन मणि हैं। दाहिनी जंघा पर गांठ है। दाहिने श्रीहस्त कटि प्रदेश पर पुट्टी बांधे हैं। बायें श्रीहस्त सहज हो नसन गुंजल है। दाहिने श्रीहस्त में कड़ा के ऊपर दाग रह्यो है। वनमाला श्रीहस्त के स्कन्ध के नाचे बाहू पर है। गुल्फ ते ऊपर है। चरणान्बिन्द सम है। दाहिने हस्त का आँठा ऊँची है। इलरी का फुंदना दाहिनी और है। वस्त्र लेश सहज। श्रीहस्त में सख के कड़ा है। इस उद्धरण में श्री नाथ जी के स्वरूप का पूरा परिचय मिल जाता है। श्री द्वारिकेश जा पुष्टिमाधर्ग के प्रमुख वाताङ्कार और कवि हुए हैं। उनके अनुसार श्रीनाथ जी का स्वरूप इस प्रकार है -

श्रीनाथ जी का स्वरूप स्याम है। वाम हस्त से श्री गोवर्धन पर्वत को उठाये हुए हैं। दक्षिण हाथ का मुट्ठी बंधो हो और समदृष्टि से भक्तों को

निहार रहे हैं ।

श्री पुष्टिमागौय सेव्य स्वरूप दर्शन में श्रीनाथ जी के संबंध में उल्लेख है- अब प्रथम श्री गोवर्धन नाथ जा मुख्य । सो गिरिराज में ते प्रगट भये जो आन्योर को ओड़ीवाजना शिला है । सो तहां से प्रगट भये । सो आपका सदा किशो वय है । सुखोकि सो निकुंज जाय रहे । निरन्तर ब्रज भक्तिन सो विहार करते हैं और निकुंज के डार पर ठाढ़े हैं । जो वाम मुजा ऊंचा करके दर्शन देते हैं । जो निरन्तर ब्रज भक्तन को बलावत हैं सो दक्षिणा कटि पे धारण कर के सबन जतावते हैं -

जो मैं रसदान करवे को तत्पर हूं ।-----

इन सब उल्लेखों में श्रीनाथ जी का परिचय दिया गया है ।

२- नवनीतप्रिय जी -

चौरासा वैष्णवन की वातां एवं श्री गिरिधर लाल जी के १२० वचनामृत एवं अन्य साम्प्रदायिक प्रमाणों के अनुसार श्री नवनोताप्रिय जी का स्वरूप महावन को रत्न कान्ताणि को ब्रह्मांड घाट यमुनन जा में प्राप्त हुआ था । यह कान्ताणि वल्लभ जी से ब्रह्म संबंध लिये थे अतः उनसे उन स्वरूप को आचार्य जी को समर्पित कर दिया । उन्होंने इस स्वरूप को सेव्य स्वरूप रूपमें सिद्ध करके आगरा निवासो वैष्णव गज्जन ध्वन को सेवार्थ दे दिया । दोघी काल तक वे उसको बड़ स्नेह सेवा करते रहे । फिर उन्होंने अडिल में श्रीआचार्य जी को वापिस दे दिया । श्रीआचार्य जी तत्पश्चात् श्री विट्ठलनाथ जा ने उस स्वरूप का बालभाव से सेवा करते रहे । श्री गौसई जी ने स्वरूप को गोकुल में प्रतिष्ठित किया । घरेलू बटवारे के समय यह स्वरूप श्री गिरिधर जी को जो जो ज्येष्ठ पुत्र थे प्रदान किया । श्रीनाथ जी के समान यह स्वरूप भी वल्लभ सम्प्रदाय व्रमुख सेव्य स्वरूप माना जाता है । इसका सेवा का अधिकार श्री गिरिधर वंशज तिलकाय परिवार के गौस्वामियों को है । मुगल शासक औरंगजेब का कटु हिन्दू धर्म नीति के कारण श्री जी के इस स्वरूप को मेवाड़ ले जाया गया । उस समय प्रथम गृह के

तिलकायत श्री दामोदर जी (दाऊ) केवल १५ वर्षीय अत्यायु के थे । उस समय उनकी ओर से उनके काका उस स्वरूप सेवा तथा रक्षा कर रहे थे । ये आगए जाकर ठहरे और अपने सेवाकों द्वारा श्रीनवनीतप्रिय जी के स्वरूप तथा ब्रह्म श्री दामोदर जी को अपने पास बुलवा लिया । श्रीनवनीतप्रिय जी का स्वरूप स० १७२८ में भवाङ्ग पड़वा । उनको सेवा विधि रोति विल्कुल श्री नाथ जी की सेवा विधि का भांति है । अब भी प्रथम गृह के तिलकायत जी इनको सेवा में रहते हैं । श्री पुष्टि सम्प्रदाय के सेव्य स्वरूप दर्पण में श्री नवनीतप्रिय जी के विषय में उल्लेख मिलता है - ' इस स्वरूप का प्रादुर्भाव श्री यमुना जी में भव्यो । ससे एक समय श्री यमुना जी को ~~अ~~ ढाय टूटो से तामे चार स्वरूपन को प्रादुर्भाव भव्यो, प्रथम श्री नवनीतप्रिय जी, दूसरे श्री गोकुलचन्द्रमा जी, तीसरे त्रिभंगराय जी, चौथे लाडिलेश रोति । श्री यमुना जी में से प्रादुर्भाव है श्री यमुना जी को सेवनी रक्त दात्राणि हती जी वासी आप आज्ञा किए जी तू यहाँ से हमकुं पधराय के ले चल, दात्राणि ने चारों स्वरूपन को पधराय के आचार्य जी के पास आई । वाने दर्शन करके दंडवत करके विनतो कोनि । जी चारों स्वरूपन मोकुं मां भांति से प्राप्त भये हैं । उन स्वरूपन देख के आचार्य जी बड़ प्रसन्न भये । उस समय आचार्य जी के पास अनेक भक्त बैठे अ हते । वे कह बीले महाराज हमकुं जिनीं सेवार्थ देउ । इस प्रकार लोगजन धावन को श्री नवनीतप्रिय पधराय दिये । काफी दिन सेवा करने केबाद उन्होंने वापिस आचार्य जी को द दिए । ऐसा आचार्य जी नेकहा । आचार्य जी ने इनकुं गुसाई जी को पधारे । उन्होंने गिरधर राकेश में पधराय दिए । श्री द्वारिकेश जी बालभावना में नवनीतप्रिय जीके स्वरूप के विषय में भावना बताते हुए कहते हैं । यहाँ बालभाव मुख्य है । ताते प्रमाण प्रकरण को लोला प्रकट है और प्रकरण लोला गुप्त । अतएव गुप्त रस को प्रकार बालभाव विषय है ।

जागेतं परम तत्त्वे यशोवतीत्सग लालितम्,

तदन्यदिति में प्रादुरासुरास्तन्नहीन बुधाः ।^१

१- सूर साहित्य में पुष्टिमागोय सेवा भावना - श्री धर्मनारायण ओझा

श्री हस्तविष्णो नवनोत है , सोई गायन विष्णो सुधा के जो दान है सो सारभूत नवनोत है । श्री गिरिधर लाल जो ने श्री नवनोत प्रिय जो का अपने वचनामृत में स्वरूप इस प्रकार बताया है - ' बाल स्वरूप लोला स्वरूप है , सो एक हाथ में माखन है एक में साड़ू है । और पाखिले चरनाविन्दों एक घुटुरुवन चलत है । और गौर स्वरूप, श्री यशोदा जो को आंज्यो काजर अलंकार पूषित है ' । श्री डारिकेश जो ने अपने अष्ट स्वरूप भावना के कोर्तन में श्री नवनातप्रिय जा को यशोदा के नन्दालय में क्रीड़ा करते हुए दिखया है । इनका बालक्रीडारं गोपियों के संताप को दूर करतो है । श्री वल्लभ जो अपने पद में कहते हैं - ' श्री नवनोत-प्रिय जो ने मेरे मन का हरण कर लिया है । कमल सदृश दो छाटे दांत मुख में शोभा पा रहे हैं । घुटुरुवन चलकर आप बाल लोला का भाव प्रकट करते हैं । चलने में कमर में किंकिन स्वं चरणारविन्दमें धारित नूपुर । सबको अपनी मधुर लोला का आनंद दे रहे हैं , महाकवि सूरदास की वक्तर्ता से ज्ञात होता है कि जब मो उन्हीं नाथ जो को कोर्तन सेवा रेखकाश मिलता तभी वे गोकुल में नवनातप्रिय जो के दर्शनाथ जाया करते थे । उनके बहुत से पदों में श्री नवनोत जो के स्वरूप भाव के दर्शन होते हैं ।

इस प्रकार सम्प्रदाय में इन दोनों स्वरूपों का हो विशेष महत्व है । श्रीनाथ जा का स्वरूप निकुंज लोला विहारो किशोर कृष्ण का है, तो नवनोत जा का स्वरूप यशोदोत्संग ललित नन्दालय में बालक्रीड़ा करने वाले बालकृष्ण का है ।

श्री मथुरानाथ जो :

चारासा वैष्णवन का वार्ता में , पद्मनाभदास को वार्ता में श्री मथुरानाथ जो जिन्हें श्रीमथुरेश जो या मथुराधोज जा भा कहा जाता है, प्राकाट्य का उल्लेख मिलता है । इनको स्वरूप श्री वल्लभ जा को महावन के दूसरा और कणाविल नामक स्थान के निकट श्री समुना जो में प्राप्त हुआ था । जो पद्मनाभदास

जा का सेवार्थ प्रदान किया गया । घरेलू बटवारे में श्रीगोस्वामी विठ्ठलनाथ जो ने यह स्वरूप अपने बड़े बेटे गिरिधर जो को प्रदान किया था । कहा जाता है कि इस स्वरूप से उन्हें विशेष लगाव था और गिरिधर जो ने अपने बड़े देह लोला इनका श्रृंगार करते समय उनके मुखारविन्द में प्रवेश करके पूर्ण को । तदन्तर यह स्वरूप गौ गोपीनाथ जो को सेवार्थ मिला । विधर्मियों को धर्मान्धता के कारण पुष्टिमागोथि स्वरूपों का गोकुल से स्थान्तरण हुआ और वक्को समय भ्रमण करने के पश्चात् बूंदी राज ने विराजमान कराया । जयपुर बूंदी के नरेशों में संघर्ष हुआ । उसमें कोटा के महाराज ने बूंदी को सहायता की और बाद में मथुरेश का स्वरूप मांग लिया और स्वरूप को श्रद्धापूर्वक कोटम में पधराया गया । गौ रणाक्षील दास जो जिन्हें सम्प्रदाय में प्रथम जो कहते हैं । सम्प्रदाय के सिद्धान्तों में प्रवोण धर्माचार्य हैं जो अत्यन्त उत्साहो हैं । वर्तमान में आप पुष्टिमार्ग में आई विकृ-तियों को दूर करने में सलग्न हैं ।

मथुरेश के स्वरूप के संबंध में श्री पुष्टिमागोथि सेव्य स्वरूप दर्पण में बताया गया है कि एक समय श्री आचार्य जो स्नान करके श्री भगवान का ठि पाठ करत होते बहुत भक्त हर समय वहां रहो करे हैं । सो १५५६ की साल में फाल्गुन सदी ७ के दिन मथुरेश को प्रागटय श्री जमुना जो ढाय टूटी सो वार्में ते श्री मथुरेश जो को स्वरूप साक्ष्यात प्रगट भयी तो सब दौरि के आप महाप्रभु जो को गोद में आ बैठे । पद्मनाथ जो ने विनतो कीनि महाराज ने स्वरूप आप मोकूं सेवार्थ प्रदान करो । प्रभु जो ने उनकूं दे दियो सो श्री मथुरेश कोटा में श्री दीक्षात जो के वंश में श्री कन्हैयालाल जो के माथि विराजत हैं । छोटे मथुरेश श्री महाप्रभु को सेव्य जो पद्मनाभदास जो को बेटि तुलसी के माथि विराजत होते । श्री गिरिधरलाल जो के वचनामृत में इसी प्रकारका उल्लेख है । उनमें श्री मथुरेश जो के स्वरूप प्रकट के समय स्वरूप ताड़ के समान लम्बा था परन्तु आचार्य जो को प्रार्थना से वे छे छोटे होकर गोद में आ विराजि । उस स्थल का नाम करनावल पड़ा । वचनामृत में लिखा है - ' जो स्याम स्वरूप गोलमोठ क चारि भुजा तार्में चार आमुद हैं जो कछू आरक्त फलकते, तैसें श्रृंगार मल्लकादि टिपारे को सो ऐसे स्वरूप को

ध्यान करनीं । श्री द्वारिकेश जो भाव भावना में श्री प्रकट और प्रकरण को लालाम गुप्त हैं । अतएव ब्रज में चतुर्भुज स्वरूप कौन प्रकार ? नन्दकुमार तो द्विभुज रूप हैं । परन्तु पुष्टि सम्प्रदाय में तो चतुर्भुज रूप हैं । ताको आशय पुष्टि कार्य रूप क्रिया चतुष्टय है, स्वानंद दान, स्वानंददान विष्णो, जो प्रतिबंध ताको विषय निवारण स्व सेवा एवं आधिदैविक भाव को उदोघन तथा स्वानंद दान जो ब्रज में हो पधारत है । तब तो मुक्तानृत लायण्य को पान करावत है । स्व सेवा सध्या भागादि को स्वाङ्कार । नवरस के स्थायी भाव तो नव होय । भक्तरस का स्थायी भाव रहते हैं । चतुर्विध पुरुषार्थ के स्थायी भाव अलक हैं । व्यापार अलक में तं गौरजनु कुरित न्तल इति । या प्रकार चौदह रस के स्थायी भाव जानिए । अप्पु धारण का आशय - शंख, चक्र, गदा, पद्म या क्रम तो धरे । पुष्टि में मधुसूदन रूप - त्वं गजराज विहारिणः । निचले दक्षिण श्रीहस्त में शंख है ।

विष्णोर्भुजोत्था निलपूरितस्य यस्य ध्यनिदानंदपरिहंता इति ।

शंख कहै है तमतिं आमुष । आमुष का मुख्य भाव तो ग्रावा के आकृति । ऊपर की दक्षिण हाथ में पद्म है ताको अवान्तर भाव तो जापर धरे तापे चौदह भुवन को भारपयीं तब तबि जप (भोगनात्मक कमल) जैसे काहू पर एक मोति धरे ताका कौन व्यवस्था । मुख्य भाव तो श्री गुरु को आकृति ऊपर वाम हस्त में गदा है । ताको अवान्तर भाव तो अस्त्र को तेज निवारण करत है । नोचे वाम हस्त में चक्र है ताको अवान्तर भाव तो जाको सब मुक्ति देना होय ताको चक्र साँ मारि । मुकुट पर जीठनी है । अष्ट स्वरूप को कण भावना के पद में श्री द्वारिकेश जो को भावना के संबंध लिखते हैं , ' मधुरेश जो का स्वरूप ब्रज का परमरस रूप है । आपके हाथ में कमल मुख्य श्री स्वामिनो के भाव से , तेज रूप श्री चन्द्रावली जो के भाव से , गदा श्री श्यामकुमारो के भाव से एवं शंख श्री यमुना जो भाव से है । आप इन चारों रूपों का दर्शन करव कराने हेतु निरन्तर आमुष धारण किए रहते हैं ।

श्री मथुरेश जी का स्वरूप किशोर लोलाको भावना का सूचक है । पुष्टिमार्ग में ठ यशोदोत्सर्ग ऋषि नन्दाश्रम में क्रोड़ा करने वाली तथा निकुंज विहारो श्री कृष्ण का द्विभुज रूपधारो स्वरूप को हा भावना सेवक करते हैं । क्योंकि पुष्टि मार्गीय श्रीकृष्ण ने अपना समस्त आधिक लोलाएं मानव रूप धर कर को था । चतुर्भुज रूप में नहीं । मथुरेश जी का स्वरूप शंख, चक्र, गदा, और पद्म रूपधारो भुवनेश्वर है । यह स्वरूप भी बटवारे में निज गृह को हा प्राप्त हुआ था । वर्तमान समय में इसको स्थिति जतीपुरा में है ।

श्री विट्ठलनाथ जी :

इस स्वरूप को विट्ठलेश्वर श्याम राय भी कहा जाता है । पुष्टिमार्गीय सैव्य स्वरूप दर्पण में विट्ठलनाथ जी के संबंध में लिखा है , जीय श्री गंगा जी में सो प्रादुर्भाव है सो गोसाईं जी के प्रागटय सभ एक ब्रह्मणा पधराय के लायो तो श्री ठाकुर जी और श्री गुसाईं जी की एक छवि देखि कै के कहें श्री ठाकुर जी आप साक्षात् पुत्र स्वरूप होय कै पधारे सो श्री ठाकुरजी को वस नाम और श्री गुसाईं को नाम श्री विट्ठलनाथ जी है सोताते वैष्णव के मांथे वही पधराय सो बड़े श्री गोविन्दराय जी के मांथे विराजत हैं । अब कृष्ण दास जी के मांथे विराजत हैं । श्री स्वामिनो जी भी श्री यमुना जी से प्राप्त हुई अतः जे भी । विट्ठलनाथ जी के पास विराजत हैं^१ । श्री आचार्य जा की निज वाता में भी इसीप्रकार का उल्लेख मिलता है^२ । श्री गिरिधरलाल जा महाराज ने अपने १२० वचनामृती में श्री स्वामिनी जी के प्रागटय का स्पष्ट उल्लेख है, जिसके अनुसार श्रीस्वामिनो जी महाप्रभु कृष्ण जी के यशोपवीत में यमुना स्नान के समय उलझ कर प्रकट हुई । श्री विट्ठलेश्वर जी का उपरांग श्याम वर्णी है

१- पुष्टिमार्गीय सैव्य स्वरूप दर्पण , पृ० ६,७

२- आचार्य जा की निज वाता । पृ० ६७

और कटि से नाचे गौर वर्ण है । आपके श्री हस्त दो हैं जिनमें शंख और पद्म हैं । श्री स्वामिनी का अंग गौर वर्ण का है । आपके दोनों हाथों में कमल सुशोभित है, श्री द्वारिकेश जो इस स्वरूपके संबंध में लिखते हैं, ' फल प्रकरण के द्वितीयाध्याय को लीला प्रकट है और प्रकरण को लीला गुप्त है । पुनः पुलिनभागत्य कालिध्वजः । कृष्ण भावना इति वाक्यात् कालिन्दी स्व स्वरूप को दर्शन कराये तब भक्तन को भाव स्फूर्ति मिले । प्रथम मुख्य स्वामिनी को देखते हो आसक्ति बढ़े । गौर वर्ण की था हो फिर श्री यमुना जो की भगवत भावाविष्ट स्वरूप देखके मोहित भये, तदन्तर सात्विक भावाविष्ट कमल सदृश जो नेत्र तिनके कटाई करके ~~व्यवध~~ श्यामतः ही प्रदर्शित होत है ताते गौर श्याम हैं । शृंगार रसात्मक भगवत्स्वरूप संकीर्ण वियोग भेद करके उभयात्मक है -

रसयद्धि विरुद्ध विधस्यापि स्वरूप बोध्यन स्थितितम् ।

एकम् विरुद्ध धर्मत्वां गौरश्यामः कृपानिधि ॥

रस परवशते हो कवि भाग पर दौड श्रीहस्त है । स्वरूप में आपके दोनों हाथ कटि प्रदेश पर रखे हुए हैं -

सम्पादाम्बुजं सूक्ष्मं कुटिलानुभुजं द्वयम् ।

किरोटिनं लसद्भक्तां विट्ठलेश्वरं भजे ॥

श्री द्वारिकेश एवं श्री वल्लभ जो ने इस युगल स्वरूप को भावना के संबंध में अत्यंत सरल भावना अपने पदों में प्रकट को है । द्वारिकेश जो अपने पदों में कहते हैं कि मैं ने श्री यमुना जो के साथ एक सुन्दर स्वरूपदेखा है । श्री यमुना जो के अतिशय सौन्दर्य को देखकर श्री ठाकुर जो के दोनों हाथ कटि प्रदेश पर हो रह गये । इसी कारण आपका वर्ण श्याम वर्ण का और गौर वर्ण का हो गया । आगे भाव स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जागर ठाकुर जो की स्वरूप हतो श्री ठाकुर जो और श्री स्वामिनी जो के नेत्रन को ध्यान करत करत श्याम हो गये हैं ।

सैव्य स्वरूपके बटवारे में श्री अज्ञाचार्य जो ने विट्ठलनाथ जो का स्वरूप अपने द्वितीय पुत्र श्री गोविन्दराय जो को प्रदान किया । गो० हरिराय जो इसी गृह के तृतीय तिलकायत हुए हैं । सम्प्रदाय में तासरास्थान आपका ही है । प्रथम जो वल्लभ जो, दूसरे श्री विट्ठलनाथ जो । इस स्वरूप को आप के छो मेवाड़ तक लाये थे । उस समय आपकी आयु ८० वर्ष की थी । आपका तिरोधान स० १७७२ में अर्थात् १२५ वर्षी का आयु में हुआ था । हरिराय जो तथा उनके भाई श्री गोपेश्वर जो का वंश समाप्त हो जाने पर प्रथम गृह से श्री गिरधर जो को जौड़ गोदालिया गया । उनके समय से विट्ठलेश्वर राय का स्वरूप ज्ञानाथद्वारा में ही विराजमान है ।

श्री द्वारिकाधीश :

इस स्वरूप को द्वारिकानाथ जो के नाम से भी जाना जाता है । यह स्वरूप तृतीय गृह को प्रमुख देवदेव सैव्य स्वरूप है । इसका स्वरूप सूर्य पुरुषात्म का सर्वाधिकार प्राचीन स्वरूप है । ब्रह्मा जो को सृष्टि रचना से पूर्व आपके ही दर्शन हुए थे । इस प्रकार ब्रह्मा जो ने सर्वप्रथम आपको ही सेवा की थी । तत्पश्चात् ब्रह्मा जो के पुत्र कर्दम प्रजापति ने एवं उनके पुत्र कपिलदेव ने उनका सेवा की थी । श्री कपिलदेव ने इस स्वरूप को विष्णु शर्मा नामक अपने शिष्य को प्रदान किया । फिर इनका पूजा अर्चना राजा अम्बरेश ने की । इन्हें यह स्वरूप विष्णु शर्मा के वंश को एक वृद्धा से प्राप्त हुआ था । महर्षि विशिष्ठ, राजा दशरथ तथा कौशल्या माता जरा मा इस स्वरूप की सेवा करने का उत्कृष्ट प्राकट्य वाता में उपलब्ध होता है । व्यास, राजा युधिष्ठिर पराजित, जठ आदि ने भी इस स्वरूप की सेवा की थी । तत्पश्चात् औरशर्मा ब्राह्मण को आपने अर्द्धाचल पर ले जाने का आदेश दिया । इस इतिहास का इतिहासिक प्रमाण इस संबंध में नहीं मिलता । इतना अवश्य कह सकते हैं कि यह सैव्य स्वरूप अत्यंत प्राचीन है ।

अर्द्धाचल से इस स्वरूप को कन्नौज निवासी नारायणादास दर्जी ने

प्रभु का स्वरूप में दा गई आज्ञा के अनुसार यह स्वरूप एक गृष्णोत्पार से प्राप्त किया। उनके वंशजों ने बड़े प्रेम से उनको सेवा अर्चना की। कन्नीज निवासों श्री दामोदर दास को एक लक्ष ताम्रपत्र प्राप्त हुआ जिस पर लिखा भाषा को कोट्टु न पढ़सका। श्री प्रभु ने उन्हें स्वप्न में आज्ञा दी कि जो भी इस ताम्र पत्र को पढ़े उसे तुम अपना गुरु मान लेना। पृथ्वी परिक्रमा करते हुए श्री वल्लभ कन्नीज पधारें। उन्होंने वह ताम्र पत्र देख कर उनका अभोष्ट अर्थ समझाया और कहा कि तुम्हारे ग्राम में विष्णु शर्मा वंश का नारायण दास दर्ज है। जाके घर अति प्राचीन स्वरूप विराजे हैं। उन्हें पधराय लाने लाओ। श्री दामोदरदास ने आचार्य को आज्ञानुसार नारायण दर्जों से यह स्वरूप प्राप्त कर लिया। प्राकट्य वाता के अनुसार श्री आचार्य ने इस स्वरूप का भावना के साथ पूर्ण वर्णन दामोदरदास को सुनाया था। यहाँ उस स्वरूप का वर्णन का कुछ भाग प्रस्तुत है। श्री वल्लभ जी ने आज्ञा करी कि यह स्वरूप श्रीमदभागवत दशम स्कंध के प्रमेय प्रकरण को लीला आपमें गुप्त है, ताहो सौं ब्रिज लीला में आप प्रमेय चल, लीला करि चतुर्भुज दर्शन देत है सो श्री मथुरेश जो तथा द्वारिकाधोश जो को मिलिके मिलित लीला है।

श्री द्वारिकाधोश को स्वरूप वन निकुंज में अर्द्ध मिचीनीको भावना को है। दक्षिण हस्त में पद्म है ताकी आधान्तर भाव यह है कि जो जाये यह पद्म को हस्त धरे तापर चौदह भुवन को भार पड़े, तास पद्म आयुध रूप है। यथा भुवनात्कम् कमलम् इति।

पुष्टि रीति से इक्का मुख्य भाग से स्वामिनो जो के हस्त की हथेला सूं निजानमलित छुड़ावत है। ऊपर के दक्षिण हस्त में गदा जिसका मुख्य भाव है कि आप अस्त्र को तेज निवारण करत है तासूं गदा आमुघ रूप है यथा (अत्र तेज स्वगदया इति) पुष्टि रीति द्वारा श्री स्वामिनो जी भुजा इति करत है तो भुजा का आश्चर्य रूप गदा है। ऊपर के वाम हस्तमें चक्र है आधान्तर भाग जाकूं लक्ष मुक्ति देना। होय वाकूं चक्र से मारें तासूं चक्र आमुघ रूप है यथा

(हे हताश्चत्र धौण्डा राजन इति) पुष्टि रीति से श्री स्वामिनो जी ने भुजा श्लेश किया तो कंकड़नि स्पर्श - दात खचित होत, वै ये चिन्ह है । नोचे वाम हस्त में शंख है आवांतर भाव यह जो अक्षुर गर्व निवृत्ति ताबु शंख आमुघ रूप है यथा (विष्णोर्मातृत्थानिलपूरितस्य यस्य अग्निदानिव दर्पिता इति) पुष्टि रीति अनुसार श्री स्वामिनी जी के नेत्रन मलिन किया तो समय सम्मुख ते गोवा की स्पर्श होत है ।

द्वारिकाधीश जी को प्राकट्य वाता में श्री द्वारिकेश जी कृत भावना केकुल अंश की मुख्य पुष्टि भाव के प्रमाण स्वरूपप्रस्तुत किया है, देखिए -

प्रियामुजाश्लिष्ट भुजः कंकणाकृति चक्रकः

कम्बू कंठे धतुभुजी लोला कमलत्रिधृक् ।

श्री प्रभु की स्वरूप आंन मिश्रीनो भावनका की है ।

भूवल्लोसंज्ञयोदो सहचरोनिकरं वज्रयि त्वास्वकोयं

पाश्यादागत्य तूष्णीमय नयनभुगं स्वप्रियाया निमित्त्यम् ।

की स्मृत्यैत द्व चनमसकृदे गुण भाषयायाः ।

पातुक्रोडा रस परिचितस्त्वां चतुर्बहिरुच्चैः ।

अर्थात् यमुना जी के तट पर अपने यूथ का सखान जी अपने पाँके करके और श्री ठाकुर जी के मेल को सखियों को अपने आगे बिठाकर श्री स्वामिनो जी मध्य में पधार कर हास्य विनोद कर रही हैं । ऐसे समय में श्री स्वामि जी पाँके आ पधार । सामने की जिन स्त्रियों ने उन्हें आते हुए देखा उन्हें इशारे से अपने उपस्थित बताने को मना कर दिया । और पीछे स्वामिनो के नेत्र बंद कर लिए । और पूछा बताओ मैं कौन हूँ । अपने अन्य अक्षरों दो हाथों से वीणा बजाना आरंभ किया । स्वर बताओ मैं कौन हूँ । स्वामिनो सोचन लगे दो हाथों से मेरे नेत्र बंद किए हैं और दो हाथों से वीणा बजा रहा है ऐसा यह कौन है । आपने रत्न दम कहा अब चतुर्भुज हैं । इसी स्वरूप के कारागार

में वसुदेव तथा देवकी को अपने चतुर्भुज रूप के दर्शन दिए और आजा करो -

एतदा दर्शितं सर्वं प्रगजन्त्य स्मरणाम मे (भा० द० ३४४)

लाला कारण पाठिका में प्रथम दर्शन देत है । अब देखते दोनों आडा कर्ण के निचले श्री हस्त के नीचे दीय दीय मिलके चार है । इनका स्वरूप देखो । पृथक प्रमाण से तो ये चारों पाण्डि है इनके नाम सुनन्दन , नन्द, प्रबल अहीणाहो । दूसरे प्रमाण से ये चारों कृग्वेद, यजुर्वेद , सामवेद, अथर्वेद है । तीसरे प्रमाण से चारों व्यूह है - प्रद्युम्न अनिरुद्ध, अंकुषाणि, वासुदेव और पुष्टि प्रमाण से ये चारों धृताधिपति - मुख्य चारों स्वर्णवर्ण स्वामिना है - नित्यसिद्धा श्री राधिका जो श्रुतिरूपा और अविच्छेदवती, धृष्टिरूपा। अकिमारिका राधा सहचरा जीतुयाप्रिया श्री यमुना जो, श्री मस्तक पर किरीट है सो प्रथम मयादा को अंगकार है । मुख्य पुष्टिभाव से तो मयूर पक्ष के मुकुट को ही पययि रूप किरीट है । मल्लकाक्ष कटि में धारण है , सो पुष्टि करणों ग्राम साध्य हैं । पुष्टि भाव तो काम को जातनेके लिए नटवत् विहार रूप मल्लकाक्ष है । यज्ञोपवीत श्रुतोन को अंगकार है, और कंठ में हांसधारण श्री स्वामिना जो के सम्मुख आरलेश करता है जो आपके उभय रूप की कान्तिप्रभा रूप है। वनमाला ब्रज वनस्त्रियों द्वारा ब्रजभस्तेन को अंगकार करत है । चरण नूपुर, पायल, हाथ में कड़ा जो अक्षर आपके गुल रूप को शोभा में वृद्धि करता है । क्रीट के पोछे तेज का चिन्ह वह कोटि कोटि कन्दर्प लावण्य असंख्य सूर्य इस तेज के सामने लज्जित होते हैं ।

दामोदर दास जो अपने समस्त जीवन बड़े प्रेम तथा स्नेह से इस स्वरूप को सेवा करते रहे तत्पश्चात् उनकोपत्नी ने उस स्वरूप को पुनः आचार्य जो को समर्पित कर दिया । श्री आचार्य जो के बाद श्री गीसाई जो ने आपको सेवा अनेक भावों से की । बटवारे के समय गीसाई जो ने यह स्वरूप अपने तृतीय पुत्र श्री बाळकृष्ण जो को प्रदान किया । श्री द्वारिकाधाश जो का प्राकट्य वाता के द्वादश उल्लास के प्रमाणानुसार इस स्वरूप के साथ श्री स्वामिना जो का भा

पूजा तृतीय गृह द्वारा होता है परन्तु गुप्त रूप से । वैष्णवों को इनका दर्शन भी नहीं कराया जाता । वार्ता के अनुसार श्री बालकृष्ण जो युगल रूप को श्री गौसाईं जो याचन का । श्री गौसाईं जो बालकृष्ण को एक जड़ाऊ चूड़ा देकर कहा कि ब्रज में जिस स्वरूपके यह चूड़ा ठीक बैठ जाय वही श्री द्वारिकाधीश जो की स्वामिनी होगी । श्री बालकृष्ण नित्य सेवा से निवृत्त हो आभूषण लेकर ब्रज में जाते थे । इसी क्रम में स० १६३८ माघ कृष्ण चतुर्थी रविवार के दिन दोपहर के समय श्री बालकृष्ण जी के गुजावन में श्री यमुना जी में से परमलावण्य मुक्त सात वर्षीय श्याम स्वरूप श्री कुमारिका के वैष्णवों में यमुना महारानी को अपने निकट आते देखा । बालकृष्ण जी के स्त्वन के बाद श्री यमुना जी ने अपना आभूषण मांगा । आभूषण धारणोपरान्त उनको प्रार्थना आपने श्री द्वारिकाधीश जी के समीप विराजित हेतु प्रस्थान किया । गृह लाकर श्री स्वामिनी जो की द्वारिकाधीश के समीप वस्त्रम भाग में सिंहासन पर आघोष्ठ कर दिया । श्री द्वारिकाधीश तथा गौसाईं जो के आदेशानुसार स्वामिनी जो के सेवा गुप्त रीति से होती है । गौसाईं जो इस स्वरूप को भी तृतीय गृह की ही प्रदान कर दिया । अतः तृतीय गृह में द्वारिकाधीश जी के साथ श्री बालकृष्ण जी की भी सेवा होती है ।

श्री पोताम्बर जी के पौत्र श्री ब्रजरायजी इस गृह के तिलकायत हेतु संघर्ष आरंभ कर दिया जिसके फलस्वरूप द्वारिकाधीश के स्वरूप का सर्वप्रथम ब्रज में निष्कृयण हुआ । उन्हें आरंभ में गुजरात के राजनगर (अहमदाबाद) में रखा गया । वहाँ इनके उपद्रव के परिणाम स्वरूप स० १७२७ भाद्र शुक्ल ७ के दिन यह स्वरूप मेवाड़ के असोरिम्या नामक स्थान पर लाया गया । कुछ काल पश्चात् १७७६ स० में आपकी कांकरौली में पधराया गया । तब से अब तक यह स्वरूप कांकरौली में ही विराजमान है । द्वारिकेश जी कृत भाव भावना के अनुसार द्वारिकाधीश जी में किशोर व बाल दोनों लोलाजी का भावना निहित है । इस गृह में श्री बालकृष्ण जी जिनसे इस गृह की परम्परा चली एवं श्री पुरुषोत्तम

(जिन्हें सम्प्रदायानुसार ल्हाविधि ग्रन्थ कर्ता होने के ग्रन्थकार अथवा लेखार भी कहा जाता है) प्रकां० विज्ञान एवं पुष्टिमागीय भावना में प्रवोण आचार्य हो चुके थे ।

श्री गोकुलनाथ जी :

‘पुष्टिमागीय सेव्य स्वरूप दर्पण’ वाता साहित्य एवं श्रीधर लाल जी के वचनामृतों से ज्ञात होता है कि प्रारंभ में श्री गोकुलनाथ जी को सेवा परिचर्या श्री वल्लभजी की सपुराल में होती थी । इनकी सेवा केवल श्री वल्लभ जी नेही की थी किसी और सम्प्रदाय की यह स्वरूप सेवार्थ नहीं प्रदान किया गया था । जब गौसाई जी सपरिवार अडिल में जाकर बस गये तो यह स्वरूप भी ठेक गोकुल में पधराया गया । श्री आचार्यजी ने अपने चतुर्थ पुत्र श्री गोकुलनाथ जी को यह स्वरूप सेवार्थ प्रदान किया । इन्होंने ही वाता साहित्य का प्रवर्तन किया था ।

यह स्वरूप चतुर्भुजधारो गौर वर्ण का है । आप दो हाथ से वंश वादन कर रहे हैं । एक हाथ ऊपर उठाये हैं, एक में शंख धारण किए हैं । अपने मुख पर मुकुट का धृंगार है । दोनों पक्ष पार्श्वों में दो स्वामिनियों के स्वरूप हैं, एक स्वरूप श्री राधा जी का, दूसरे श्री चन्द्रावला का माना जाता है । राधा के हाथ में चंवर और वांसुरी एवं चन्द्रावला के हाथ में चंवर एवं शङ्ख है । श्री गिरिधर लाल जी यह स्वरूप अपने वचनामृत में इसी प्रकार का बताया है । श्री द्वारिकेश जी ने श्री गोकुलनाथ जी का एक हस्त ऊपर उठा होने के कारण उन्हें श्री गोवर्धन धर का स्वरूप मानकर उसका स्वरूप भावना अपना कृति में निम्न प्रकार से की है - श्री गोवर्धन नाथ जी के उद्धरण का स्वरूप, आयु तो हरिदास वर्ण है । जब प्रभु पधार ता आयु ते ठाके भये । श्री उसी डाडा चारिहर तीक्ष्ण प्रभु वाम हस्त उचो कर जब

वेणुनाद करें तब अवलम्बन का आरंभ है तब इन्हीं की दक्षिणा हस्त होत है । इनके वाम हस्त में शंख है जो आच्छाद है ताकी आशय है यह जल की तात्त्विक रूप है । समस्त वृष्टि के जल का इस शंख में आकषिण है अतः जल का आधिदैविक संबंध हुआ तब भोग्ययोग्य भया । शंख वा-म हस्त में है याहो ते स इन्द्र का अवराध हुआ किया । इन्द्र जल का सेवा किए और सब परिकार रक्षित किए । कमल पर ठाढ़ है याकी आशय । जैसे जल की अनुभव करके कमल बाहर आयी तब विकास, आमोद एवं लक्ष्मी निवास इन तानों गुणों का आरंभ भयो । ब्रह्मानंद की अनुभव करके बाहे ज- आर तब भजनानंद का अनुभव भयो यहाँ तिके अवयव की विकास और वाकी जो रूप है, पुष्प ज्यों तिनमें आमोद और प्रभु उत्तरोय वर विराजि । यह लक्ष्मी निवास श्री द्वारिकेश जो ने इस स्वरूप के विषयमें लिखा है कि इस स्वरूप का वेद भी प्रशंसा करते हैं । श्री गिरधरलाल जो ने इस पद के भावार्थमें में दक्षिणा भुजा उठाने के संबंध में लिखा है जो एक बार हमने दादा से पूछो होता तब आपने आज्ञा करा हतो जो लुवाये करा में धरि आय हस्त में लिए ठाढ़ है, सो ऐसे आज्ञा करे हैं, हाथ में लुवन को टोकरा है, दो गाय ऊँचो मोह्लो धरिके कपट मारे है सोतासो श्रीहस्त ऊँचो किए है * और नग सो गिरिराज है सो तासो या प्रकार ते झोड़ा करे हैं । जो बल्लभ जो ने इस स्वरूप का वर्णन अपने पद में बहुत अवोत्कृष्ट किया है । श्री आचार्य जा को निज्जाती का दशम भाती के भाव प्रकाश में श्री हरिराय जो का अधिन है । जो गोकुलनाथ जिनको नाम श्री आचार्य जो गोवर्धन धरो है सो गोवर्धन जिनके हस्त में है । श्रीहस्त जल काहें धरे हैं जो जल की जादि देव है और दोई श्रीहस्त जो वेदनाद करत है जाते ब्रजनाथ आनन्दित होत है । आपका स्वरूप किशोर लाला का सूचक है साथ में श्री स्वामिना जा ने होने के कारण उनको सेवा परिचर्या में ०००० किशोर लाला का भावना से होता है । जिस समय पुष्टिमार्ग के सेव्य स्वरूपों का प्रज से निष्क्रमण हुआ तब यह स्वरूप जयपुर में पधराया गया और राजा प्रताप सिंह के शासन काल में (स० १८३३ से १८५८ तक) जयपुर के

मंदिर में रहे । इस समय आपको सेवा सम्प्रदाय के नियमोंनुसार अत्यंत वैभव के साथ होता रहो । इसके बाद जयपुर केश रामसिंह (स० १८६२ से १९३७) ने लक्ष्मणागिरि नामक स्व-शैव अन्यासा के प्रभाव से वैष्णव एवं उनकेवल्य स्वरूपों की अवहेलना करने की आरंभ कर दी। इस कारण यह स्वरूप पुनः ब्रज में लाकर गोकुल स्थित मंदिर में पधराया गया । स० १९२३ से लेकर वर्तमान समय तक यह ब्रज में ही विराजमान है ।

श्री गोकुलनाथ जो चतुर्थ गृह के प्रथम तिलकायत थे । सारे भाइयों में थे ही सर्वश्रेष्ठ विद्वान्, सम्प्रदाय ममज्ञ तथा सबसे अधिक लोकप्रिय तथा धर्मादाय हुए । तत्कालीन अफ़ाट जहाँगीर आपसे बहुत प्रभावित थे । आपके क हा प्रयास से उसने तिलक एवं कंठा माला धारण न करने का शाही आदेश रद्द करा दिया था । इस कार्य हेतु ७० वर्षों का अवस्था में काश्मीर तक पदयात्रा का था । श्री गोकुलनाथ जी के शिष्यों में अनेक कवि एवं कलाकार हुए हैं । उदाहरणार्थ श्री हरिराय जिनको शिष्टा दादा आपसे ही द्वारा हुई था , उन्हा के प्रभाव से हरिराय जो सम्प्रदाय के प्रकांड वंशि विद्वान् तथा साहित्यकार बन पाए । इस गृह के तिलकायत श्री गोविन्ददास श्रीमहाराज हैं ।

श्री गोकुल चन्द्रमा जो :

वात्साहित्य, पुष्पिमागौय सेव्य दर्पण एवं अन्य साम्प्रदायिक उल्लेखों से ज्ञात होता है कि यह स्वरूप महावन में एक वृक्ष काव्याणा की ता नवनालाप्रिय जो के साथ ही प्राप्त हुआथा । उसने यह स्वरूप श्री आचार्य जो को समर्पितकर उन्होंने श्री नारायण दास ब्रह्मचारी को यह स्वरूप सेवार्थ प्रदान किया । उनके देहावसान के उपरान्त यह स्वरूप पुनः श्री आचार्य जो के पास लाता गया । गौ० विठ्ठलनाथ जो बहुत काल तक इस स्वरूप को सेवा का फिर बटवारे के समय अपने पंचम पुत्र श्री रघुनाथ जो को यह स्वरूप सेवार्थ प्रदान करवा किया ।

इस स्वरूप का वर्णन श्याम है । इसके श्रीअंग पर अधोवस्त्र रूप में धोतो का आकार स्पष्ट दिखाई देता है । सिर पर दुमाला नाम का चिन्ह है । श्रृंगार में मो दुमाला ही धारण कराया जाता है । श्री गिरिधरनाथ जी अपने स्वरूप का परिचय देते हुए लिखा है - श्रीअंग श्याम दुमाली,, धोवता का श्रृंगार, वंशो वजावते, जो नारायण दास की खीर सी श्रीहस्त दाफे हैं और अधायताई, वह श्रीहस्त में लाल छौंटा है, ऐसे स्वरूप हृदय में सदैव धारण करना चाहिए । श्री हरिकेश जो इस विषय में लिखते हैं - 'गोकुल चन्द्रमा जो के स्वरूप को भावना संबंध में लिखते हैं' फल प्रकरण के चतुर्थ अध्याय का लोला प्रगट और प्रकरण का लोला गुप्त है । साक्षात्तमन्थः इति वाक्यात् । अपने स्वरूप मात्र से कामदेव को जोते ।

यह स्वरूप गौ विठ्ठलनाथ जो के पांचवें पुत्र श्री रघुनाथ जी को प्रदान किया गया । ११३वें वचना मृत में एक घटना का उल्लेख किया गया है जब गौ जी ने अपने तृतीय पुत्र श्री बालकृष्ण जी को उनको स्वामिनो सहित युगल सेवा का मनोकामना सहित मनोकामना से पूर्ण होने का आशावदिविया तब श्री रघुनाथ जी बोले, ' जो मेरे दोय श्री स्वामिनो जा को मनोरथ है । तब श्री गोसाईं जी दुख न बोले । दो बारोयही विनतो को गई तब आप बोले जो श्री चन्द्रमा जो की उच्छा तै होयगो जा कुमारों हमारी कियो नहां होय और वैसे तो सदा आपके पास विराजे हैं । ये तो ब्रह्मचारी के ठाकुर हैं अतः ब्रह्मचारी हो रहेंगे तब तो श्री रघुनाथ जी चुप होयरहे । पाछे दोय स्वामिनो जा पयार से बरस पास विराजे । फिर चोरोभई स्वामिना सहित प्रभु जो चारा में पयारे । एक दिा ठाकुर जी को सावन सुदो ४ को दिन राधाकुंड में एक ब्राह्मण को मिले स्वामिनो जो अन्तर्धान भई । जाते बड़ेन को आज्ञा पालन कएव करनी चये । इस वचनानृत के अक्षिरक्त पंचम गृह केन्द्र भवन में अथत देवकानन्दन पुस्तकालय की हस्तलिखित ग्रामगो से भी इस बात को पुष्टि होता है ।

श्री आचार्य जा ने १४ ग्रन्थों को रचना का जितने आचार्य जा को

षोडश ग्रन्थों का टाका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पंचम गृह में श्री यदुनाथ जी के पौत्र द्वारिकेश जी विख्यात वातकार और कवि हुए हैं। अपने भावनात्मक वातांशों के कारण पुष्टिमार्गी 'भावना वारे' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके ग्रन्थों में भाव अवलोकन भावना, अष्टसखान के दोहा, श्रीनाथ जी आदि सात स्वरूपों की भावना, उत्सव भावना, नित्य लाला, मूल पुरुष एवं पद्योपदेश विशेष उल्लेखनीय हैं।

औरंगजेब की कुरता के कारण विभिन्न सम्प्रदायों के स्वरूपों के निष्क्रमण के साथ इनका भी निष्क्रमण हुआ। इस सेवा स्वरूप की जयपुर में ही पधराया गया था। अन्य दो प्रमुख स्वरूपों के साथ इनकी भी सेवा परिचर्या रामसिंह के शासन काल में उस समय तक पूर्ण वैभव के साथ होना रही परन्तु जब इन अवतार शुरू हो गई १६२३ ई० में वहाँ से हटाकर वीरकानेर नरेश के यहाँ पधराया गया स० १६०८-१६२६ में। स० १६२८ में आपका स्वरूप विजयदशमी के दिन भरतपुर के अत्यन्त रम्य स्थल के भवन में पधराने हेतु वीरकानेर से हटाया गया। तब से अब तक यह स्वरूप यहाँ स्थित है। २५ गृह के आध्यात्मिक आचार्यों में देवकीनन्दनाचार्य ई० १६१५ से १६७० तक अवलोकन अवलोकन अत्यन्त सेवाभावों और विद्वानाचार्य हुए। सम्प्रदाय के वैभव विकास में आपका महत्वपूर्ण कार्य है। उस समय उस पद पर गी० गी० वन्दराय जी विराजमान हैं।

श्री बालकृष्ण जी :

घरलू बटवारे में चिट्ठलनाथ जी अपने बड़े पुत्र श्री यदुनाथ जी को प्रदान किया गया था। श्री यदुनाथ जी ने इस स्वरूप को बहुत अपने तृतीय पुत्र श्री बालकृष्ण जी को अवार्थ प्रदान किया था। यदुनाथ जी की स्वेच्छा-नुसार स्वरूप न मिलने असन्तुष्ट रहते थे। परन्तु बालकृष्ण जी की सेवा परिचर्या

श्री यदुनाथ के जीवनकाल (सं० १६१५ से १६६० तक) द्वारिकाधीश के साथ तृतीय गृह में होती रही । बालकृष्ण जो के पुत्र श्री द्वारकेश जो तथा यदुनाथ जो के पुत्र मधुसूदन में मनमुटाव होने के कारण मधुसूदन ने अपने देवा स्वरूप श्री बालकृष्ण जो को प्रदान करने की इच्छा प्रकट की । श्री गोकुलनाथ जो ने बोच में पड़कर यह इच्छा यनकोपुरी करवा दी । मधुसूदन को स्वप्न में श्री बालकृष्ण ने आज्ञा की कि हमारा स्वरूप द्वारिकाधीश के साथ मंदिर में स्थापित करवा दो । श्री द्वारकेश जा ने मधुसूदन जो से इस स्वरूपके विषयमें लिखा गया लेख (~~द्वारिकाधीश~~ हमसफा) प्राप्त कर लिया था । श्री ब्रजराय जो ने अहमदाबाद में शाहीसहायता से ब्रजभूषणा से बालकृष्ण के स्वरूप की छोन लिया गा । उन्होंने इस स्वरूप को सुरत में पृथक मंदिर बनवक कर पधरा म दिया था । तभी यह स्वरूप वहाँ विराजमान है । पुष्टिमार्ग में भावना हो उसका केन्द्रविन्दु है । द्वारिकाधीश जो के मंदिर के पास बालकृष्ण स्वरूप की स्थिति मानकर माला चढ़ाई जाती है^१ । ग्वाल के समझ भोग रखा जाता है एवं उसी भाव से पालना के पद गार जाते हैं ।

यह स्वरूप गौर वर्ण का है । गिरिधरलाल जो इस स्वरूप का ध्यान इस प्रकार बता या है, गौर स्वरूप, ओहस्त में माखन ~~द्वारा~~ है और बाल लाला का स्वरूप, टीपो का चूंगार और मस्तक पर कस्तूरी बिन्दा । ऐसे स्वरूप का ध्यान सप्त देव्य स्वरूपों में न होने के कारण द्वारकेश जा के अष्ट स्वरूपों को भावनाओं में उल्लेख नहीं किया है । आप उनका उल्लेख गौड के स्वरूप का वर्णन करते समय करते हैं, दशम स्कंध के अष्टम अध्याय में -

यञ्जृष्णावतीपेत्य रत्निर्दृष्ट्या तत्त्वं चरुध्यात्याचरेण पुंसः

भक्तिहीन तत्पुरुषो य सख्यं तदेव चारं बद्ध मन्यते मदि ।^२

१- श्री गिरिधर मल्लराज के १२० वचनमृत, पृ० १४३

२- श्री द्वारकेश जाकृत. नाव भवना, पृ० २४

यहाँ राजा के पांच प्रश्न हैं। तहाँ शुक्रदेव जा कहें, इन लाला के भवणा पाले आमातृवरण को विरोध किए है सो लोलाकृत है - शकट भंजन एवं तृष्णावर्त उद्धार लोला है। तीन महिन के भये तब औत्थानिक लोला है। यह लाला जा द्वारिकानाथ के पास के ठाकुर आ बालकृष्णाजो है यहाँ यह लोला प्रगट तथा गुप्त है।

विट्ठलनाथ जो द्वारा समस्त सेव्य स्वरूपों आ नन्दकेतव मनाने पर यदुनाथ जी जतोरु नहों गर गोंके बुल्लोने पर आप चले तो गर पर अन्तेष्टा समाप्त न हुआ। ओषुष्टिमागेयि स्वरूप दर्पण में इस स्वरूप के संबंध में यह कथन है - आ कल्याण राय जो आ वल्लभ जो के सेव्य से पूर्व एक तालाब ऊपर देवी करिके पूजित हत रत्न दिन प्रभु जो वा रास्ता होख के पधारै सो आपको दृष्टि वा स्वरूप पर परो आप पास गर आपने विचारो कि यह तो बड़ा प्राचीन मूर्ति है औ ठाकुर जो को रूप है तब देवो को ऋंगार करायो है। उन्होंने पूछा बाबा ऐसा क्यों करा है कल्याण राज बोले सारा शिक्षित का पुकारा है याति इनको हम देवो करके पूजत है ठाकुर जो को जानत नाहा है। तब आपने साड़ी फाड़कर पाग बांधो ठाकुर जो गांव में गरी हतो आयके देता एक स्वरूप बसला हुआ है तब बाबा ने कृष्ण दास धूधरा दात्रा यादवदासखास ने दण्डवत करो और बोले महाराज हम तो अनजान है सो आप कहु आज्ञा करो। आचार्य बोले अच्छा तुम तीनों स्नान करके आओ तब तीनों स्नान करके आए तब आपने नाम निवेदन करवाया। एक दिन आपके सामने हो ठाकुर जो को ऋंगार करायो और सब गांव के लोग आपके सेवक भये। ओठाकुर जा को नाम आपने जो कल्याण जा रतो। ये तीनों जो इनका सेवा में रहने लो। बाद में यह स्वरूप आ आचार्य जो ने यदुनाथ जा को प्रदान किया। आ गिरिधरलाल जा के वचनानृत से श्री द्वारकाधीश जाका प्रवक्त्य वातां एवं अन्य जाम्प्रदायक उल्लेखों से ज्ञात होता है कि यदुनाथ ने अपने भाई बालकृष्ण के साथ, आ बालकृष्ण तथा द्वारकाधीश स्वरूपों का सेवा करते हैं। जो कल्याण राय जो का स्वरूप आ गोकुलनाथ जो ने मधुसूदा का सेवार्थ प्रदान किया।

आगे चलकर यह अष्टम ग्रह मैत्र सेवित होने लगा । श्री गिरिधरलाल जो ने वचनामृत श्री बालकृष्ण जी के स्वरूप को पतुः नारिकाधारा जी को गोद में पधारा जाने के संबंध में लिखा है । फीरि श्री मधुसूदन जो ने गोकुलनाथ जो को विनत की करी भरो तो बड़े स्वरूप की मनीथ है । श्री गोकुलनाथ जो के पास श्री कल्याणाराय जो विराजत रहे । अब यह स्वरूप बड़ादा में विराजमान है ।

यदुनाथ जो बड़े विद्वान तथा धर्माचार्य थे । वल्लभ दिग्विजय इन्होंने की कृति है । श्री वल्लभाचार्य जो एवं पुष्टिमार्ग का प्रारंभिक स्थिति के संबंध इस संस्कृत ग्रन्थ को सामग्री एवं तथ्यों को प्रमाणित माना जाता है । इनके पश्चात् श्री पुरुषोत्तम जो इसे महानाचार्य हुए । ब्रज भाषा में कौतूहल व लारक गीतों की रचना करने के कारण सम्प्रदाय में ख्याल वारे पुरुषोत्तम को कहा जाने लगा । प्रथम ग्रह को भांति इस ग्रह की परंपरा भी अविच्छिन्न रही है । इसमें भी अनेक प्रसिद्ध धर्माचार्य , साहित्यभूषा संगोत्तम एवं कलाविद हुए हैं । जैसे श्रीरमणलाल जो, गो० द्वारकेशलाल जो, प्रमुख हैं । अग्निकुमार पत्रिका के संचालक श्री द्वारकेश जो स्मारक समिति के संस्थापक गो० माधवराय जो जो आजकल मथुरा एवं पोरबन्दर के गृहों के अधिपति हैं , इस ग्रह के एक प्रवीण प्रतिभा सम्पन्न कला साहित्य दानी एवं सेवामावी आचार्य हैं ।

श्री मदन मोहन जो :

श्री विट्ठलनाथ जो धौलू सेव्य स्वरूपों के बटवारे में अपने सबसे छोटे पुत्र श्री घनश्याम जो को यह स्वरूप सेवार्थ प्रदान किया । उस स्वरूप का प्रकाट्य यज्ञ कुंड से हुआ था । श्री आचार्य जो के पूर्वजों १०० सौ सोम्यज्ञ किए । उन्होंने यज्ञ नारायण भट्ट को उनके कुल में पूर्ण पुरुषोत्तम के रूप में अवतरित होने का वरदान दिया था । यज्ञो समय यज्ञ कुंड से मदनमोहन जो का स्वामिनो प्रहित प्रकट्य हुआ श्री पुष्टिमार्गीय सेवा स्वरूप दर्पन

में श्री म० म० जा के विषय में लिखा है - ' जब यह स्वरूप यज्ञ कुंड
में प्रगट भयो तो आपने आज्ञा करो तुम्हारे यज्ञ पर सो भोग करता है
तुम्हारे पूर्ण पुरुषोत्तम प्रगट सोचि मायामत्त खंडन करि भक्ति मार्ग स्थापन
करेंगे जो देवो जीवनको उपकार करेंगे श्री वल्लभाचार्य नाम होयगो जो
भूतल में प्रगट होय ओढ़ा करेंगे जो आरस्वत कल्प रासलोला प्रगट करिके
देवो जीवनको अनुभव करावेंगे और आप सेवा मारग प्रगट करिके देवा से सेवा
करेंगे । इस स्वरूपके पांच सत्ता है । और जनेऊ की चिन्ता है । श्री मथुराष्टक
जा को टीका श्री घनश्याम जा के माथे विराजत है । यह स्वरूप युगल रूप में
वैष्णुनाद करके ब्रज वासियों को बुलाते हैं । यह स्वरूप कामवन नाम के
गांव में विराजत है ।

सीध हाथ में अंगुरो मध्यमा और अनामिका इन दोऊन सो
करतल की स्पर्श है ताते गमन अभय करत होय तो करतल का दर्शन होय तब
आगमन सूचित होय । यह वाक्य श्रवण करि भक्तन को एक बार तो चिन्ता
भई ' कहा प्रभु ने हमें त्याग दिया ' ।

देख्यो रो सुन्दर वदन

बेनुन बजार बुलाय लेत है पुच्यो रोच्यो हाड्यो सदन ।

धर्म छांड़ि निज धर्म किये है बारी गौर भय नंद नंदन ।

आरकेश प्रभु यह विष देखी न्यय कहत मन्मथ निकंदन ।

इन पद को तृतीय पंक्ति में इस स्वरूप का रंग और बताया है
जब कि कृष्ण का रंग काल होता है । श्री कृष्ण मोहन जो ने सामान्य
(मयादिमागोय लीकक) परित्याग करके गोपियों को स्वधर्म (प्राणिक कर्म)
अपना सर्वोच्च आत्म समर्पण दिखलाया है अतः तमा रंग गौर हो
गया है । श्री वल्लभ जा ने गोपियों को पुनः घर लौट जाने का उपदेश देने
तथा गोपियों का विकलता का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है ।

साम्प्रदायिक बटवारे में यह स्वरूप जो घाश्याम जो को सेवार्थ प्रदान किया गया। श्री घनश्याम जो का देहावसान साम्प्रदायिक वाताओं तथा साम्प्रदाय कल्पद्रुम के अनुसार श्री मदनमोहन जो के हाँ वियोग में हुआ। श्री गिरधरलालजा के वचनानुसृत तथा साम्प्रदाय कल्पद्रुम के अनुसार सन० सं० १९६६ में अन्नकूट के अवसर पर श्री घनश्याम जा तथा श्री गोकुलनाथ जा के पुत्रों में सुखमान के डंडे को लम्बाई की देल वैमनस्य उत्पन्न हो गया। श्री गोपालजी ने गोष्मकाल में श्री घाश्याम जो के गृह से उनके सेव्य स्वरूप को चुरा लिया। श्री घनश्याम जो अत्यन्त व्याकुल हुए और यह दृश्य अन्तर्गत हृदयविदारक था। तीन दिन तक उन्होंने अन्न जलग्रहण न किया और शाप दिया कि जिसने यह कुकृत्य किया है वह निर्वंश हो जायेगा और वक्ता इनका वंश समाप्त हो जायेगा। इसके बाद श्री घनश्याम जो ने फलाहार हाँ किया और थोड़े दिनों के बाद इनको मृत्यु हो गयी। इनके पदों से भी इस घटना की सूचना मिलता है। तब सुमध्यमा यह पद है - तासो मतलब है मरुन के भाव देखि के मोहित भये यह जाने। सम्पूर्ण गौर वर्ण का है। याते तन्मयता निश्चय भई। ता पाछे पादुका का प्रदर्शन भयो। यह अन्तराल है। जो अन्तरोय होय ताको स्पर्श समान है जैसे नोजा। अंशराग लगा हुआ है। चरणारविन्द साधन भक्ति ताते मयादिन है सो भक्ति संवर्धित होय तो भक्त स्वाकार करे और भक्तिसंवर्धित भयादि न होय तब स्वाकार नहीं। दक्षिणा चरणारविन्दको अंगुरा को स्पर्शमात्र पादुका को है ऐसे दर्शन से दास्य स्फूर्ति भई। ऐसे आमुष के दर्शन से मुक्ति भई। कलकावृत आमुष देखिके सामुज्य एवं मुक्ति को प्राप्त होय। दोउ कुंदल योग मु. दास के समोष्ण मुक्ति होय। आलीक्य मुक्ति में अकारानुभव है, सो गंडस्थत्युक्त जो अघरता रस के आगे अन्य रस तुच्छ हैं। सामुज्य मुक्ति में ब्रह्मानंदानुभव है जो तात्पर्यपूर्ण जो अवलीकन होय वहा भक्ति रस है। जो आरकेश जा ने २४ स्वरूप को भावना करते हुए इनके वंशवादन करते स्वरूप को दशम स्कंध १६वें अध्याय रसात्सव पूर्व के नटवरलाल श्रीकृष्ण को स्वरूप बताया है।

वंश का विश्वमोहिनी ध्वनि से काकषित होकर गोपियों से रबन्धना
 रस श्लोक भगवान का कहता है, ' इस रात्रि में मैं तुम लोगों का रस
 बन ठहरना ठाक नहीं है अतः तुम पुनः घर चला जाओ ' । रस भवना के
 अनुसार श्री मदनमोहन जी के स्वरूप में दक्षिण हस्त को मध्यका तथा
 अनामिका का करतल से स्पर्श गोपियों को पुनः गृह लौट जाने का संकेत
 है । स्वरूप वर्ण गौर है चरणों में स्पर्शमात्र जादुका से है । मुद्रा वंशो-
 वादन की है अर्थात् वाम चरणपर कुछ तिरछा दक्षिण चरण धारण
 किए हैं । दोनों हाथ वंशोवादन की मुद्रा में हैं । मुखमंडल पर अलकावला
 घिरि है । इनके गंडस्थल युक्त अधर के रस के सम्मुख सभी युक्तियां तथा
 ब्रह्मानंद अनुभव भा तुच्छ है । इस प्रकार श्री द्वारिकेश जी ने इस पुष्टिभागीय
 सैद्धान्तिक पदा का विवचन तथा पोषाण किया है । इनका कहना है -
 ये सम्प्रदाय के संबंध में रस का ज्ञान भंडार असीम था । हिन्दा तथा संस्कृत का
 पूर्ण ज्ञाता था । जैसा कि परिचय इनकी मधुराष्टक एवं गुण्य रस का
 टीकाओं में प्राप्त होता है ।

श्री मदनमोहन जी का स्वरूप 30 1986 जावण शुक्ल की^५
 पुनः प्राप्त हुआ । इस स्वरूप का श्रीहरिराय जी ने पहचाना । इस घटना
 का विस्तृत वर्णन करने के लिए श्रीगिरधर लाल जैन उस काल में
 श्रीधनरया जी के प्रेसि नाता श्री उपेन्द्र जी श्रीकान्त जी का उत्कृष्ट करते
 हुए लिखा है कि श्रीकान्त जी के यात्रा के आने के पश्चात् मार्गशीर्ष शुक्ल ६
 के श्री मदनमोहन जी का महोत्सव मनाया गया । गृह स्वामिना जी के
 मोरो हो जाने से देवल इन्हो को प्रजा अर्चका होता रहा । श्री वल्लभ जी
 के पद दो पंक्तियां देखिए -

अधर उसे नैनन जांतू ढरे गति भूलि ब्रजनार। हो ।

मार्गे दूरे मदनमोहन पिय निरति दास बलिहार है ।

ब्रज सैव्य निष्कृष्ण के समय आपका स्वरूप जयपुर में श्री गोकुलनाथ

श्री गोकुलचन्द जो के स्वरूप के साथ ही पधराया गया था । श्रीराम सिंह द्वितीय के शासनकालमें श्री गोकुलचन्द जो के साथ ही वाकानेर लायागया ई० १६२८ में ये दोनों स्वरूप कामवन में लाये गये तब से अब तक सप्तम ग्रह के तिलकायती ११ शिवित वहाँ विराजमान हैं । सप्तम ग्रह के आचार्य-पश्चात् पंचम ग्रह द्वारा इनको सेवा होने लगी ।

सम्प्रदाय में विटेठल्लाय जो के जाती पुत्री तथा साती सेव्य स्वरूपों का विशेष सम्मान है । सम्प्रदाय में ब्रह्म संबंधों दोदा दैत का अधिकार केवल आचार्य वंशजों की ही है ।

(ब) मयादिमागयि पूजा या उपासना का स्वरूप और
सेवा भावना से उसका अन्तर :

‘ बन्ध इन्द्रियविदीपो मोक्षा रक्षा च संयमः ’

इन्द्रियों का विषयों के लिए चंचल होना हो सके बड़ा बंधन है । तथा इन्द्रिय नियंत्रण हो मोक्षा है । मोक्षा प्रगति के लिए तीन मार्ग हैं - कर्म मार्ग, ज्ञान मार्ग एवं भक्ति मार्ग । तीनों ही एक दूसरे के पूरक हैं । श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध के २० अध्याय में भगवान् उद्धव जी को मानव के वास कल्याणार्थ विविध साधनों का विवेचन करते हुए कहते हैं जिस कथन से भक्ति को श्रेष्ठता प्रकट होती है ।

‘ तस्मान्मुद्भक्तियुक्तस्य योगिनी वै मदात्मनः^१
 न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ।

अर्थात् जो व्यक्ति भक्ति से युक्त और भरे चिन्तनमें मग्न रहता है, उसके ज्ञान अथवा वैराग्य की आवश्यकता नहीं होती । उसका कल्याण तो भक्ति के द्वारा ही हो जाता है । उपरोक्त स्कंध के १४वें अध्याय में भगवान् और स्पष्ट शब्दों में कहते हैं -

न साध्याति मां योगो न सांख्यं धी उद्धव ।

न स्वाध्यायस्तस्त्यागो यथा भक्तियोगोन्नीता ।

ऐसे भक्तभगवान् को अपने पुत्र, शंकर ब्रह्मा अद्विगिनो लक्ष्मी से भी बढ़ कर है । भगवान् स्वयं अपने भक्तों के वर में हैं। वह यह सोच कर भक्तों के पोछे घूमा करते हैं कि उनके भरणों की धूल उड़कर भरे ऊपर पड़ जाय ऐसेभक्त विधि विधानों यज्ञादि में त्राट होने पर भी उनका मार्ग अलुप्त नहीं होता न परित्याग पातित होते हैं न ही फल से वंचित होते हैं ।

जिस प्रकार वैधा भक्ति एवं प्रेम लक्षणा भक्ति में अत्यधिक स्वरूप एवं तात्त्विक अन्तर है, ठीक उसी प्रकार उपासना के क्षेत्र में पूजा एवं सेवा में महान अन्तर है। देवार्चना के दो रूप हैं (१) पूजा (२) सेवा। पूजा का क्षेत्र कर्म मार्ग है - मर्यादा मार्ग है, पूजा विधेयात्मक है। विभूति-परक होने के कारण पूजा कर्ममार्गीय है। इस मार्ग में साधन तथा फल भिन्न माने जाते हैं। पूजा विधि से संबंधित होने के कारण सार्वजनिक है।

सेवा शुद्ध पुष्टिमार्गीय है इसमें भावना का प्राबल्य है। पूजा विधेयात्मक है सेवा स्नेहात्मक है। साधन और फल के ऐक्य का निर्देशक सेवा है। यह स्नेह से संबंधित होने के कारण व्यक्तिगत है क्योंकि स्नेह सार्वजनिक प्रदर्शन का विषय नहीं होता। सेवा में सेवा के सम्पूर्ण सुख का सस्नेह अनुग्रह होने के कारण सेवा के अभिलाषित ऐक्य सुखानुकूल परिचर्या का विधान है।

श्री वल्लभ जो के कथनानुसार सगुण भक्ति के परब्रह्म के ही अवतारों की पूजा को जाता है। वल्लभ भक्ति में एकमात्र सेव्य स्वरूप निर्दोष पूर्ण गुणावान शोकृष्ण हैं। जार अतीतिक गुण धर्मों से युक्त वर्ण होते हुए भी प्राकृत गुण धर्मों से रहित होने के कारण निर्गुण हैं। अतः शोकृष्ण उनके विचार से निर्गुण ब्रह्मा हैं। इस न्ययसे पुष्टिमार्गीय भक्ति को निर्गुण भक्ति और वह अन्य देवोपासना को सगुण भक्ति कह अपा निर्गुण भक्ति को ही श्रेष्ठ माना है। कर्म मार्ग में अर्चना का प्रकार पूजा कहलाता है अर्थात् कर्म को प्रमुखता है। उपासना को इस पद्धति में केवल मंत्रों का प्रधानता है, अधिकतर ध्यान इन्हीं पर रहता है। आधारणात्मा पूजा और अथवा सेवा दोनों समानार्थक माने जाते हैं परन्तु वल्लभ जो का भक्ति भावना के अनुसार उनमें भेद है। उपास्य देव को स्नेह पूर्व की गई परिचर्या सेवा कहलाता है जो विधि विधान को अपना भावात्मकता से पूर्ण होता है। इसके विपरीत स्नेह और भावना के अभाव में केवल मंत्रों के आग्रह से की गई परिचर्या को पूजा कहते हैं। पूजा में मर्यादा का अधिक ध्यान रखने से मर्यादा मार्गीय भक्ति सम्प्रदायों में पूजा प्रचलित है। सब सम्प्रदायों में पूजा उपासना का यहो रूप

मिलता है ।

‘ भज सेवा प्रभू ’ इस सूत्र के अनुसार सेवा शब्द भज धातु से बना है । इसका अभिप्राय है भजन करना । श्री वाल्मि ने इस शब्द का अपने सुबोधिनी में सेवा के रूप में प्रयुक्त किया है । हमारे मार्ग में अर्थात् पुष्टि मार्ग में भजन का ही सेवा ही ग्रहणा किया गया है । इन्होंने केवल श्रीकृष्ण को प्रेमपूर्वक सेवा को ही भक्ति माना है ।^१ भक्ति के दोनों भेदों में से वैधा तथा प्रेमलक्षणा में से दूसरा को ही पुष्टि सम्प्रदाय में स्वीकार किया है । इनको को पूणाविस्था अनन्य सेवा है । इस स्थिति में भक्त का ध्यान रात दिन अपने सेव्य स्वरूप के मुख का ध्यान रखने में लगा रहता है । मर्यादा भक्ति विधि से सिद्ध होता है जबकि अन्तर प्रेम से सम्पन्न होता है ।^२ सिद्धान्त मुक्तावली में श्री आचार्य जी ने लिखा है ‘ हरि में चित्त को पिरोना ही सेवा है ’ । अर्थात् सेवक की समस्त इन्द्रियां तथा तन और मन अपने आराध्य का सेवा में इतना तल्लीन हो जाय कि उन्हें आसारिक अन्य क्रिया कलाप प्रभावित न कर सकें । स्नेह ही रागात्मक भाव है जो मां के ध्यान को सभी और से छटाकर एकमात्र बालक को परिचर्या में तल्लीन कर देता है । मां को यह परिचर्या बालक को सेवा कहा जायेगी पूजा नहीं । एक पत्त्रिता नारा को अपने पाँत का सेवा करके स्वर्गिक आनंद प्राप्त होता है, ब्रह्मानंद भी इसको समानता नहीं कर सकता । श्री आचार्य ने पुष्टिमार्गीय सेवा में इनोक्ति वात्सल्य भाव अथवा मधुर भाव या कान्ता भाव को प्रधानता दी है ।

धर्म मार्ग, ज्ञान मार्ग एवं भक्ति मार्ग इन तीनों मार्गों में पुष्टि

१- १- भजने से देव भक्ति योग है तस्यैव नाम (सुबोधिनी जी)

२- भक्तिशास्त्रोया आन्तर प्रेमवैल्ला सेवादि (सुबोधिनो)

३- कृष्णात् - परं नास्ति देवं वस्तुतो दोषवार्जितम् (अन्तःकरण बोध)

मार्ग सर्वथा विलक्षण एवं पृथक् मार्ग है ॥ दर्शन, भक्ति और अर्चना को क्षेत्र में जो विलक्षणता है वह और किसी सम्प्रदाय में नहीं मिलती ।

‘ अन्नःकरण बोध ’ में आचार्य जो के कथनानुसार श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कोई देवता दोषा रहित नहीं है । सेवा सदैव पूर्ण पुनिष्ठात्म अवशिष्टमान सर्वधार निदोषा ब्रह्म को हो की जा सकती है, इस न्याय से श्री आचार्य जो अन्य देवों की अर्चना परिचयों एवं स्वप्रतिपादित अर्चना पद्धति की सेवा कहते हैं । पूजा भावना का विभूतियों को जल जाती है । पूजा का चरम लक्ष्य सामुज्यादि को मोक्ष प्राप्त तक सामित रहता है । पूजा मार्ग में साधन और फल भिन्न भिन्न माने जाते हैं । पुष्टिमार्ग में प्रेम लक्षणा भक्ति ही साधन है एवं प्रेम ही इसका फल है - तनुजा, विजा सेवा इस मार्ग में साधन रूप है और मानसा सेवा इस मार्ग में फल है । पूजा मार्ग छया मयादि मार्ग में स्थिति इससे भिन्न है । कुछ अज्ञात, एवं पुष्प सुता एवं नैवेद्य बढ़ाकर साधक विभिन्न इच्छाओं की पूर्ति करता है ।

साधन और फल के रस की निदेशक सेवा है । सेवा में सेवक का एक मात्र इच्छा अपने इष्टदेव को सुख पहुंचाने तथा प्रसन्न करने की इच्छा रहती है । आचार्य जो ने अभिहित स्नेह को अष्टि शास्त्रीय मयादिओं से परे स्नेह से को जाने वाली परिचयों सेवा माना है । सेवा में भावनाका हा प्राधान्य रहता है । किसी व्यक्ति में भावपदा प्रबल रूप में हो सकती है दूसरे में उससे कम भा हो सकता है । भावना को सबके सम्मुख प्रकट भा नहीं किया जा सकता है , इसीलिए सेवा सार्वजनिक न होकर व्यक्तिगत होती है ।

प्रत्येक सेवक अपने किसी भी सेवा की किसी भी प्रकार से अवलोक सेवा करने के लिए स्वतंत्र है । पुष्टिमार्गीय अष्टायाम सेवा में सेवा सम्पन्न होने के समय उन ग्रहों के गोखामा, मुख्या तथा उनका अनुपस्थिति में मुख्य सेवक हा प्रभु का सेवा सेवा काल में निज सेवा ग्रह में रह सकते हैं । उस समय को वैष्णव अन्दर प्रवेश नहीं कर सकता ।

पूजा का स्वरूप सार्वजनिक है। देवालय तथा मंदिरों में अष्टाष्ट देवों का सामूहिक तथा सार्वजनिक पूजा के स्थल हैं। इनमें अष्ट देवों को प्रतिमाओं की मूर्तियाँ करा जाता है। अष्ट देव को स्नान कराना है तो पुजारा स्वयं गर्म जल से स्नान कराकर ऊनी वस्त्र धारण कर देता है और प्रतिमा को शीतल जल से जब तक नहलाता रहता है, जब तक कि मंत्रोच्चारण सम्पूर्ण न हो जाय। कारण यह है कि पुजारो इस भावना का अभाव है। सेवक कभी ऐसा न करेगा क्योंकि उसे अपने से अधिक ध्यान अपने अष्ट देव का है। अष्ट देव ठंड या गर्मी से का अनुभव करेगा वैसे ही देव के अवस्थान में जाँचगा तथा उसी मौसमी वस्त्र का धारण करायेगा। पुष्टिमार्ग में पूजा व्यक्तिगत होने के कारण पूजामार्गियों के समान मंदिर तथा देवालय आदि नहीं होते। इनके वंशजों के सेवागृह नन्दालय कहे जाते हैं। गोस्वामी के गणों के दो दत्त सेवकों को ब्रह्म संबंध अथवा आत्मनिबोधनोपरान्त सेवा हेतु श्रेष्ठ स्वरूप प्रदान किए जाते हैं। आचार्य जो ने अपने सुबोधितो टोका में सेवा भावनाओं सामूहिकता का निषेध किया है। भजन का प्रयोग पुष्टिमार्ग में सिद्धान्तक ग्रन्थों में सर्वत्र सेवा अर्थ में हुआ है। आचार्य जो ने पूजाय को मूलतः महान दोष तथा भक्ति का बाधक माना है।

फल को दृष्टि से भाग दो भागों में भिन्नता है। प्रत्येक पूजा का विधान किसी न किसी फल विशेष के लिए होता है। स्वस्ति वचन में जो ब्राह्मण सामूहिक रूप से मंत्रोच्चार के साथ भगवान की समस्त इच्छाओं की पूर्ति एवं अरिष्ट निवारण का आशीर्वाद प्रदान करते हैं। इससे विपरीत सेवाफल स्वयं भगवान कृपा का फल माना जाता है। भगवान के विशेष अंगुष्ठ से ही भक्त को भगवान का सेवा प्राप्त होती है। गोमदभागवत के श्लोक को सुबोधितो टोका करते हुए आचार्य जो कहते हैं कि अर्चनाया अर्चनाया फलं हेतुः - सेवा च पुष्टिमार्ग सस्नेहा कृपा फलं चैतत्। अर्थात् पूजा अथवा सेवा अर्चना फल प्राप्ति का साधन है - हेतु है। परन्तु सेवा साधक एवं साधक दोनों हैं। (सेवा स्नेह के साथ सम्पन्न की जाती है और

सेवक अपने सेव्य को प्रतिमा के केवल प्रस्तर का प्रतिमा मात्र न मान कर उसे बालकृष्ण जी की भावना मान कर चलता है जैसी ब्रज वासियों ने माना था। पूजा मार्ग या मयक्रिा मार्ग इन चोर्जी पर ध्यान नहीं दिया जाता। सेवा साधन और साध्य दोनों हैं। इस मार्ग में अनुग्रह ही नियामक है। श्री गौसाईं जी के पुष्टिमार्ग में सेवा प्रकार वर्षी दिन के उत्सव, नित्य सेवा को कार छष सामग्री, आभूषणा, वस्त्र, जिंहासन, खंडमार, पिछ्वासा, निज मंदिर, माणि काठा, त्वारो, अल त्वारो, रजई घर, पान घर, फूल घर, शाकघर, मंडार, चौक, कोषा, सेवक, कार्तनीया, परिचयक आदि सब सेवा संबंधी पदार्थ अलीकिक हैं। इसी भाव से पुष्टिमार्ग)य सेवा सम्पन्न करना चाहिए। यदि इनमें कोई लौकिकभाव उनकी तो यह महान अपराध है। इस भाव को गुप्त रखना चाहिए, यह उसी प्रकार का है जैसा श्री कृष्णवतार मेंमखशौदा जी ने गोपियों, ग्वालों तथा राधा जी का कृष्ण के प्रति था। इस सम्प्रदाय में सेवोपयोगी प्रत्येक वस्तु भाव के साथ समर्पित की जाता है। जैसे धूप स्वामिनों के श्वासीच्छ्वास का सुरपि रूप है, पुष्पों में ब्रजनक्षत्रों की भावना है। पूजा में इन प्रकार की समस्त सामग्री केवल उपकरण-त मात्र है। पूजा विधि में साधक अपने मनोकुल पुष्प भोग समग्री अमरनादि प्रतिमा की निवेदित करता है। जैसे पिता पुत्र की दुलारतो है प्यार करता है पालतो पोसतो है सेवा में इसी की अनुकृति होता है। जहाँ जिस स्वरूप की सेवा होता है वहाँ गोस्वामी जी उसी स्वरूप की अपना सब कुछ मानता है। इस सम्प्रदाय में सेव्य स्वरूपों की निधियाँ कहा जाता है। और सेवक उसकी जी जान से सेवा करता है। देवालय में यदि किसी प्रतिमा का अंग भंग हो जाय तो वह प्रतिमा प्रजा योग्य नहीं रहता उसे यथा स्थान कहीं पृथक रख दिया जाता है या जल में प्रवाहित कर दिया जाता है। सेवा में यही ऐसा ही तो सेवक भाव में किसी प्रकार का कोई अन्तर नहीं आता वह उसी भाव से उसकी सेवा में निमग्न रहता है। इसमें सेवक ने मनोबाक् देहादि का धेष्टा ही सेवा है। सेव्य की हार बनाना, फाड़ू बुहारा करना

ऐसे सब कार्य सेवान्तरित हो जाते हैं । ब्रजबल पूजा मार्ग में पूजा सामग्रियों का अम्पादन क्रिया कर्मा भी पूजा के अन्तर्गत नहीं माना जाते । सेवा में आचार्य जा के कथनानुसार सेवया सर्वभावेन भजनीया ब्रजाध्याः अर्थात् हर समय हर भाव से श्रो कृष्ण सेवनीय हैं । सर्वदा एवं सर्वभावेन का अर्थ यह है कि प्रति क्षण दरहोन्त्रिय प्राणादि को प्रत्येक भेषटा भावसेवार्थ हो जाय । आचार्य जा ने दशम स्कंध के प्रथम अध्याय का सुबोधिता में पूजा के स्वरूप का उल्लेख करते हुए कहा है ' स्तोत्र, नमस्कार, और नम्रता से सोमित परिचर्या में धूप, दीप एवं उपहारादि से सोमित सामग्रोपजा प्रकार को परि सामग्रो है । भाव भावना में श्री द्वारकेश जी का कथन है, ' कि वे०स्व सेवा से भी वैष्णव को अवसर मिलने पर अपने लौकिक कार्य भी करने चाहिए परन्तु ध्यान रहना चाहिए कि मेरा प्रत्येक कार्य ईश्वर के लिए है । इसीलिए आगे ब्रजबल कहते हैं भावदोषन श्री मिलि भगवत्कृती करने, काम निवृत्त्यर्थ स्वामा श्री हो अंग करे, भाव ठ यह रखनी जो सन्तान होय तो सेवानुकूल होय श्री महाप्रभु जी गोसाईं जी और जाघर को सेवक होय तिनके सेव्य स्वरूप को स्मरणकर निन्दा करे । इन शब्दों में उन्होंने प्रति क्षण प्रभु ध्यान में रहने का संकेत दिया है ।

पूजा मार्ग में पूजा विभूति परतत्त्व होने के कारण मूर्ति को समर्पित नैवेद्य गृहणा करना निषिद्ध मान गया है , प्रतिमा के समकक्ष रखे दोष का प्रयोग अन्य कार्य में उपयोग नहीं हो सकता, पुष्टि तगयि सेवा में यह नियम अमान्य है । इसमें सेवक वस्तुओंका उपयोग तभी कर सकता है जब वे प्रभु को समर्पित कर जा जायेंगे । सिद्धान्त रहस्य में आचार्य जी कहते हैं, ' असमर्पित वस्तुओं को अवधा त्याग देना चाहिए । समर्पण का भाव इस मार्ग का मूलधार है । सिद्धान्त रहस्य में आचार्य जा ने कहा है , ' जिसका आत्मनिवेदन अर्थात् ब्रह्म संबंध हो बुद्धा है । वे उस वस्तु ईश्वर को समर्पित करके ही अपना उस कार्य करें । यन्त सेवा मार्ग का मयादि है ।

२- वस्तु: श्लोकिका, श्लोक ३

२- विवेक निवेदिमः समर्पण सर्व कुर्यादिति स्थिति (सिद्धान्त रहस्य २०५)

पूजामार्ग में देश, काल, द्रव्य, कर्ता, मंत्र, एवं क्रिया का परिशुद्धि अत्यावश्यक होता है। इन सबको शुद्धि होने पर पूजा विधान पूर्ण तथा आ पातो है। यदि कुछ अभाव रह जाय तो जो अमोष्ट फलसाध्य प्राप्त करना होता है। उनको प्राप्त असम्भव है। जबकि इस काल प्रत्येक तत्त्व को शुद्धि पूर्णतया असम्भव है। सेवा में इनका विस्तृत आवश्यकता नहीं पड़ता। सेवक समस्त दोषा पूर्ण आत्मनिवेदन कर देने पर ही समाप्त हो जाते हैं। (अत्र कालो न नियमकः) सेवा निरन्तरता के कारण नियमितता नहीं रहती। दोषा पाँच प्रकार के माने गये हैं - सहज, देशकालोत्प, लोकवैद निरूपित, संयोग एवं स्पर्शज। पूजा मार्ग में पूजा से पूर्व इन दोषों को निवृत्ति के लिए भूत शुद्धि, शरीर शुद्धि एवं न्यासादि का विधान बनाया है। इन सब विधान पूर्ण के उपरान्त पूजा को निदोषा कहा जाता है। सेवा में इन दोषों का अस्तित्व भी नहीं माना गया। क्योंकि सेवा में केवल भाव को प्रधानता है। स्नेह तथा क्रम से ईश्वर भक्त के वक्ष में हैं और स्नेह के साथ समर्पित किये गए रुखे सूजे तथा झूठे पदार्थों को भी भगवान् स्वीकार कर लेते हैं। आचार्य जो के कथनानुसार ब्रह्म संबंध होने पर देह और जीवसंबंधी सब दोषों को निवृत्ति हो जातो है।

पूजा मार्ग में प्रतिमा के भीतर ही देवता का आदर भाव और तिरोभाव होता है। पूजा से पूर्व षष्ठोक्त मंत्रोच्चारण द्वारा देवता का आवाहन किया जाता है। और पूजा उपरान्त देवता के लौट आने की प्रार्थना की जाती है। सेवा मार्ग में इन सब आडम्बरों की आवश्यकता नहीं रहती। जिस माणिक के स्पर्श से ताम्र भा स्वर्ण बन जाता है, उसी प्रकार प्रतिमा भी गुरु के स्पर्श से पूर्ण पुरुषोत्तम का रूप धारण कर लेता है। काल एवं कृत के अनुसार एवं अपने सामर्थ्यानुसार तन से एवं वित्त सेव्य स्वरूप की राग, भोग एवं भृंगार युक्त अष्टयामि सेव सम्पन्न करना चाहिए। स्पर्श माणिक के स्पर्श से स्वर्ण बना हुआ ताम्र पुनः कदापि ताम्र नहीं बन सकता। उसी प्रकार

साक्षात् पुरुषोत्तम का भावना वैष्णव जिस स्वरूप का सेवा परिचर्या करता है सेवा मार्ग में वह सेव्य स्वरूप भी सदा सदैव पुरुषोत्तम रूप में भी रहता है ।

इस सारे विवरण से स्पष्ट होता है कि मयादा मार्ग पूजा एवं पुष्टिमार्गीय सेवा में महान अन्तर है । सेवा में लौकिक युक्ति स्नेह मुख्य है, जबकि पूजा में शास्त्रानुसार विधि विधान एवं मयादा प्रमुख है । सेवा में निःसाधनों को प्रधानता रहती है । पूजा में नहीं । सेवा में भावदुग्ध का नियामक है, जोव का निःसाधनता अनिवार्य है परन्तु पूजा में साधक को स्वयं साधन जुटाने पड़ते हैं । सेवा निरन्तरता अनिवार्य होने के कारण देशकालदि दोषों के लिए स्थान नहीं रहता । सेवा में जोव को अमर भाव बढ़ाने का अवसर भी नहीं मिलता । पूजा में शरीर शुद्धि , भूत , द्रव्य) मंत्र शुद्धि आदि अनिवार्य है । सेवा में इनके अतिरिक्त केवल भगद समर्पण ही पर्याप्त है ।

मयादा मार्ग में देवीर्चना को ही पूजा का संज्ञा दी गयी है । वैष्णव सम्प्रदायों में भक्ति के दो रूप पाये जाते हैं - (१) प्रेम लक्षणा भक्ति जिसे पराअवहिता, फलरूपा एवं रागात्मिका भक्ति कहा जाता है । भक्ति का दूसरा मयादा भक्ति है जिसे गीणा, विहिता, साधनरूपा एवं वैधो भक्ति के नाम से प्रसिद्ध है । वैधो एवं मयादा भक्ति में भाताराधना विधि विधानों से को जाती है । जिस प्रकार सेवा एक साधन एवं फलरूपा है और उसमें स्नेह तथा प्रेम भाव का प्रधानता रहता है, अतः सेवा एवं प्रेम लक्षणा भक्ति का परस्पर संबंध है । यदिभ्रमा भक्ति एवं सेवा का संबंध है तो मयादा भक्ति एवं पूजा का भी परस्परसंबंध है । पूजा में क्रियात्मक वृत्ता प्रधानता रहता है अतः इसे क्रियायोग भी कहा जा सकता है । मंत्र प्रधानता रहने से उपासना आराधना एवं अर्चना कह सकते हैं । पुष्टिमार्ग के अतिरिक्त भारत के सभी वैष्णव सम्प्रदायों ने देवीपासना में पूजा का हास्वरूप पाया जाता है ।

वैदोक्त कर्म मार्ग में कर्म का हो प्राधान्य है । किन्तु देवता विशेषण का प्रधानता नहीं । आचार्य जो के अनुसार फल सिद्धि के लिए भगवान के किता भी रूप का भाजन किया जा सकता है । अगुण मार्ग में अगुणीपासना से फलस्वरूप प्राप्त होने बालो मोक्ष भी अगुण मोक्ष कहो गये है किन्तु निर्गुण मोक्ष प्राप्ति श्रीकृष्ण को सेवा से हो संभव है । अतः फल ताड़तम्य एवं सेव्य को दृष्टि से पूजा एवं सेवा में महान अंतर है । पूजा मार्ग- कर्म मार्ग है उसमें भक्तित्व को कमा है । अतः वत्सल भावित मार्गपूजा मार्ग से विशिष्ट है । पुष्टिमार्ग के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों विभिन्न देवताओं का प्रसन्नता प्राप्ति के उन उन देवों में प्रधान भूत, सिद्ध, मंत्र, जपादि द्वारा अर्चना का प्रकार उपासना या पूजा कहलाता है । उपासना का व्यवहारिक रूप प्राचीन काल में यज्ञ थे । देवों के यज्ञ में उन देवों के मंत्र से आहुतियां दो जाता था। सूर्य, अग्नि, इन्द्र आदि को अर्चना को अधिकता था ।

कर्म योग के मुख्य तीन भेद गीता में गिनार हैं । श्रीकृष्ण कहते हैं, (१) कर्म विशेष प्रधान कर्मयोग, (२) भक्ति मिश्रित कर्म योग (३) भक्ति प्रधान कर्मयोग । समस्त कर्मों में तथा सांसारिक पदार्थों में फलाशक्ति का त्याग करके और वर्णानुसार शास्त्रविहित कर्म करते रहना ही कर्म प्रधान कर्म योग है । भक्ति मिश्रित कर्म योग में समस्त संसार में व्याप्त ईश्वर को शास्त्रानुसार अपने वर्णोचित कर्म द्वारा पूजा को बात कहा कई है । इनोलिए इसे भक्ति मिश्रित कर्म योग कहा गया है । भक्ति कर्म योग के दो भेद बताये हैं - (१) भगवदावीणा (२) भगदर्थ की भगदपीणा कर्म भी दो तरह से सम्पन्न किया जाता है । भगदपीणा में समस्त कर्मों में ममता, आसक्ति और फलेच्छा को छोड़ त्याग करसब भगवान का है , मैं भी भगवान का हूँ , मेरे द्वारा होने वाले कर्म भी भगवान के ही हैं । ऐसा समझते हुए भगवान का आज्ञानुसार भगवान का वह हाप्रसन्नता के लिए शास्त्रविहित कर्म किए जाते हैं ।

(ख) पुष्टिमाग्य सेवा पद्धति - श्रौत-विधान :

(१) पुष्टि मार्ग - नामकरण :

श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रचारित भक्ति सम्प्रदाय ब्रज के सभी सम्प्रदायों में अवैधिक महत्त्वपूर्ण है। उन्हीं के नाम पर इसका नामकरण हुआ। इसका एक प्रसिद्ध नाम 'पुष्टिमार्ग' या पुष्टि सम्प्रदाय भी है। इसको ब्रज प्रेरणा श्री वल्लभ जी की श्रीमद्भागवत से मिली थी। भागवत में उल्लेख है - भगवान के अनुग्रह से ही जावात्मा का वास्तविक पोषण (पुष्टि) होना संभव है 'पोषणं च तदनुग्रह' भगवान को कृपा से ही जोव के हृदय में भगवद्भक्ति का अंधार होता है, उससे भगवत् प्राप्ति होती है। इस प्रकार भगवान का अनुग्रह (पोषण होता) भगवत् भक्ति का साधन है, और वही उसका फल भी है। भगवत् भक्ति, भगवान की प्राप्ति के काल, कर्म और स्वभाव बाधक होते हैं। परन्तु श्री वल्लभाचार्य जी का मत है - 'पुष्टिकालादि बाधिका' अर्थात् पुष्टि में भगवान को कृपा से, काल, कर्म, स्वभाव का बाधा भी नहीं हो पाती। अतः भक्ति मार्ग में पुष्टि की प्रधानता देनेके कारण सम्प्रदाय को पुष्टिमार्ग कहा जाता है।

कृति आर्घ्यं, साधनं तान रूपं शास्त्रेण बोध्यते ताम्यां

विहिताभ्यान्, मुक्ति मयादि तद्रहितानां स्वरूप बलेन स्वप्रणाम्

पुष्टिरित्युच्यते (अनुभाष्य)

अर्थात् वैदाध्यन, दान, तप, आदि करने से मोक्ष का प्राप्ति होता है। इन साधनों से मुक्ति प्राप्त करना मयादि है। परन्तु यहाँ ये साधन नहीं गिने जाते, इन साधनों में से भी जो सेव्य है और जो भगवान के स्वरूप बल से ही जो प्रभु को प्राप्ति होता है उसे पुष्टि कहते हैं।

वैष्णव धर्म के चतुः सम्प्रदायों में यह भक्ति मार्ग विष्णु स्वामी द्वारा प्रवर्तित रुद्र सम्प्रदाय को परंपरा से विकसित हुआ है और इसका दार्शनिक

१- श्रीमद्भागवत द्वितीय स्कंध दशम अध्याय श्लो ४

२- तत्त्वदीप निबन्ध

सिद्धान्त भी विष्णु स्वामी सम्प्रदाय का श्रद्धादित हो है । ऐसी मानता है कि श्री लक्ष्मण भट्ट जी विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी थे और उन्होंने अपने पुत्र श्री वल्लभ को स्वयं ही मंत्र दाँता दो । विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के तत्कालीन आचार्य वल्लभ मंगल के पश्चात् वल्लभाचार्य को उक्त सम्प्रदाय को गद्दी पर आसेमन किया गया था । इनके साथ स्वयं भी वल्लभाचार्य जी ने भी स्वयं को विष्णु स्वामी अनुयायी तथा विष्णु स्वामी महानुवर्ती घोषित किया । इस प्रकार मूल परम्परा और दार्शनिक सिद्धान्त भी अभिन्नता की दृष्टि से यह सम्प्रदाय विष्णु स्वामी सम्प्रदाय से संबद्ध है, किन्तु स्वतंत्र विकास तथा भक्ति तत्वकी भिन्नता के कारण इस भिन्न सम्प्रदाय माना गया है ।

श्री वल्लभाचार्य जी विष्णु स्वामी परंपरा में एक स्वतंत्र भक्ति पथ के प्रतिष्ठाता , श्रद्धादित दार्शनिक सिद्धान्त के समर्थक, प्रचारक और भावत-गुह प्रधान एवं भक्ति सेवा अवन्वित पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक थे । ये जिस समय उत्पन्न हुए वह समय राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टि से महान संकट का समय था । राजनैतिक दृष्टि से उस समय भारत का अधिकांश भाग विदेशी मुसलमान शासकों की दासता के बन्धनों में बंधा था । वे शासकगण परस्पर संघर्षों द्वारा देश में अशान्ति, अरिष्टा, और उथल-पुथल के कारण जनता को घोर कष्ट दे रहे थे । धार्मिक दृष्टि से एक और तात्सुवां मुसलमान शासकों को धार्मिक तानाशाह से खतरा रहता था । दूरी और उसे तत्कालिक धर्म गुरुओं ने या तो जगत से विरक्त कर रखा था या लड़िगुस्त । धर्मविद्वानों के जाल में फँसा रखा था । सामाजिक दृष्टि से इसी अवस्था उत्पन्न हो गई थी कि जसी वर्णव्यवस्था के आधार बिना और समाज के विधि विधान नाममात्र के रह गये थे । ऐसी विषम परिस्थितियों में वल्लभाचार्य जी ने अपने धर्मपदेश द्वारा जनता का ऐसा कल्याण किया उसके कारण उनका नाम अमर हो गया ।

वल्लभाचार्य जी के पूर्व आन्ध्र राज्य में गोदावरी तटवर्ती कांकबाढ़ नामक स्थान के निवासी थे । वे नारदाग्र और तेलंगी ब्राह्मण थे । इनके पिता

ना लक्ष्मण भट्ट काष्ठित प्रकांड विद्वान और धार्मिक पुरुष थे । श्री बल्लभाचार्य ने अपने अध्ययन को समाप्ति और पिता का मृत्यु के उपरान्त अपने भक्ति सिद्धान्त के व्यापक प्रचार के लिए विस्तृत यात्राएँ करने का निश्चय किया । अपना यात्राओं के मध्य उन्होंने अपने प्रकांड विद्वान तथा अपनी प्रबल शक्तियों द्वारा उस समय के मतमतान्तरों द्वारा फैलाए गये पाखंडवाद और शंकर मत के मायावाद का खंडन तथा अपने विशुद्ध ब्रह्मवाद एवं भक्ति सेवा के प्रधान पुष्टि मार्ग का पंढा किया ।

उनके आरंभिक जीवन की सफलता के लिए उन यात्राओं का बहुत महत्व है । इन्होंने उनका ख्याति समस्त देश में व्याप्त हो गयी । इनका प्रथम यात्रा का आरंभ वात्सी साहित्य के अनुसार स० १५४८ की वैशाख कृष्ण २ को हुआ । दूसरी यात्रा स० १५५४ की ज्येष्ठ शुक्ला २ रविवार को आरंभ हुई । और महत्वपूर्ण यात्रा स० १५५६ की पौष मास में आरंभ हुई थी ।

यात्रा को समाप्ति पर श्री नाथ जी के दर्शनार्थी गोवर्धन गये । उस समय में सूरदास और कृष्णदास उनके सेव्य हुए । आचार्य जी ने सूरदास को भानाथ जी को कोर्तन सेवा का भार सौंपा । और कृष्ण दास को मंदिर की व्यवस्था का भार सौंपा । उसके बाद में आचार्य जी उदेल में जाकर रहने लगे । प्रथम यात्रा के मध्य उनके साथ दामोदर दास हरजानी तथा कृष्णदास मेघन विशिष्ट शिष्यों में से थे ।

कहा जाता है कि जब आचार्य जी की वास्तविक गोकुलसौज्य में कठिनाई हो रही थी तो श्री यमुना जानकी स्त्री वेष धारण करके उन्हें वास्तविक गोकुल का उतावता बताया । और रात्रि के समय श्री हरि ने स्वयं उन्हें साम्प्रदायिक दोषों के शुभारंभ का आदेश दिया । आचार्य जी ने स्वयं अपने सिद्धान्तरस्य के आरंभ में लिखा है - ' पौष मास की शुक्ला द्वादशी की रात्रि के समय साक्षात् भगवान् ने कहा कि हे! जीवों के देहगत पंच दोषों का निवृत्ति के लिए उन्हें ब्रह्म संबंध को दोषा दे ।

इन आदेश को पूर्ति के निमित्त जो आचार्य जा उता उसमें अपने प्रमत्त सेवक श्रीदामोदर हरलानों को जगाकर उन्हें संपीठा मंत्र द्वारा ब्रह्म संबंध को दाखता था । इन प्रकार जो आचार्य जा ने आवण शुक्ला १९ को ब्रज गोकुल के गोविन्द घाट पर पुष्टि मार्ग को स्थापना की थी । इस अवसर पर गोकुलमहात्मन के कुछ ब्रजवाजियों से आचार्य से मंत्र दोहाया था । इसका संकेत आचार्य जा के सेवक अच्युतदास गौड़ का वाता में मिलता है ।

(२) पुष्टिभक्ति का स्वरूप

आचार्य वल्लभ जो भक्ति की परिभाषा देते हुए दशा कि - 'भगवान के महात्म्य ज्ञानपूर्वक जो दुष्ट दुर्वाचिक स्नेह है वही भक्ति है' अर्थात् भगवन महात्म्य का ज्ञान और उसमें दुष्ट स्नेह यही दो वस्तुएँ भक्ति के लिए मुख्यतः अपेक्षित हैं । जब तक जोव को प्रभु के महात्म्य का ज्ञान नहीं होगा तब तक दुष्ट अनुराग रहना चाहिए । परंतु वह अनुराग कैसे हो ? यह ध्यान रहे कि यहाँ महात्म्य ज्ञान की बात करते हैं स्वरूप समझें, ज्ञान नहीं । स्वरूप ज्ञान भक्ति को अनेक प्रकार से हो सकता है । इस भक्ति में देश और काल का मर्यादा नहीं । और वैदिक विधि निषेधों का खर्चा है । स्त्राष्ट्रादि जनों के लिए उसका द्वारा जुड़ा है । भक्ति शब्दमें भज शब्द का अर्थ है सेवा । अपने सिद्धान्त मुस्तावला में आचार्य ने स्पष्ट कहा है कि को प्रवणता ही सेवा है । अतः मानसा सेवा ही सर्वोत्तम और फलरूपा है ।

पुष्टि प्रवाह मर्यादा निःशेषीणा पृथक् पृथक् ।

आवदेश क्रिया भेदेह प्रवहेण फलेन च (पुष्टि प्रकार)

मन ही संसार का मूल है संसार के नश्वर पदार्थों में अटका हुआ यह मन प्रभु को और नश्वर जाता । अतः मन का निरोध सर्व प्रथम अपेक्षित और आवश्यक है । निरोध का स्थिति भगवद्गुह में इस संभव है । इसी भगवद्गुह को लक्ष्य करके

आचार्य ने कहा था कि पुष्टि मार्ग में एक मात्र अनुग्रह ही नियामक है ।

‘अनुग्रहो पुष्टिमार्गो नियामक इति सिद्धान्तः’

यह अनुग्रह ही पुष्टिमार्ग का मूल है ।

डा० हरवंशलाल शर्मा ने (दूर और उनका साहित्य) में भक्ति विषयक विचार इस प्रकार दिए हैं - सिद्धान्त रूप से वल्लभाचार्य ने जिस मत का प्रचार किया उस शुद्धादित, ब्रह्माद या अविकृत परिणामवाद कहते हैं, साधन की दृष्टि से वह पुष्टिमार्ग कहलाता है । सिद्धान्त पक्ष में वल्लभाचार्य जो विष्णुस्वामी के शिष्य कहे जा सकते हैं, किन्तु साधन पक्ष में उनका अपना है। विष्णु सम्प्रदाय को भक्ति मयिदा मागयि है और पुष्टिमार्गों में भक्ति आत्म निवेदनात्मक है ।

वल्लभाचार्य जो ने अखिल जगत् के जावों को तीन भागों में विभक्त किया है -

- १- पुष्टिमार्गोय जाव
- २- मयिदामागयि जोव
- ३- प्रवाहमागयि जाव

इस विभाजन का आधार श्रीमद्भागवत गीता का यह श्लोक है -

‘तौ भूत्सुगौ लोकेणस्मिन् धैव आतुर खच ।

अर्थात् इस श्लोक में दो प्रकार का दृष्टि हैं (१) दैविक और (२) आतुरा दृष्टि । इस प्रमाण से वणादिवादि दैविक धर्म मयिदा में आश्रित जाव सम्प्रदाय मयिदामागयि और जगत् प्रवाह में बहने वाला जाव संघात प्रवाहमागयि है ।

‘जो भरा भरत है वह भरा है’ इस भगवत गीता के अनुसार जो

भगवान के भक्त हैं, वे उत्तम दोनों प्रकारके जानों से अलग भी दृष्ट हैं।
पुष्टिमागीणि जोतु भगवान का देह से उत्पन्न उनका ही अस्तित्व अनुग्रह प्राप्त
कर लेते हैं। इस अनुग्रह के लिए वेदन का ज्ञाता होना, तपस्वी, दानों
अथवा याज्ञिक होना आवश्यक नहीं है।

नार्हं वेदैर् तपसा न दानेन वैज्यय ।

शस्य स्वं त्वधी वृष्टुं वृष्टवानसि ता यथा (गा०७०:११ २०५३)

इसके लिए तो केवल भगवदनुग्रह ही अपेक्षित है। ऐसा अनुग्रह-शत जोव लोक
और वेद में निष्ठा नहीं रखता।

यदा यस्यानुगृहाति भवानात्मनावितः

उ जहाति मतिं लोके वेदै च परिनिष्ठताम् (आमदभागवत)

जोव
इस प्रकार पुष्टिमागीणि प्रवाह और मयादि दोनों से परे हैं।

पुष्टिमागीणि जोव देह चिन्ह क्रियादि में गुणों में अन्य प्रवाहों
तथा मयादि मागीणि जावों से होते हैं।

स्वरूपेणा च तारिणा लीनव गुणेन च

तारतम्येन न स्वरूपे देहे वा ताक्रियासु वा (प्र०प्र०म० १३)

पुष्टिमागीणि जाव दो प्रकारके होते हैं -

१- शुद्ध पुष्टि जाव

२- मित्र पुष्टि जाव

मित्रजोव पुष्टि जाव तीन प्रकार के होते हैं -

१- प्रवाही मित्र पुष्टि

२- मयादि मित्र पुष्टि

३- पुष्टि मित्र पुष्टि

यह भक्त श्रियात्मक होता है। ब्रजभूमि आदि स्थलों में तार्थ पर्यटन आदि
जैसा क्रियार्थ करता है वह भगवद्दर्श प्रकट करता है और इस भक्त के प्रति भगवदिच्छा
हुआ करता है। यह भक्त गुणज्ञ होता है। भगवत् धर्म में उसकी रति होती
है। यह भगवान के गुणगान करता हुआ काल यापन करता है। भगवान को
इस मयीदा पुष्टि भक्त के प्रति यही इच्छा होती है।

‘तत्र कथामृतं तत्तज्जीवनं’

कविभिरोक्तं कर्मं षापहं (गोपीगीता)

इस प्रकार मयीदा पुष्टि अपने जो व अपने भक्ताप तत्तज्जीवन को
श्रवण, मंगल तथा कथामृत से अपने जीवन को सफल बनाता है। ऐसे भक्त
को चर्मा अत्याग वृद्ध दशा कर्मा त्याग दशा होती है। भगवान स्वगुण
श्रवण करके अपने परम भक्त को आनंद से कषि प्लावित कर देते हैं -

हृदयगतः स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः प्लावते जनान्

आदि वचनमूर्तों का यही आशय है। अतः ही इस प्रकार के मयीदा पुष्टि
जावों का भगवदिच्छा से ही साक्षात् पुरुषोत्तम में सामुज्यल्य होता है।
यह भक्त स्वकीय देह प्राण इन्द्रिय अन्तःकरण और उसके धर्म स्तं पुत्र आप्तावत्
सर्वस्व भाव से समर्पित करके प्रभू मिलन के हेतु उन सबको स्वाकार करता हुआ
निरंतर भगवत् सेवा करता है। प्रभू के गुणगान में लीन व भगवदीय कृपानंद
अमृत का आस्वादन करता है।

(3) पुष्टिमिश्रित पुष्टि भक्त :

भक्त भगवान के रसात्मक स्वरूप के समस्त अभिप्राय को जानने वाला
होता है। पुष्टिमार्ग तत्त्व अव्यन्त बुद्धि है और साथ ही दुर्लभ है। यह
भक्त तो पुष्टि मयीदा का उलंघन करके पुष्टिमिश्रित पुष्टिमार्ग में प्रवेश करता है।

अतः जो न स्थिति पर पुंवता है वह रसका अनुभव करता है। यह भावित भगवान के अनुग्रह के बिना संभव नहीं। इस मार्ग का उपदेश भा नहीं किया जा सकता। इस स्थिति के मत को दो दिशाएं होती हैं - एक परमविरह दशा दूसरी संयोग दशा। विरह दशा अत्यंत असहनीय होती है। इस दशा में तब भी भाव का उपमर्दन होता है। संयोग दशा में भगवान निकट रहते हैं अतः उसमें भी उपदेश संभव नहीं। इस कोटि के विरह रसिक जनहा अपने अनुभव के बारे में दो चार शब्द अगर बोल भी दें तो उससे लेता गणों को अत्यंत लाभ होता है। इस भक्त का त्याग हा प्रशंसनीय है। वह तो सदैव हा नाव भावनाओं में डूब रहा होता है। विकलता और वैचनो प्रमुख लक्षण हैं।

‘तानं गुणाश्च तस्य रसं वर्तमानस्य वाधका’ - इस श्लोक में पुष्टि मिलती है भक्त की ही दशा का वर्णन है। स्वस्थता तो इस मत के भाग में है हा नहीं।

शुद्ध पुष्टि :

शुद्ध पुष्टि इस भक्त में प्रेम के अतिरिक्त कोई दूसरा लक्षण नहीं है ‘शुद्धा प्रेमणाति दुर्लभाः’ के अनुसार ऐसा शुद्ध रसिक अत्यंत दुर्लभ है। परमा-आराध्य के चरणों में उसकी निराला पूर्णाति और प्रकृष्ट देन उत्पन्न होना अत्यंत दुर्लभ बन जाता है। ताप क्लेश युक्त भाव हो उसका नाम म संकीर्तन है। अस्तंग शूलयुग्मि में अपने अमूर्ण दिवस के दुःख का आवर्जन हा उसका होम है। और प्रिय वार्ता कथन हा उसका ब्रह्म यज्ञ और मनोरथ सिद्धि प्राप्त करवा देने का आप्यायन हा उसका दर्पण है।

रस को इस भक्त का जावा, रस हा अंत और रस ही सम्पत्ति है और अनभिर स्थिति के बिना यह अविवृत नहीं रह सकता। तात्पर्य यह कि ‘वैष्णवावत्त्वं हि सा यज्ञः’ इसका रूप है और अन्तर्वाह्य रसाविष्टत्व हा उसका स्वभावक धर्म है। गोपा गान्त का यह वाक्य ‘तादयुगीयते त्वाम्-पश्यताम्’ से ही उसकी स्थिति का आभास मिल सकता है। भगवान भी ऐसे

भक्त को काम भोग समर्पण करनेके लिए प्रोत्साहित करते हैं भक्त के साथ प्रेम व्यवहारकेल करते हैं । भक्त को आनंद दान देते हुए उसके भक्तिमद का उपलक्षण करते हैं। और भक्त को उसके पुरतनाथ के दर्शन हों उस हेतु वे स्वप्न दान करते हैं । भक्त को कांत बढ़ाते हैं और भक्त के पास हा आ विराजते हैं ।

वल्लीभाचार्य जप ने पुष्टिभक्ति को साधारण भक्ति से भिन्न माना है । ' जिस मार्ग में लौकिक तथा अलौकिक , सकाम तथा निष्काम, सब साधनों का अभाव हो श्रीकृष्ण को स्वरूप में प्राप्ति में साधन है अथवा जहाँ जो फलही वही साधन है, उसे पुष्टिमार्ग कहते हैं और जिस मार्ग में सर्व सिद्धों का हेतु भगवान का हेतु अनुग्रह है । जहाँ देह के अनेक संबंध हों साधन रूप बनकर भगवान को रच्छा के बल पर फल रूपसंबंध बनते हैं, जिस मार्ग में भगवत्बिरह अवस्था में भगवान की लाला के अनुभव से वंछ संयोगा-बू वस्था का सुख मिलता है, और जिस मार्ग में सर्व भावों में लौकिक विषयों का त्याग है, उन भावों के साथ देहादि का समर्पण है, वह पुष्टिमार्ग कहलाता है ।^१ इस प्रकार हरिराय जाने बड़े विस्तार से पुष्टिमार्ग का विवेचन किया है । इसमें जावात्मा को योग्यता का प्रचार नहीं किया जाता केवल भाव का विचार किया जाता है । हरिराय जा के शब्दों में देखिए -

‘कवलेन हि भावेन छ गौप्यः गावः जगाः मृगाः ’ ।

भगवान कृष्ण में चित्त की एकाग्रता को जो शरीर आदि द्रव्य के द्वारा प्राप्त है, उसे सेवा कहा गया है। इसा सेवा से दुःख का निवृत्ति तथा ब्रह्म का ज्ञान होता है । अंत में ये बताया गया है कि जब तक जगत में आसक्ति है, तब तक कृष्ण में हमारी सच्चा भक्ति नहीं हो सकती । भक्ति से ही संसार से विरक्ति होता है । आत्म स्वरूप और भगवत् स्वरूप का ज्ञान बहुत कठिन है ।

सिद्धान्त मुक्तावला में आचार्य जो ने दो प्रकार के भक्त बताये हैं - भयदिमाग यि भक्त लौकिक कामनाओं से प्रयोजन रखते हुए श्रीकृष्ण को

सेवा में अलग रहते हैं। इसा लिए उन्हें कष्ट होता है। परन्तु पुष्टिमागीय भक्त अब प्रकार से भगवान को समर्पण कर अर्पता और ममता से दूर रहकर भगवान की उपासना में लगा रहता है। गोता में भगवान के इस भावना से कि मेरा भक्त मुझे प्रिय है, भक्ति का उत्कर्ष सिद्ध होता है। इसा लिए उसे पुष्टिमागी कहते हैं।

यो भूतसंगीवत्युद्धतः प्रवाहमपि क्वास्थतः

वैदस्य विद्यमानत्वान्मयादापि व्यवस्थिता ।

कश्चिदेव पदं भक्तो हि यो मदभक्त इति रणात् ।

सर्वज्ञोत्कर्षं कथनात् पुष्टिरस्मात्ति निश्चयः ।

(पुष्टिप्रवाह मयादा श्लोक ३,४)

पुष्टिमागी को लोक और वेद अपृथक बता कर पुष्टिमागीय जाव देह और उसकी क्रियाएँ अलग-अलग बताई गई हैं और धृति के प्रमाणों से उसको नित्यता सिद्ध की गई है। श्री हरि ने इस इच्छा होने पर प्रवाह मार्ग को सृष्टि मन से, मयादा मार्ग का वाणो से और पुष्टि मार्ग को अपने स्वरूप से स्वयं स्मरण हेतु को है। प्रवाह मार्ग में सृष्टि का क्रम निरन्तर प्रवाहित रहता है। मयादा मार्ग में भदोक्त फलों का प्राप्ति होता है तथा पुष्टि मार्ग में निज स्वरूप से फलप्राप्ति होता है। इन दोनों प्रकार के जावों का गति भो पृथक - पृथक है। पुष्टिमागीय जाव अन्य दोनों प्रकार के दोनों जावों से भिन्न है। इनका सृष्टि के भो प्रभू की सेवा के लिए होता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है। पुष्टिमागीय जत्व दो प्रकारके होते हैं - बुद्ध और मित्र। जिनमें से मित्र तीन प्रकारके होते हैं -

१- प्रवाह मित्र - कर्म में प्रोत्ति रहने वाले

२- मयादा मित्र - भगवत गुणों को जानने के लिये इच्छुक

३- पुष्टि मित्र - ये जान केवल भगवान को भ्रम करने वाले होते हैं

इन पुष्टिमय जीवों से उच्च कोट के जीव जिन पर भगवान का विशेष कृपा होती है, शुद्ध पुष्टि जीव कहलाते हैं। इस अवस्था को प्राप्ति मात्र पुष्टि दुर्लभ है।

सिद्धान्त रहस्य नामक पुस्तक में मन्त्र मार्ग का रहस्य प्रकट किया गया है। जिसमें आचार्य जी ने बताया है कि आत्म निवेदन रूप। ब्रह्म संबंध - दोषों से हा समस्त दोषों का निवृत्ति होता है। ब्रह्म संबंध दोषों लेकर प्रभु सेवा में तल्लीन रहना असमर्पित वस्तु का परित्याग करना एवं अर्घ्य मुक्त वस्तु ठाकुर जी को निवेदित न करना इत्यादि हैं मयादिओं का पालन उचित है, यही पुष्टि मार्ग को मयादि है। जिस प्रकार गंगा जल में मिलने से सब प्रकारके जल का मलिनता और अपवित्रता नष्ट होकर वह गंगा जल स्वरूप हो जाता है। उसी प्रकार आत्म निवेदन रूपों शरणागति के अनन्तर गुणा दोषादि ब्रह्म मय हो जाते हैं। इसीलिए आचार्य जी ने नवरत्न नामक ग्रन्थ में कहा है, 'जिन भक्तों ने आत्म सहित अपने प्रिय वस्तुओं को भगवदपेक्षा कर दिया है भगवान के अनुग्रह में स्थिर हो चुके हैं। उन्हें किसी प्रकार का विचिन्ता नहीं करना चाहिए'। पुष्टिमार्ग में मंत्र जपआदि को विशेष स्थान नहीं दिया गया। सब प्रकार से सब स्थितियों में श्रीकृष्ण को हा समझा मानकर पुष्टिभक्तों का कार्य करना चाहिए। **अपराधवर्ज्यं धर्म्यं०**

तस्मात्सवत्सिना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं नम् ।

वदन्तिरेव सततं स्थयामित्येव मे मतिः

भगवान को सेवा करते समय भक्त को यह भावना रखनी चाहिए कि शरीर को सारा वस्तुएं प्राप्त हैं तथा उन्हें सब वस्तुएं देने में समर्थ हैं। जो भगवान अपने भक्तों का रक्षा से उस कुछ करेंगे उसका नाम विभेक है। भृत्य परियंत सर्वदेव जाति भौतिक आध्यात्मिक आदि दैविक तात्त्विकों प्रकार के दुःखों को उत्पन्न करना हा धर्म है। शरीर में मोह न करना शक्तियों का दमा करना,

भगवान का सेवा के लिए भाई पुत्र आदि के लिए दुख सह करना भक्त का कर्तव्य है। प्रभु में सब प्रकार से विश्वास, सब काल में स्थित में वही रहना है यह भावना रहना तथा उसी प्रकार के वचनों का उच्चारण करना चाहिए।

भक्ति अष्टांगों नामक पुस्तक में आचार्य जो ने पुष्टि भागीय भक्ति को वृद्धि के उपाय बताये हैं। भगवान ने अनुग्रह से भ्रम को उत्पत्ति एवं दृढ़ता तदन्तर श्रवण का ज्ञान आदि के द्वारा भक्ति का वृद्धि होता है। गृहस्थ आश्रम में रहकर भी श्रवण की लीन द्वारा शोकृष्ण को तनुजा और विज्ञान सेवा को जा श्रुती है। आचार्य जो ने गृह त्याग आवश्यक नहीं बताया। उन्होंने कहा - कहा सन्यास का पोषण किया है। निम्न शब्दों में देखिए -

विरहानुभावार्थी तु परित्यागः सुखावहः
स्वोयाबन्ध निवृत्यर्थं वैष्णः सौव्रतन च धन्यथा ।

अर्थात् भगवान को वन्य का अनुभव करने के लिए गृह आदि त्याग उत्तम है और यदि इसलिये को जेन, दंड, कर्मल आदि धारण करने पड़े, जिससे स्त्री आदि का बंधन दूर हो जाये तो यह वैष्णव भा धारण करने योग्य है अन्यथा नहीं। ज्ञानमार्ग में आचार्य जो ने सन्यास को महता को स्वाकार किया है।

वैद में विषय वृद्धि के लिए भो निष्काम यत्र आदि करने का ज्ञान है इसलिये ज्ञानमार्ग में भा साधन का अपेक्षा है। कलियुग में बहुत से बाधाओं के कारण सन्यास को पाखंडा होने का भय है। इसलिये ज्ञान मार्ग में भा सन्यास निषेध है। पुष्टि भक्ति में निषेध का बहुत महत्व है। स्त्री पुत्र आदि को मूल कर प्रभु वैपुति ईश्वर का निरोध है।

जो संयोग में सुजात्मक और वियोग में दुःखात्मक है निरोध के विषय में आचार्य जो ने कहा है -

अहं निरुद्धो रौघत निरौघपदघो गतः ।

निरुद्धानाम तु रौधाय निरौघं वण्णियामि ॥

अर्थात् जब भगवान के द्वारा निरुद्ध है भगवान ने अपनाये है वे रात दिन उता का गुण गान करते हैं । आनंद मगन रहते हैं और जिन जीवों को उपेक्षा करने हैं वे अहंता मग्ता रूपों संसार में डूक कर जन्म मरणा के चक्कर में पड़े रहते हैं ।

पुष्टि मार्ग में प्रभु सेवा को लक्ष्य माना है । पुष्टिमार्ग में जहां कहां पूजा का उल्लेख है लेकिन वहां वेदोक्त अथवा मंत्रोक्त पूजा न समझ कर पुष्टिमार्गीय सेवा विधि समझना चाहिए । इसके दो रूप हैं क्रियात्मक और भावात्मक । माहात्म्य ज्ञान पूर्वक प्रभु से मनन्य प्रेम करना ही पुष्टि मा मूल मंत्र है ।

भगवान के प्रति माहात्म्य ज्ञान पूर्वक दृढ़ स्नेह को भक्ति है उता से मुक्ति प्राप्त होती है । दूसरे यह भक्ति केवल भगवान के अनुग्रह से प्रकृप्त होता है । तीसरे इस भक्ति में ब्रह्म संबंध अथवा आत्म निवेदन का विशेष महत्व है। चौथे नवधा भक्ति का पुष्टि मार्ग में महत्व है । सर्वोपरि है । पांचवें आचार्य जो के मत में सेवा का विशेष महत्व है, तनुजा, विराजा और मानसा सेवाओं में मानसिक सेवा होसकैकठ है ।

श्री वल्लभाचार्य जा ने अपने सभी ग्रन्थों में भागवत को आधार माना है । पुष्टिभक्ति का नामकरण भी भागवत के आधार पर हुआ । श्रीमद्भागवत में मथिदा भक्ति तथा पुष्टि भक्ति का विवेचन हुआ है । मथिदा भक्ति का फल है प्रभु स्नेह । जो पुष्टि भक्ति का आधार है । भागवत में पुष्टि भक्ति का विवेचन द्वा स्तुत में हुआ है । भगवान ने लोक स्थलों परस्वयंभक्ति के आधान बताया है । पुष्टिमार्ग में भक्ति की ही सर्वोपरि माना है । प्रथम अध्याय में बुद्धदेव जा ने नौ साधनों द्वारा मन, वाणा और शरीर के द्वारा किए गये पापों का क्लृप्त बताया है । इस प्रकार के आगे कहते

है ;

‘ भगवान का स्मरण रहने वाला भक्त जन जो विरत होते हैं, भक्ति के द्वारा ही अपने पापों को ऐसे भस्म कर देते हैं जैसे कोहरे को सूर्य । पापों मनुष्य का जैसी शुद्ध बुद्धि भगवान को आत्म समर्पण करने से तथा अनेक भक्तों का सेवन करने से छोड़ता है, वैसी तपस्या आग द्वारा नहीं । अंतर में यह भक्ति पथ ही भय रहित और कल्याण स्वरूप है । तान्त्रिक अध्याय में सुखदेव जी परीक्षित से कहते हैं, ‘ हे पराक्षित बड़ा से बड़ा पाप वासनाओं को निमूल करने वाला प्रायश्चित्त यही है कि ईश्वर के गुणों लीलाओं और कोर्तन किया जाये, इसी से हृदय में प्रेम रूपा भक्ति का उदय होता है और उस भक्ति में जैसा आत्म शुद्धि है, वैसी चन्द्रायणादि व्रतों से भी नहीं ।

छठे स्कंध के ११वें अध्यायमें इन्द्र के साथ युद्ध करते हुए वृत्रासुर ने भगवान का प्रत्यक्ष अनुभव किया और उसने प्रार्थना की । वृत्रासुर की प्रार्थना के ४ श्लोक पुष्टि सम्प्रदाय में बड़े महत्त्व के हैं, क्योंकि पुष्टि भक्ति का समग्र आधार यह ४ श्लोक माने जाते हैं । इनका साधारण अर्थ इस प्रकार है -

‘ हे प्रभू आप मुझ पर ऐसी कृपा कीजिए कि अनन्य भाव से आपसे चरण कमलों में आश्रित सबकों का सेवा करने का अवसर मुझे आने जन्ममें भा प्राप्त हो । मेरा मन आपके गुणों का स्मरण करता रहे वहीं वाणा उन्हीं का गान करे, और मेरा शरीर आपको सेवा में लगा रहे । मैं आपको छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्मलोक, भस्मंडल का साम्राज्य रक्षातल का एकद्वार राज्य, योग को सिद्धियां तथा मोक्ष आदि कुछ नहीं चाहता । जैसे पक्षियों के पंखों से बच्चे अपना माँ का बाट जोहते रहते हैं और भूसे बड़े अपना माँ का दूध आतुर रहते हैं, और जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवास पात से मिलने के लिए आतुर रहती है वैसे ही है भगवन् मेरा मन आपके दर्शन के लिए टूट पड़ा रहा है । मैं मुक्ति नहीं चाहता, मुझे मेरे कर्मों के फल स्वरूप बार बार जन्म मरण के चक्कर में भटकने दो परन्तु जहाँ मैं जाऊँ वहीं राजा यौन में जन्म लूँ वहाँ आपके भक्त अवश्य जनो मेरे मित्र बना रहे ।

पुष्टिमागं में श्लोकों को भगवत् कृपा के फल बतलाने वसति कहते हैं । ये श्लोक वृत्रासुर चतुःश्लोको कहे जाते हैं । इन्हों में पुष्टिमागीय धर्म , अर्थ, काम, मोक्षा का वर्णन है। आचार्य जो ने दशम स्कंध का व्याख्या करने से पूर्व पुष्टि तत्व का व्याख्या आवश्यक समझी । ' पुष्टिमागे हरदत्तियम् जानदि अर्थात् पुष्टिमागे में भगवान का दास्य हा सर्व प्रधान है ' । इन चार श्लोकों में पहले में तो पुष्टिभक्तिमागीय धर्म का निरूपण है । इनमें हरिनाम स्मरण स्मरण हरिगुण कीर्तन तथा प्रेम सेवा इन तीनों कर्मों को करने को प्रार्थना की गई है । दूसरे श्लोक में प्रकृति के सत्, रज, तम तान गुण बताये हैं । इन तानों के आधार पर लौकिक और वैदिक अर्थात् तीन प्रकारके होते हैं। ये छः प्रकार के लौकिक तथा वैदिक ऐश्वर्य हैं , भगवान के छः गुण हैं । तान लौकिक ऐश्वर्य ये हैं - सत्त्व प्रधान, स्वर्ग , रजोगुणा पृथ्वी, तम प्रधान रसातलादि वैदिक ऐश्वर्य ये हैं - शुद्ध तत्व साध्य मोक्ष , रजोगुण साध्य ब्रह्म लोक तथा तमोगुण साध्य योग सिद्धि ।

तृतीय श्लोक में पुष्टिमागीय काम को प्रार्थना है । पुष्टिमागीय काम का स्वरूप है कि मन में उदा भगवान के सौन्दर्य दर्शन को इच्छा बनोरहे । यहाँ वृत्रासुर ने तान दृष्टान्तों से इसको पुष्टि का है - दो दृष्टान्त लौकिक राति से संबद्ध हैं और तानरा भक्ति रस शास्त्रोक्त राति से संबद्ध रखता है । यहाँ दृष्टांग अलौकिक रूप भगवान में घटता है । पाश्यायों के पंखहोन बच्चों का दृष्टान्त तथा भूखे बड़ों का दृष्टान्त लौकिक काम को प्रकट करता है । पुष्टिमागीयभक्तके प्रभु भृंगार रस स्वरूप हैं , अतः तानरा दृष्टान्त प्रभु स्वयं अलौकिक कामना का दृष्टान्त कहा जा सकता है । चतुर्थ श्लोक में पुष्टिमागीय मोक्षा का निरूपण है । आचार्य जो ने पुष्टिमयिदि मोक्ष का अर्थ बताया है -

हे नाथ त्वन्मायया आत्माआत्मजदारगेह्यु उत्तमश्लोकजलेषु ।

आसक्तावप्यस्य मम आत्माआदिषु सत्यं भ्रमात् । किन्तु

स्वकर्मिणः संसार चक्रे भ्रमती मम आत्माआत्मजादिषु सत्यं न भ्रमात् ।

आचार्य जा ने इन श्लोकों के आधार पर पुष्टिमाग्यि (मै, अर्थ) काम, मोक्षा के स्वरूप को अपना कारिका में बताया है -

पुष्टिमाग्यिहोदास्यम् धर्मिणी हरिरेव हि ।

कामो ह्येव हरिर्दिव्योव मोक्षाः कृष्णस्यः अथ चेद् ध्रुवम्

अर्थात् पुष्टिमाग्यि में ब्रजाधिपति कृष्ण का अवतार नाव से सदा सेवा करना ही परम धर्म है अन्य कोई धर्म कर्तव्य नहीं । यही धर्मिणी काम मोक्षा है ।

(३) सूर का भक्ति पदा :

भक्तिशब्द भज सेवायाम् धातु से क्तित प्रत्यय लगाकर बनाया है जिसका अर्थ है भगवान् का सेवा प्रकार । शान्तिदत्त ध्रुव भक्ति सूत्र में लिखा है कि ' ईश्वर में परमनुरक्ति हो भक्ति है । नारद भक्ति सूत्र के अनुसार भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा है और अमृत स्वरूप भी है । जिसका अमृत पानकर भक्त तृप्त हो जाता है, और सिद्ध अमर हो जाता है । इसको भक्ति को प्राप्तिपर मनुष्य न शोक करता है न किसी वस्तु में आसक्त होता है । विषय मोक्षों से पृथक् रहता है, आत्मनन्द में मग्न होकर वह संसार से विवृत विरक्त होकर मस्त रहता है।

भागवतकार के अनुसार ' मनुष्य के लिए सर्व श्रेष्ठ धर्म यही है जिसके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति हो । भक्ति भी ऐसी जिसमें किसी प्रकार का कामना न हो और वह भक्ति निरन्तर बनी रहे । भक्ति राजात्मक ऐतिन्धु भा बड़ी विस्तृत व्याख्या हुई , जिसके चार विभाग हैं - पूर्व , पश्चिम, उत्तर, दक्षिण । पूर्वी विभाग में भक्ति का व्याख्या को गई है जिसको चार लहरें हैं - प्रथम लहरा में भक्ति के सामान्य रूप का उल्लेख है , दूसरा में आध्यात्मिकता का स्वरूप बताया है, तीसरा में भावभक्ति का विवेचन है और चौथा में प्रेम भक्ति का ।

वल्लभाचार्य जो के अनुसार भाषा के माहात्म्य को सुदृढ़ स्नेह भावना भक्ति है। यह भक्ति का सबसे सरल उपाय है। और भी अनेक आचार्यों ने भक्ति के अनेक लक्षण दिए हैं। उनमें दो पर जो अधिक जोर दिया गया है - पहला ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम और दूसरा अन्य सांसारिक वस्तुओं से वैराग्य। भागवत में भक्ति के तीन रूप मिलते हैं (१) विशुद्ध भक्ति (२) नवधा भक्ति और (३) प्रेमा भक्ति। नवे स्कंध भगवान ने घोषणा की है कि मैं भक्तों के आधोन हूँ। मुझे प्रकार का भक्ति को और उक्त किया है -

भक्त्या त्वनन्या शक्यः अहमेवविधौर्जुन ।

शातुं द्रष्टुं चतत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥११।४५

गोता में श्रीकृष्णका कहना है, यदि कोई अतिशय दुराचारा भी अनन्य भाव से मुझे भजता है तो वह जाधु ही मानने योग्य है क्योंकि वह मनोरथ निश्चय वाला है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है, उदा हो रहने वाली शान्ति को प्राप्त होता है। है अर्जुन, मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता और भक्ति का सामान्यस्य भागवत में यन्थास्थान किया गया है -

वदन्ति तत्त्वविदस्तत्त्व यज्ज्ञानम उयम् ।

ब्रह्मैति परमात्मेति भावानिति शक्यते । भागवत १-२-११

अथि ब्रह्म, परमात्मा और भगवान ये तीनों हो पृथक् तत्त्व नहीं रहते ॥ अर्पितु एक ही परम तत्त्व का दृष्टि भेद का विविध अनुभूति मात्र है। तान राशि के उदय कालमें भगवान का जो स्वरूप साधक के शुद्ध सात्त्विक हृदय पर प्रस्फुटित होता है उसे ब्रह्म कहते हैं, यही आलोक पुंज जन शायी रूप से साधक के हृदयाकाश में जा अनुभव किया जाता है तना वह परमात्म होता है। वास्तव में ज्ञान और भक्ति में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। भक्ति का पराकाष्ठा हो ज्ञान है और ज्ञान को पराकाष्ठा भक्ति है। जहाँ भक्ति

को ज्ञान से ऊंचा उठाया है वहाँ भक्ति का अर्थ साधन भक्ति है, और जहाँ ज्ञान को श्रेष्ठ बताया है, ज्ञान का अर्थ परोक्ष ज्ञान है। भागवत माहात्म्य में ज्ञान और वैराग्य को भक्ति का पुत्र बताया है।

मन जो रकाग्रता से भावना का नित्य कीर्तन और आराधना भक्ति का साधन पढ़ा है और भगवान में परानुरक्ति उसका साध्य पढ़ा है। साधन रूपा भक्ति को नवधा, रूपा और वैधो भक्ति भा कहते हैं और साध्यारूपा भक्ति को प्रेमाभक्ति रागानुगा अथवा रागात्मिका भक्ति के नाम से पुकारते हैं। इस ग्रन्थ में भक्ति दो प्रकार का माना जा रहा है गया है। गौणो भक्ति - इसके दो भेद हैं (१) वैधो और (२) रागानुगा। रागानुगा के भा दो भेद हैं - काररूपा और संबंध रूपा, यही भक्ति साधन भक्ति है। जब समस्त कामनाओं और विषयों से रहित होकर भावना में परानुरक्ति हो जाती है तब वह पराभक्ति कहलाती है। साधन रूपा भक्ति के पाँच अंग हैं - (१) उपासक, (२) उपास्य, (३) पूजा द्रव्य, (४) पूजा विधो और मंत्र जप। तंत्र ग्रन्थ में मंत्र जप के ५ तत्व हैं - (१) गुरु तत्व, (२) मंत्र तत्व, (३) मनस तत्व, (४) देव तत्व और (५) ध्यान तत्व।

भागवत में भक्ति के ४ भेद माने हैं - सात्त्विको, राजसो, तामसो और निर्गुण। जो स्कंध में प्रह्लाद ने भक्ति के तीन भेद बतलाये हैं जो निम्न श्लोकों में उद्धृत हैं -

श्रवण कर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्

अथ कर्तनं वन्दनं दास्यं तस्यमात्मन निवेदनम् ॥२३॥

इन तीनों साधनों के तात्पर्य जा सकते हैं - श्रवण, कर्तन और स्मरण। पाद सेवा और कर्तन वन्दन ये सब भाव संबंधो साधन हैं। ये वैधो भक्ति के विशेष अंग हैं। दास्य, प्रख्य और आत्म निवेदन भाव संबंधो साधन रागात्मिका भक्ति से संबंधित हैं। इन तीनों को ही सा गौण भक्ति और रूप गौस्वामा जकी को

ने भक्ति रस का उत्पादक बनाया है। आत्म निवेदन को विशेष महत्व दिया है, क्योंकि इसमें साधन और साध्य एक ही हो जाते हैं। भागवत के सब भक्तों का कथाओं में श्रृणुतागत का भाव मिलता है। वैष्णो भक्ति का पूर्णता रागात्मिकता में है और रागात्मिकता को आत्म समर्पण में। गोपियों ने वैष्णो भक्ति का अनुष्ठान किया था परन्तु उनका हृदय रागात्मिकता से परिपूर्ण था। चोर हरण लोला और राम लोला अनुपूर्ण समर्पण का ही रूप है। कृष्ण ने अर्जुन को आत्म निवेदन का उपदेश दिया। सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं ब्रज शरणा । अहं त्वां स्वयामिमां मोक्षयिष्यामि मा शुचः। ६६।

भक्ति का कोटि में प्रेमा भक्ति को सर्वोच्च स्थान है। रूप गोस्वामी ने रूप भक्ति रसात्मक सिंधु में उत्तमा भक्ति के तीन भेद माने - साधन भक्ति, भाव भक्ति, प्रेमा भक्ति। प्रेमा भक्ति को प्राप्त कर मनुष्य सिद्ध हो जाता है। भगवान के अतिरिक्त उसे किसी बात का चिन्ता नहीं रहती, इसा में अन्यथा का भाव भा निहित है। भागवत में श्रीकृष्ण ने भा. कहा है -योग यश्चरत्, धर्म, अज्ञान, स्वाध्याय, तप और त्याग जैसे इतने प्रसन्न नहीं कर सकते जितना मुझे मेरी दृढ़ भक्ति कर सकता है। मेरी भक्ति चाँडाल आदि को भी पवित्र हो कर देती है। यही प्रेमा भक्ति पराभक्ति और भूमानंद के नाम से भी पुकारा गया है, इसमें भक्त अपने भगवान को के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, इसी को भगवान में तो निर्गुण भक्ति और गाता में ज्ञानी भक्ति कहा जाता है। गीता के १२ और १८ अध्याय में भक्त के लक्षण बताये गये हैं और वह स्थिति बताया गई है जब भक्त को पराभक्ति को प्राप्त होता है। जब मनुष्य विगुह बुद्धि से मुक्त ऐकान्त सेवो और मित्राहारा वाणा को जातकर वैराग्य को धारण करके निरंतर ध्यान परायण दृढ़ धारणा से अन्तःकरण को वश में करके शब्द स्त्री और विषयों को त्याग कर राग द्वेष को नष्ट कर अहंकार जल धर्म काम क्रोध और परिग्रह को छोड़कर रहित ममता और शान्त हो जाता है तभी वह ब्रह्म को प्राप्त के योग्य है।

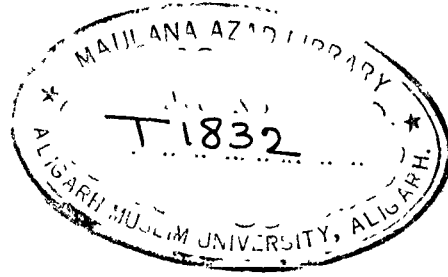
सूरदास में अपने समय में किसी धर्म को न मानने वालों को विफलता का कारण भजन का अभाव हो बताया । सूरदास ने वस्तुतः अपने काल का समस्त विलासिता का सुन्दर वर्णन किया है । उस युग मनुष्य को विफलता को प्रथम साढ़ा यह है - 'आलिंगन, चुम्बन, परिरम्भन, परस्पर हँसो सूर से अधिक किसी भा कवि में ऐसा सफल वर्णन नहीं किया है ' । पुष्टिमार्गीय सेवा का यहो महत्व है कि गोस्वामो विद्वत्कृत जोने तत्कालीन समस्त विलास सामग्री अपने आराध्यदेव को समर्पित करके भक्त के मन को विलासिता को दूर किया । सूरदास ने भागवतकार का भांति भक्ति को तो महत्व दिया हो है पर ज्ञान और कर्म को प्रतिष्ठा नहीं को । इनको भक्ति के दो रूप थे - (१) साधारणभक्ति - स्वरूप और महता (२) वैराग्यपूर्ण भक्ति - जो दादाता होने से पूर्व सूर में थे । दोहता के उपरान्त सूर ने भक्ति के तीन स्वरूप मिलते हैं - (१) वैदिक भक्ति (२) प्रेमा भक्ति (३) पुष्टि-मार्गीय भक्ति । सूर की भक्ति पुष्टिमार्गीय हो है ।

द्वितीय अध्याय

सेवा के प्रकार और स्वरूप :

- (१) तनुजा
- (२) वित्तजा
- (३) मानसी

तृतीय अध्याय



सेवा के प्रकार और स्वरूप

श्रीमद्भागवत में सेवा का निरूपण :-

श्रीमद्भागवत का दशम स्कन्ध के तृतीय अध्याय में वसुदेव तथा देवकी की स्तुति के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण दोनों को सम्बोधित करके कहते हैं - तुम दोनों मेरे प्रति पुत्र भाव एवं ब्रह्मभाव रखना । इस प्रकार वात्सल्य स्नेह एवं चिन्तन के कारण तुम्हें परम पद की प्राप्ति होगी । यहो श्लोक पुष्टिमागोयि सेवा का मूल सूत्र है । इस प्रकार हम देखते हैं भगवान् को प्रगति का साधन प्रेम लक्षणा भक्ति से परिपुष्ट वात्सल्य भाव से सम्पन्न होन वाली सेवा बनाना को बताया जाता है । इसमें पुत्र भाव के साथ ब्रह्म भाव को आवश्यक बताया जाता है क्योंकि यदि हम भगवान् के प्रति वात्सल्य भाव रखकर हो सेवा करेंगे तो उस सेवा में माहात्म्य भाव के अभाव में सेवा में प्रभाव और उद्वेग का सम्भावना निश्चय हो नहीं रहेगी जो सेवा मार्ग में प्रतिबंधक माना गया है । आचार्य ने ' पुष्टि भक्ति को परिभाषा में माहात्म्य ज्ञान से पुष्ट सुदृढ़ एवं सन्तो अधिक स्नेह भक्ति है ' । बल्लभ जो के कथनानुसार सेवा स्वरूप के सम्बन्ध में अलौकिक माहात्म्य भाव को अवलोकन बनार रखते हुए विधि विधानों के स्थान पर जेव्य सुल को दृष्टि में रखकर अविहित एवं सुदृढ़ और स्नेह भाव से निरन्तर परिचर्या करना ही सेवा है । अपनर सुबोधितों में आचार्य जो स्पष्ट रूप से कहते हैं, ' शास्त्रास्य गौणत्वात् अर्थात् शास्त्रानुसार कर्म एवं विधि विधान इस संप्रदाय में गौण स्थान रखते हैं । स्नेह भाव विविध है - (१) अविहित स्नेह जो प्रभु के प्रति पुत्र भाव रख कर सेवा करने में प्राप्त होता है एवं (२) विहित स्नेह जो प्रभु के प्रति ब्रह्म भाव रखने में प्राप्त होता है । विषयस्य तत्तात्वात् ' कहकर आचार्य जो ने

न कहा है कि प्रभु सेवा में इन दोनों भावों को समान महत्व देना है । तात्पर्य यह है कि सेवा प्रणाली का मूल नन्दालय में माता यशोदा की भागवान् शोकृष्ण को परिचर्या विधि (वात्सल्य भाव से प्रेरित) हो प्रसुप्त हैं परन्तु यह भूला नहीं जा सकता कि उसके शैव्य स्वरूप ब्रह्मावतार पुरुषोत्तम हो हैं अतः सेवा में किसी प्रकार को अलीकिक भाव के स्थान पर लीकिक अथवा सांसारिक भाव अर्थात् भोगादि एवं स्व इन्द्रियादित्त्यों की तृप्ति का भाव प्रबल हो गया तो सेवा का मूल भाव ही विकृत हो जायेगा । आजकल सम्प्रदाय में जो विकृति को फलस्व स्त्रिखार्ह देतो है उसका कारण केवल अलीकिक प्रेम का अभाव है । जब तक आचार्यों अथवा सेवाकों प्रभु के प्रति श्रद्धा तथा माहात्म्य का भाव नहीं रहेगा तब तक सेवा में मूल अंग राग भोग एवं श्रृंगार, सांसारिक राग भोग एवं श्रृंगारि भावों को प्राप्त तक हो सीमित रह जायेंगे । आचार्य जी के अनुसार सर्वाधिक सहज साधन राग भोग और श्रृंगार (जो समस्त सांसारिक माया, मोह, नमता) आदि भावों का उत्पत्ति के कारण हैं) को प्रभु को सेवा में लगा कर उन्हें अलीकिकता प्रदान कर दो है । पुष्टिमागोयि अर्थात् भावना के साथ माहात्म्य ज्ञान को बनार रखना भी आवश्यक है । श्रीमद्भागवत के १०वें स्कन्ध के ३ अध्याय के ४५वें श्लोक के अनुसार सुबोधिनी में आचार्य जी का कथन है, ' यथा कथांचिन् मपि कृतस्नेहो ' । अरं मदगतिं व्यापि । वैकुण्ठारथ्या यास्यथे । माहात्म्य ज्ञानपूर्वक सुदृढ़ स्नेहो धिक स्नेहस्य तुल्यत्वात् । अतएव भावान गोपकादिनामापि माहात्म्य ज्ञानम् उत्पादाधिव्यति । अन्यथा बोधांश अधिक स्यात् । भक्तानां प्रपंचाभावस्य निरोधत्वत् पूर्व स्कन्धे उत्पत्ति निरूपेण स्वरूपत् एव भक्तानिर्वापिता । कितनी स्पष्ट बात कहा है गई है कि माहात्म्य ज्ञान का बोध होने पर उत्पन्न होने वाला सर्वाधिक एवं सुदृढ़ स्नेह ही प्रभु प्रतिष्ठा का साधन है । पुष्टिमागोयि सेवा का दूसरा प्रमुख भाव प्रेम भक्त है अर्थात् प्रभु की पति रूप में ग्रहण करके उनको सेवा करने । श्रीमद्भागवत का यह प्रसंग कदम्ब जो एवं देवदुति जो का प्रसंग है । अध्याय के प्रारंभ में भैरव जा का कथन है, ' विदुर माता विता के चले जाने पर पति के आश्रय को समझ कर आधा देवदुति कदम्ब जा को प्रतिदिन प्रेम पूर्वक सेवा करने लगा जैसा पार्वती स्वयं शंकर जी को

को करतो है *। तात्पर्य यह है कि उसने काम वासना, दम्भ, ईर्ष्या, लोभ, पाप और मद का त्याग कर उसी सावधानी एवं लगन के साथ सेवा में तत्पर रहकर विश्वास, पवित्रता, गौरव, संयम, सुशुष्का प्रेम मधुर भाषणादिके आदि गुणों से अन्त में अपने पति को प्रसन्न और अन्तुष्ट कर लिया कि पुष्टिभागीय सेवा में जो काम-वासना, दम्भ, ईर्ष्या, लोभ, पाप और अहंता मदता आदि को सेवा भावनाका विरोधा वताकर उनकेपरित्याग का आदेश दिया है। अपने सन्यास निणयि ग्रन्थ में आचार्य जो ने कहा है कि विषय आक्रान्त देहानां नावेश सर्वाथा हरैः। अर्थात् जिसके हृदय में विषय वासनाएं बसी हुई हैं उसके हृदय में ईश्वरादेश कभी नहीं हो सकता। अधिक लोकासक्ति, भक्ति के विरुद्ध विषय भोग होने-सकस-है को इच्छा उस हेतु सुन्दर भोगादि, देहाभिमान, कुलाभिमान, विधाभिमान, भगवत् सेवा, विमुख देह के पोषण, गृहादि में आसक्ति, पुत्र पत्नी में ममता, एवं भोकृष्ण को कथा, सेवा, कोर्तन आदि रक्षित आदि ये सब कारण प्रभु हमें दूर करने वाले हैं। अतः जहाँ तक हो सके हमें इनसे बचकर रहना चाहिए। हरिराय जो के कथनानुसार पुष्टिभागीय आचार्यों ने इन दुर्गुणों से रहने का आदेश दिया। भागवत के २३वें अध्याय में इस प्रकार संकेत किया गया है। इस अध्यायके द्वितीय श्लोकमें प्रयुक्त दो शब्द बहुत महत्वपूर्ण हैं कि देवहुति जा (१) बड़ी सावधानी (२) लगन के साथ सेवा पर बल दिया है। तृतीय श्लोक में सेवा के बाधक बनने वाले भावों तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया है। आचार्य जो के कथनानुसार * दोषाभावनाह-विमुज्येति। कामादय षट्दोषाः पापाराधो बाधकौ। तत्र काम आद्यः कामपूणर्थिव कामिनः मजते। मानमिति पाठे अहंकारी राजपुत्रमहानिति, काम-स्थानायः। दम्भी लोभात्मकः धन कोत्यादि लोभाभावे दम्भं न कुर्यात्। अतः तु तर्पयि सर्वतस्या स्वात साक्षात्लोभा न अभवतोति राजपुत्रयास्तदग्र पश्यायं नेरुयातक सेवायां अभव त्रीति दम्भी निदीष्टः चकारादपराधो निवारितः। ईर्ष्या नरसरात्पक्षः कृषश्च संग्रहीतः लोभ स्पष्टः। अधमत्पराधः। स्वमष्टां प निवारिता। इस अध्यायके प्रथम श्लोकका यह कथन पुष्टिभागीय सेवा भावना

का चोतक है। देवहुति कदम जा का २० प्रति दिन प्रेमपूर्वक सेवा करने लगे। ठाक उसी तरह जैसे पार्वती जा रंकर को सेवा करता है। इन्हीं का अनुकरण देवहुति जो ने कदम का सेवा शुरुआत करने में किया जिसमें कामवासना, दम्भ, ईर्ष्या, लोभ, पाप, एवं मदाह विकारों का सर्वथा अभाव है। यही भाव वैष्णव लोग अपने श्रेष्ठ के प्रति रखकर सेवा में लगे रहते हैं। सप्तम स्कन्ध के पंचम अध्याय गोकुल में भावान के जन्म महोत्सव का मनोहारा दृश्य प्रस्तुत किया गया है। भागवत में कृष्णालोलाओं का प्रारंभ भावान के गोकुल में जन्मोत्सव से ही होता है। सम्प्रदाय को समस्त सेवा प्रणालियों एवं कीर्तन प्रणालियों का प्रारंभ भी जन्माष्टमीमहोत्सव से ही होता है। इन भावनाओं को आज भी पुष्टि-मागाथि सेवा स्थलों में जन्माष्टमीमहोत्सव पर प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है - उदाहरणार्थ जन्म सारा सेवा स्थल आनन्दमान सेवाकों एवं वैष्णवों को जय कन्हैया लाल को, हाथों धोड़ा पालकी, नन्दके घर आनन्द भयो, जय कन्हैया लाल को आदि हर्षी ध्वनियों से मिश्रित वातावरण गुंजायमान हो उठता है। सभी दर्शनार्थी एवं सेवागृह के सेवक केशरिया रंग के गोप उबलते गवतलों के वस्त्र पहनते हैं। हरेक के हाथों हल्दी भर दही के पात्र होते हैं। यह दही एक दूसरे पर हलके हलके छिड़का जाता है। सारा वातावरण ग्वाल बालों द्वारा उठाई हुई अबोर और गुलाल से गुलाबी हो जाता है। गृह का स्वामी यशोदा माता का रूप धारण कर अपने सेवा स्वरूप को पालना झुलाते हैं। कीर्तनकारों में प्रमुख कीर्तनिया बुरदास वैष्ण धर कर बुर सारा रचित बघाई का पद, 'नंदजु मेरे मन आनंद भयो सुनि गोवर्धन से आयो' एवं सब कीर्तन प्रणालियों तथा सेवा प्रणालियों का प्रारंभ भागवत में कृष्ण जन्मोत्सव के आधार पर ही हुआ है। श्रीमद्भागवत में इस अध्याय के प्रारंभ में उल्लेख है - पुत्र का जन्म होने पर तो उसका हृदय विलम्ब आनंद से भर गया है। उन्होंने स्नान किया और पवित्र होकर सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किए और फिर ब्राह्मणों को बुलाकर स्वास्ति वाचन और अपने पुत्र का जन्मकर्म वंशरक्षक संस्कार करवाया साथ ही देवा देवताओं को और पितरों को विधि पूजा भी करवाई। विभिन्न प्रकार के दान दिये गये।

गोप गोपियाँ कृष्ण जन्म सुनकर मंगल गीत गगतो हुई दर्शनार्थ नन्द मत्स्य के और चल दी। पशुत से पदों में सूरदास ने जन्म महोत्सव का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। प्रभु जन्म होने के पश्चात् ज्योतिषी जन्म पत्रिका प्रभु को बाँचे। पाँच पंचांग तिथि बाँधान्त्य को पाँच बारसो प्रभुन कूं दिखावना और बाँई और सोधो चौक टाये घरनो। पाँच हाथ धीय प्रभुन को जेवनो और सिंहासन पास जायके, जाचमन का फारो नैस जत तथा पाँचादात और ओफल में जो रकम धरो हीय बापे से एक ओफल में पूं रकम हाथ में लैके संकल्प गोदान को करनो ऐसे संकल्प करि घरतो पर घर देनो। ये द्रव्य जोशी छू देनो। इस सब उल्लेख से स्पष्ट हो जाता है कि पुष्टि नागयि सेवा पर अमिद्भागवत पुराण का सर्वोच्च प्रभाव पड़ा है। पुष्टि नागयि वर्षात्सवों को सेवा में तीन प्रकार प्रधान हैं - (१) भगवान्श्री कृष्णचन्द्र एवं उनकी विभिन्न कला और अंशावतारों के जन्मदिन (जयन्तियाँ)। (२) सम्प्रदाय के अण्णवेठ आचार्यों को जयन्तियाँ एवं विभिन्न ग्रहों के सेव्य स्वरूपों के विशेष महोत्सव, (३) विभिन्न वृत्तोत्सवादि इन अवसरों पर सेव्य स्वरूपों का विभिन्न प्रकार से श्रृंगार किया जाता है। विशिष्ट भोग तथा विशेष प्रकार के कोतन आदि होते हैं। सेवा भी उत्सवों के अनुसार हो हुआ करेगी। नित्य सेवा का क्रम कृतु अनुसार परिवर्तित होता रहता है।

भागवत के दशम स्कंध के छठे अध्याय में भगवान् पूतना का वध करते हैं इसमें शुक्रदेव जी कहते हैं - पूतना एक राक्षसी थी। बच्चों को मारना तथा उनका खून पीना यही उसका काम था। ऐसा स्थिति में जा परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण को श्रद्धा और भक्ति से माता के समान अनुरागपूर्वक अपनी प्रिय वस्तु को प्रिय लगाने वाली वस्तु समर्पित करते हैं उनके संवत्स में तो कहना ही गया। जब श्रीकृष्ण बड़े हो जाते तो वे गोचारण और कुंजलाला करने लगते हैं। प्रेम लीलाओं का चरम विकास गोपियों के साथ महारास करते समय प्रकट होता है। महारास के पूर्व कात्यायना व्रत, चोरारण, वेणुगोत, एवं गोपिका गीत प्रसंगों में कामगंधर्वों ने प्रेमासक्त गोपियों को उत्कृष्ट प्रेम नायना एवं समर्थन के साथ प्रेम

प्रेम भावना को व्यक्त किया है। दशम स्कंध के ३२ अध्याय में भगवान् स्वयं कहते हैं, 'हैं गोपिजीं इसमें अंदह नहीं कि तुम लोगों ने मेरे लिए अपना लोक मयादा वेदमार्ग और अपने संन्यासियों को भांजो दिया है। तुमने मेरे लिए घर गृहस्थों को छोड़ दिया है। जिन बाड़ियों को योगी यतो भी नहीं तोड़ पाते। यदि मैं तुम्हारा त्याग, बलिदान, प्रेम, सेवा का बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकूँगा। प्रेममया सेवा पारिचर्या की पुष्टिमार्ग में परम साधन बताया गया है। श्री वल्लभ जो के अनुसार जिस प्रकार गोपिन्यां एक क्षण भी आकृष्ण के बिना नहीं रह सकते उसी प्रकार वैष्णवोंको भी अपना हर क्षण भगवान् को सेवा में लगा देना चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि पुष्टिमार्ग का मूल स्रोत श्रीमद्भागवत तथा विशेष रूप से उक्त दशम स्कंध है।

सिद्धान्त मुक्तावली में श्रीवल्लभ जो के कथनानुसार भगवान् में चित्त का पिरोना ही सेवा है। सेवा तब से चित्त से भी करना चाहिए। इस सेवा से अंता ममतात्मक संसार में निवृत्ति तथा ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है। उनका कहना है कि आकृष्ण की ही सेवा करनी चाहिए, यही सेवा 'परा' (फलरूपा) है। सेवा के उन्होंने तीन भाग किए हैं - तनुजा, विदजा और मानसा। श्री हरिराय जो ने भी मानसा सेवा को ही फलरूपिणा बताया है जो अधिकतर प्रजभक्तों को ही दिखाई देता है। निरोध का स्वरूप भाव में है अतः मानसा सेवा भावात्मक है।

१- चेतस्तत्प्रवर्णी सेवा, तत्सिद्धये तनुविदजा,

ततः संसार दुःखस्य निवृत्तिः।

२- कृष्णसेवा काया मानसा सा परमता

३- चेतस्तत्प्रवर्णी सेवा मानसा फलरूपिणी,

प्रोक्तता निरोधरूपा सा ब्रजस्थेष्वेव पृथगेति।

१- ब्रह्मबोधनम्

२- सिद्धान्त मुक्तावली

३- स्वमागयि सेवाफलम रूपानणयि, श्री हरिवाङ्मुक्तावली

भक्त का शरीर भगवत्कार्य में ली और जो भक्त को सम्पत्ति है उसे अपना न समझकर भगवान का समझें और उसे भक्तों के पसलन तथा भगवान के मंदिर निर्माण आदि लक्ष्य के लिए यह सेवाविषय है । इन दोनों सेवा के अभ्यास से मानसो सेवा का लाभ होता है । मानसो सेवा को भावात्मक स्थिति के विषय में श्री हरिराय जो ने कहा है, ' प्रभु से मिलन की विकलता द्वारा जब विप्रयोग उत्पन्न हो तब वह प्रभु भक्त को सम्पूर्ण लीला का वर्णन कराते हैं । मानसो सेवा में रसात्मक प्रभु की स्थिति का ध्यान सदैव उल्लास होता है ।

अन्यत्र विनियोगाय क्रियातां तनुविजया ।
तथा तु मानसो सिध्यैत् सेवात्र फलरूपिणो ॥^१

हरिराय जो ने सेवा विधि की प्रथम अवस्था का निरूपण करते हुए कहा है, ' पहले भगवान को मूर्ति की ही सेवा करना चाहिए, इस प्रकार मूर्ति में भगवान का ध्यान करके ही लोग मूर्ति की सेवा तथा पूजा करते हैं - परन्तु स्वमागोथि भक्ति पद्धति में मूर्ति भगवान का ही रूप है । जो लक्ष्मण तादाम्य का भाव है अतः स्वरूप सेवा कृष्ण की सेवा है -

तैव प्रभुवा त्वलोलानुभवतीहृदि ।
रसात्मकस्यस्वरूपस्य स्थितिस्त्रैकालिको भवेत् ॥^२

हरिराय जो ने कथना-नुसार सेवा दो प्रकार का होता है - एक सेवा त्वं त्याग के साथ, दूसरी अनासक्त भाव रखते हुए अत्याग से । दूसरा के अनुसार भक्त गृहस्थों का पालन करते हुए अनासक्त भाव से प्रभु की सेवा करे । जानायाँ जा ने भा प्रथमावस्था में गृहस्थ में रहकर ही भगवत्पूजा का उपदेश दिया है । यदि प्रभु लक्ष्मण मिलन की व्याकुलता बहुत बढ़ गया तो गृहस्थ त्याग कर दे । गृहस्थाश्रम की सेवा विधि की बताते हुए हरिराय जो ने कथना-

१- श्री हरिराय जो वा०:मुक्तावली (स्वमागोथि अर्ण समर्पण सेवाविनिरूपण)

२- स्वमागोथि सेवाफलनिरूपणियः (हरिराय मुक्तावली पृ० ३१-३२)

जुसार यथायोग्य प्राप्त द्रव्य से भगवान का पूजा करे । भगवान का मंदिर
सिंहासन आदि बनवाये , इस प्रकार भोग भृंगारादि सेवा में द्रव्य लब्ध लभ्य ।

कृष्णापूर्ती यथास्त्वे द्रव्यैः सम्पूज्यद्वरिम् ।
पूर्वं स्थानं मंदिरादि यथा सिंहासनादि च ॥
सम्प्राप्य भोग आग्रा हरिमुत्थाप्य संवतः ।
प्रातरारभ्य सर्वापि सेवा पूजा विधीयताम् ॥

हरिराय जो ने सेवा पूजा में अन्तर बताया है, सेवा में स्नेह
पूर्वक पूर्वक लोकवत मुक्ति से भगवान को परिचर्या हीतो है तथा पूजा में
शास्त्राविधि से प्रार्थना होता है ।

पूजा भाग भवेत्तत्रावेधानात्, पूज्यसेवनम् ।
विशेषाभक्तिभागीयं परुषात्तमस्त्विवः ॥
सेवायां लोकका भुक्तिस्तथा स्नेहो नियामकः ।
पूज्यायां तु विधिः स्नेह विरुद्ध इति निश्चयः ॥

वात्स्व्य भगवान को सेवा स्नेहपूर्वक बालक परिचर्या के समान
हीतो है । पूजा में स्नेह का लाव नहीं होता ।

सेवा का एक ओ गुरु सेवा भी है, सेवनीय गुरु भक्ति मार्ग का
अनुसरण करने वाला कृष्ण सेवा परायण भागवत तत्त्व को जानने वाला
तथा दम्भ विकारों से रहित ही । हरिराय जो के कथनानुसार यदि कोई
ऐसा गुरु न मिले तो पहले के किसी सद्गुरु के उपदेशों का नियामक मानना
चाहिए ।

१- स्वभागीय श्रम समीप सेवादिनिरूपणं (हरिराय मुक्तावली, भाग १

२- वहा, पृ० ७४-७७

पृ० ४६-४७

गरुत्व भक्तिमागयिः कृष्णसेवापरायणः ।

श्रीभागवततत्त्वशी दम्भादि रहितो नरः ।

तदभाये तथा भूतोपदेशो न नियामकः ।

तनुजा विजया को फलस्वरूपा मानती सेवा को हरिरायजी ने तीन प्रकार से फलदायिनी बताया है । १. उच्चम सेवा के अधिकारी को सेवा का फल अप्राकृतिक शरीर से वैकुण्ठादि लोकों में भावान को लाला का आनंद लाभ होता है । मध्यम सेवा के अधिकारी को पुरुषोत्तम के श्रोत्र में (अक्षर ब्रह्म में नहीं) लोभता का सामुज्य मुक्ति मिलती है और कनिष्ठ अधिकारी को प्रभु अद्भुत तथा अलौकिक सामर्थ्य देते हैं ।

सामुज्यमक्षरे नैव किंतु अत्युत्तमोत्तमे

भक्तिमार्गफलैष्येत्तन्मध्यमे फलमोयते । (३२)

ह० मु० पृ० ३८

श्री वल्लभाचार्य जी ने सेवा के विषय में कहा है - फलदान तथा प्रप्ति में काल नियामक नहीं है, उसमें प्रभु का अङ्ग ही नियामक है ।

यादसो सेवना प्रोक्ता तात्सद्धौ फलमुच्यते ।

अलौकिकस्य दाने हि चाद्यः सिद्धयेन्मनोरथः ।

फलं वा व्यूधिकारं वा न कालोत्र नियामकः ।

सेवाफल षोडश ग्रन्थ भट्ट रमानाथ शर्मा, पृ० ११०

उक्त ग्रन्थ में सेवा प्रकरण पर आगे हरिराय जी लिखते हैं कि हरि को सेवा करते हुए सम्मान को इच्छा नहीं रखनी चाहिए, दानता धारणा कर सेवा में हरि के गुणों का कातन करते रहना चाहिए -

कृष्णं अवत्मिकं सात्त्वा ज्ञात्वा हृदि भावयेत् ।

अहं करामात्यतादृगहंकारं परित्यजेत् ।

स्वमागयित्तरणात्मर्पणसेवादानरूपणाम्, हरिराय वाङ्: मु० पृ० ६०

सेवायामपि सम्मानं नापिद्वीत हरः पुनः ।

गुणान् गायत्र्यो नाम कोतीयत सदासे स्थितः । ७६

स्व०श०स०से०नि० हार०मु० पृ० ६०

नाथद्वार के निज पुस्तकालय में 'सेवा प्रकार' नामक ब्रजभाषा को एक हस्तलिखित प्रन्चीन पोथो सुरक्षित है । इसमें कुम्भनदास जो के महाप्रभु द्वारा उपदेश दिए गये हैं । जिनके कथनानुसारेण कि जीव षट्पदार्थों से लोभ, मोह, काम, क्रोध, माया, अहंकार और तृष्णा ग्रसित है । जब जीव में इन सबका पूर्णभाव हो तभी प्रभु को सेवा हो सकती है । प्रातः से सायं तक मनुष्य न जाने कितने अपराध करता है यदि इन अपराधों में पूर्ण सावधानी बरतो जाय तो सेवा में भी सावधानी और सुचारुता आ जाते हैं । ये अपराध ८४ कहे गये हैं । ये सावधानियां सम्प्रदाय की सेवा विधि में भूल करने वाले आलसो सेवक और पुजारों में हो सकते हैं ।

१- उठते हो मंदिर में झाडू न देना ।

२- मिट्टी बिना बहिर्मुख जाना ।

३- सूर्योदय से पूर्व दन्तवाक न करना ।

४- नग्न स्नान करना ।

५- स्नान करके आचमन न करना ।

६- मंदिर लीचे बिना ठाकुर को जगाना ।

७- प्रसाद जल से आचमन करना ।

८- तिलक मुद्रा किए बिना मंदिर में जाना ।

९- ठाकुर के चन्दन में से अपना तिलक करना ।

१०- ठाकुर जो को समथ धुका कर जगाना ।

११- रात्रि का वासो जल छटाकर फिर न भरना ।

१२- ठाकुर को तेल मर्दन बिना नहलाना इत्यादि ।

सेवा विधि श्री वाल्मीकि का कोई संस्कृत में लिखाग्रन्थ नहीं है ।

गो० विट्ठलनाथ जो का भी कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं है । इन दोनों के द्वारा स्थापित को हुई सेवा पद्धति का लेखन विस्तार श्री गोकुलनाथ जो तथा श्री हरिराय जो के अन्य में हुआ । सेवा विधि पर हरिराय जो के दो लेख 'आह्नक' तथा 'भावना' प्रसिद्ध हैं । मुखिया पधुनाथ जा शिव जो द्वारा लिखित 'वल्लभ पुष्टि प्रकाश' नामक पुस्तक वल्लभ सम्प्रदाय के आठों पाठों को सेवा विधि पर लिखा हुआ एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है ।

श्री हरि भक्ति - रसामृत सिंधु का दुर्गम अंगिनो टाका में भी भिन्न भिन्न पुराणों के आधार से सेवापराध बतार गये हैं जो वैष्णवों के लिए वज्रयोग हैं बतार गये हैं । जैसे सवारो तथा पादुका अर्चित प्रभु मंदिर में जाना, देवोत्सवादि का सेवा न करना अर्थात् उपेक्षा करना, मूर्ति रूप भगवान को प्रणाम न करना, उच्छिष्ट मुस अथवा अपवित्रता में भगवान का वंदना करना, एक हाथ से प्रणाम करना, भगवान के सामने हो सामने परिक्रमा करना, भगवान के सामने पैर फीलाना, पैर तिकोड़ कर तथा कमर और घुटनों से बांध कर बैठना, भगवान के अमदा जीना, खाना, फूट बीलना, उच्च स्वर से गप्प मारना, रोना, फगड़ना, मूर्ति के अमदा किसी को दंड देना अथवा किसी पर उनके सामने अनुग्रह करना, अन्य मनुष्यों से क्रूर भाषाण करना, मूर्ति के अमदा सेवा में काम्बल ओढ़ना, दूरे का निन्दा या स्तुति करना, अलोल भाषाण करना, भगवान की जिना अपेक्षा किए भोजन करना, भगवान को और पाठ फेर कर बैठना, अन्य का अभिवादन करना, सामथीय रहने पर भी गोपीपचार करना, अपना बढ़ाई और देवताओं को निन्दा करना आदि ३२ अपराध हैं ।

अष्टछाप काव्य में भगवान को सेवा का महत्ता का तो वर्णन है परन्तु सेवापराधों का वर्णन नहीं है । केवल ब्रह्मदास ने सेवा के माहात्म्य तथा उसके फल के विषय में विशेष उल्लेख किया है । अष्टछाप के कवियों का जीवनीयों से ज्ञात होता है कि इन लोगों में जो गृहस्था भक्त थे जैसे कंभनदास,

चतुर्भुजदास, क्षीत स्वामो, श्रीनाथ जो की सेवा, तन, मन और धन से करते थे । जो भक्त त्यागोथे वे केवल तन और मन से सेवा में लगे रहते थे । मानसिक तथा कातन्य सेवाके लिये तो अष्टछाप कवि विशेष प्रसिद्धि प्राप्त किए हुए हैं । गोपी ग्वाल तथा नन्द यशोदा आदि को मानसिक स्थिति के चित्रों में इन्होंने लोगोंको अन्तरात्मा बोलती है । इनके प्रेम भक्ति पूर्ण पदों से भगवान के सानुभव में इनको मानसिक अवस्था का पता चलता है । देखिए कौन सुन्दर चित्र है -

वैचरि हो दधि ब्रज का खोटी
सिर को भार सुरति महि आवति श्याम श्याम हेरत भई मोरि ।
घर फिरति गोपालाई बैचत भगन भई मन ग्वारि किसोरि ।
सुन्तर बदन निहारत कारन, अंतर लागि सुरति को डोरि ।
ठाडो भई विथकि मारग मांझ हाट मल्लको सो फोरि ।
सूरदास प्रभु रसिक सिरौमनि वित चिन्ताघणि लियो अंजोरि ।
(सूरसागर दश० स्क० पृ० २५८)

अनेक पद्यों में सूरदास का कथन है - मनुष्य को शरीर, भगवान को पूजा के लिए मिला, नेत्र भगवान के दर्शन के लिए, श्रवण उनका कथा सुननेके लिए, हाथ उनका सेवा पूजा करने के लिए, पैर तोथे स्थानों में जगने के लिए और जिह्वा हरि कोतन के लिए ।-

नैन दरश देखन के लिए, मूरख लखि परनारो जिर ।
श्रवण कथा सुनिव को दाभे, मूरख बखि परनिंदा तिंह कांभे ।
हाथ निर परपूजा हेतु, तेहि कर मूरख धरधन लेत ।
पग दिर तारथ जात्रे काजे, तिन जो अलि नित करत अकाज ।
रसना हरि गुंमरन को पार, तकर परनिंदा उव्वरा ।

(सूर सागर चतुर्थ स्क० पृ० ५०)

यहाँ वर्णन और आगे देखिए -

आई रसना जो हरिगुन गावै
 नैनन का छवि यहै चलाना, जो मकरन्द मुकुदहि ध्यावै ।
 निर्मल चित तो सोई आँचो, कृष्ण पिना जिय और न भावै ।
 वनन को जो यहै अधिकाई, सुनिरस कथा सुधारन ध्यावै ॥
 केतई जो श्यामहि जेना, चरननि चलि वृन्दावन जावै ।
 सूरदास जाये बलि ताके, जो हरि जु गीं प्राति बड़ावै ।
 (सूरसा० द्वि० स्क० पृ० ३५)

जो मन सांसारिक सम्पत्ति के ढ़ाने और मुनाफा कमजने में लगा है उनको सूर वित्तज्ञा सेवा का उपदेश देते हैं । यदि तू रामनाम को चित्त में धारण करता है और कमार धन को भगवान और ईश्वर भक्तों को सेवा में लगाता है तो तेरे मूल धन में हो बहुत मुनाफा होता है और वैकुण्ठ में निवास करेगा । सूर सागर में एक काफ़ी लम्बा पद सेवा फल पर मिलता है । पाक्षे यह भी कहा गया है कि यह पद सूरकृत या प्रतीत नहीं होता है । ०५० इसका भाव है - गोपाल का भजन करो भूलो पत , मानव देह का पूर्ण लाभ उठाओ । गुरु का तथा आर्तजनों को सेवा से भगवान को सेवा मिलता है जो प्रातः उठकर श्रीकृष्ण का ध्यान रखता है वह मनीषांक्षित फल पाता है । जो श्रीठाकुर जी का आरता करता है, उसका भाव स्मरण करता है, ईश्वर का चरणामृत पान करता है, वह वैकुण्ठ में अपना घर बना लेता है । जो भगवान के जानने नित्य कोत्तन करते हैं, वे तीनों लोकों का राजधानी पास हैं । जो भगवान का धृंगार करते हैं, उन्हें भगवान पूर्ण रूप से ओंकार कर लेते हैं । जंत में सूरदास का कहना है कि भगवान का सेवा का फल उनको सेवा करने से भगवान भक्त को अपने हृदय में स्थान देते हैं । उदाहरणार्थ उस पद का वृत्त कुछ भाग देखिए -

प्रात आठ जो श्रीकृष्ण को व्यावै, जो फल मांगे जो फल पावै ।

जिन ठाकुर को दरशन कानो, जावन जाम दुफल कर लोनो ।

जो ठाकुर को जारति करे, तोन लोक ताके पायन परे ।

जो ठाकुर कर प्रनाम, वैकुंठहि ताको निज धाम ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥

जो श्री हरि को सुनिरे नाम, ताको दुपल नित पूरन काम ।

जो ठाकुर को ध्यान लगावे, ध्रुव प्रहलाद को पद्मा पावे ।

जिन हरि को चरणामृत लिथो, पैकुंठ लोक अपना घर नाथो ।

जो हरि जु करे श्रृंगार, ताको पूरन अंगार ।

पुष्टिमागंयि सेवा

पुष्टि सम्प्रदाय में सेवा का विशेष महत्त्व है क्योंकि सेवा विधि सम्प्रदाय की अपनी मौलिक विशेषता है । सिद्धान्त मुक्तावली में आचार्य जी ने लिखा है - ' कृष्ण सेवा सदा कार्या मानसो सा परामता ' । सिद्धान्त मुक्तावली अर्थात् कृष्ण का सदा सेवा करना चाहिए, यह सेवा मानसा होनी चाहिए, जो परा - फल स्वरूप है । दूसरे श्लोक में आचार्य जी ने सेवा का स्वरूप बताया है, ' धेतस्तत्प्रवर्णां सेवा ' अर्थात् हरि में हा चित्त का पिरोना हा यह सेवा है । यह सेवा मन के साथ तन तथा धन से भी करना चाहिए । इससे अहंता, ममता, स्वरूप, संसार का निवृत्ति औ भगवान माहात्म्य का ज्ञान होता है । पुष्टिमागंयि भक्त को शुद्ध सेवा भाव से मुक्त भगवान के पूजोत्सववाद के स्थान पर रहना चाहिए । उनके ' जवाफल ' नामक ग्रन्थ में सेवा के तीन फल बताए हैं । तात्पर्य यह है कि सेवा एक है फल तीन हैं । इसलिए सेवा के भी तीन प्रकार हैं । जो जैसा सेवा करेगा वैसा ही फल मिलेगा।

‘ यादृशा सेवना प्रीत्या तत्सिद्धौ कल्मुच्यते ’

सर्वोत्तम सेवा से प्रभु की आलीकिक कृपा से गौण तथा मुख्य सभा कामना आदि फल प्राप्त होते हैं । मध्यम प्रकार का सेवा का फल सामुजा है । सामुजा के दो अर्थ हैं - (१) प्रभु में श्रेष्ठ होना (२) प्रभु के साथ गोप पाण्डि

का भांति सख्योग । तोसरो वखव सेवा से अधिकार फल का प्राप्त होने
 छवव है । सेवोपयोगोक्तारात्मक देह को अधिकार फल कहते हैं । सेवा के
 समय उत्पन्न विघ्न आसक्ति आदि को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये ।
 यदि प्रयत्न से ये दूर न हो तो उमक है कि ईश्वर ही फल देना नहीं चाहता ।
 ऐसा अवस्था में ईश्वर नाम के सहारे ज्ञान मार्ग में निवास करना ठीक है ।
 प्रभु वैसे रसे वैसे हो ठोक है । कहा भा है , ' ईश्वरः यत् करोति भुम् करोति ' १

पुष्टिमागोयि सेवा पर हरिराय जा ने काफा प्रकाश डाला है ।
 ' हरिराय मुक्तावलो ' में इन्होंने तनुजा, वितजा, तथा मानसो सेवाओं में
 तोसरो को ही श्रेष्ठ बताया है । यही सेवा भावात्मक भा है । तनुजा सेवा
 के भक्त अपना शरीर भगवान को अर्पण कर देता है, वितजा में अपना धनादि
 समर्पित करता है और मानसो के विषय में इनका कहना है -

वाह्यास्कूती वियोगेन रसे हृदयदेशे
 रसात्मकप्रयोस्तत्र प्रादुःमविस्त्वतो भवेत् १ ।

अर्थात् जब मक्त के हृदय में भगवान से मिलने की विकलता के कारण
 विप्रयोग उत्पन्न होता है तब प्रभु हृदय में सम्पूर्ण लीला का अनुभव कराते हैं
 और फिर स्वतः ही रसात्मक प्रभु का प्रादुर्भाव हृदय में हो जाता है । उन्होंने
 सेवा दो प्रकार का बताया है - त्याग से दूसरा अत्याग से । अत्याग वाला में
 भक्त गृहस्थाश्रम का पालन करता हुआ और यथायोग्य प्राप्त द्रव्य से भगवान
 को पूजता है । सेवा और पूजा का भेद भी इन्होंने स्पष्ट किया है -

सेवायां लीलाको मुक्तिस्तथा स्नेही नियामकः ।
 पूजायां तु विधिः स्नेहावरुद्ध इति निश्चयः ॥ २

१- स्वमागोयि सेवा फल रूपा नयि - श्री हरिराय जाडः मुक्तावला

२- वहा, श्लोक ५

अर्थात् सेवा में स्नेह के साथ लौकिक मुक्ति से पारदर्शिता होती है तथा पूजा में शास्त्रानुकूल अर्चनाका जल जातो है , इसलिए दोनों में अन्तर है । हरिराय जाने सेवाके लक्षण भी बताये हैं । वह भक्तिमार्ग का अनुसरण करने वाला ही , कृष्ण सेवा का परायण ही , भागवत तत्त्वों का ज्ञाता ही तथा दम्भ इत्यादि से रहित ही । बल्लभाचार्य जो का सेवा विधि पर कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं है । स्वा विधि को पूर्ण व्यवस्था गो० चिट्ठलनाथ जा ने की । आचार्य जा के समय में आनाथ जो का सेवा विधि आधारणा था । श्रृंगार केवल मात्र फँटा तथा मुकुट के द्वारा ही होता था । चिट्ठलनाथ जा ने आठ श्रृंगारों को व्यवस्था का - पाग, फँटा, दुमाला, मगा, कुल्हे, सेहरा, टिपारा तथा बबलु मुकुट । उनके साथ-साथ वस्त्राभूषणों का भी व्यवस्था की गई थी । अनेक उत्सव भी प्रचलित हुए, जिनमें ठाकुर जो कांकांकी कराई जातो थे । श्रृंगार तथा भोग के अलावा राग की भी व्यवस्था हुई । कृतस तथा समथानुसार आठों कांक्रियों में कोर्तन का भी व्यवस्था हुई जिससे अष्टराप स्थापित हुआ। भागवत के दशम स्कंध में लिखा है -

हे स्तोक कृष्ण हे अशिन् आदानन सुबलार्जन ।
तेजस्विन् देवप्रस्थ वरुध्य ।

अर्थात् श्रीकृष्ण के आठ जला थे । चिट्ठलनाथ जा ने अष्टराप के आठों कावयों को ठाकुर जो का आठ सेवाओं के रूप में माना और आठों कांक्रियों में भगवान का कोर्तन सेवा करने का आदेश दिया । आठों कार्त्तिकारों के साथ कातरिया भी रहते थे । इस प्रकार पुष्टि सम्प्रदाय ने साहित्य को उनके समय में पर्याप्त वृद्धि हुई । मरते समय चिट्ठलनाथ जा वरे ने आनाथ जा के उन सात स्वर्णों को जो उन्हें अपने पिता से अर्पित निधि रूप में प्राप्त हुई थीं अपने सातों पुत्रों को बाँट दिया । इनमें सातों स्वर्णों के कारण पुष्टि सम्प्रदाय के सातों गृहों अथवा वर सात पाठों का नामकरण हुआ है । मधुरा निवाजा

मुक्तिया आरघुनाथ जी शिवजी ने वल्लभ सम्प्रदाय के पुष्टि मार्गों ज्ञातों घटों का सेवा विधि का पूरा विवेचन 'आ वल्लभ पुष्टि प्रकाश' में किया है । इस ग्रन्थ के चार भाग हैं ।

साधनाका आधार शुद्ध प्रेम माना गया है । यह शुद्ध प्रेम हा जाव के हृदय में भगवान के अनुग्रह अर्थात् पोषण से ही उत्पन्न हो सकता है । इस शुद्ध प्रेम के अभाव में जहाँ भगवान का आराधना होगा पूजा हो कहा जा सकता है सेवा नहीं ।

आ गोवर्धन नाथ गुप्त ने अपनी पुस्तक 'कविवर परमानंददास और वल्लभ सम्प्रदाय' में सेवा दो प्रकार का बताई है - नाम सेवा तथा दूसरी स्वरूप सेवा । स्वरूप सेवा तीन भेदों में पहले बताए जा चुके हैं - तनुजा, विराजा तथा मानसी । मानसी सेवा दो प्रकार का बताई गई है - मयादि मार्गी तथा दूसरा पुष्टिमार्गी ।

मयादि मार्गी मानसी सेवा के लिए शास्त्रोक्त गम्भार शान का आवश्यकता होती है । इस मार्ग पर चलने वाला नाना क्लेश पाता हुआ पहले आत्मज्ञान का प्राप्ति करता है फिर लोकार्थों के रूप में भगवान कृष्ण का सेवा करता हुआ अपने अहंकार मयता आदि को नष्ट कर देता है तब वहाँ उसे वच्छिन्न फल को प्राप्ति होता है । इसमें भा मस्त को भगवान के अनुग्रह का कामना रहती है । इन दोनों मार्गों का एक ही अंत है । किन्तु पुष्टि मार्ग (भक्तिमार्गी), ज्ञानमार्गी (मयादिमार्गी) का अपेक्षा अधिक सुगम और प्रसस्त है । आचार्य जी भा त मार्ग के समर्थक होते हुए भी ज्ञान मार्ग के आरोध नहीं थे ।

पुष्टि सम्प्रदाय का सेवा का आ म्प्राय आधारणा उपासना अथवा पूजा ही एकमात्र साधन है । आधारणा पूजा में श्रीकांड का प्रधानता होता है । किन्तु पुष्टि सम्प्रदाय में सेवा भावना प्रधान है रहता है । इस सम्प्रदाय के प्रमुख

प्रमुख जातकार गी० गोकुलनाथ एवं गी० हरराय जो भे भावना प्रधान ग्रन्थों का रचना का है ।

जातकारों का निवृत्ति और अहम का कारण के लिये वल्लभाचार्य जो भे पुष्टिमागोथि सेवा विधि का व्यवस्था का । इसके दो भेद हैं - (१) क्रियात्मक (२) भावनात्मक । क्रियात्मक सेवा दो प्रकार का होता है - तनुजा और वित्तजा । भावनात्मक मानस सेवा है इसका सिद्धि भां तनुजा और वित्तजा सेवा द्वारा रूपाग्र इन्द्रियों और मन के विनियोग के अनन्तर हो सकती है । इस प्रकार पुष्टि सेवा में क्रियात्मक सेवा पर विशेष ध्यान दिया गया ।

पुष्टिमागोथि सेवा के दो क्रम हैं -

प्रथम प्रातः काल से शयन पर्यन्त को नित्य सेवा विधि और दूसरा वर्षात्सव सेवा विधि । नित्य सेवा विधि में वात्सल्य भक्ति का प्रधानता है इस सेवा के निम्नलिखित आठ समयानिश्चित किए गये हैं -

(१) मंगला, (२) अंगार, (३) ग्वाल, (४) राजभोग, (५) उत्थापन (६) भोग, (७) संव्या आरता, (८) शयन

पुष्टि सम्प्रदाय का सेवा का आभिम्राय आधारणा उपासना अथवा पूजा नहीं है । आधारणा उपासना में श्रुति, स्मृति, कर्म कांड करने का प्राधान्य होता है और पुष्टिमागोथि सेवा में भावनाका प्राधान्य । इसलिए इस सेवा के दो स्वरूप हैं जो पहले बता दिए हैं - क्रियात्मक तथा भावनात्मक । नित्य सेवा भक्ति में वात्सल्य भक्ति का प्रधानता है ।

कुसुम मालारं ग्रंथकर ब्रज बिनतारं प्रातः आकृष्णा को प्रतोदना में नन्द भवन में आ जाता है । यशोदा जन्म कृष्णा के मुख से वस्त्र हटाती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानी सागर मंथन के फीन के नव्य चन्द्र प्रकट हुआ ही । कृष्णा के जागते हो भाव विलास विगत हो जाता है । उनके जागने से ज्ञान रूपी

सूर्य उदित हो जाता है जो आशा के दास तिमिर को उन्नापन कर उर्वितः अंतोष्ठा का प्रसारण करता है । प्रातः काल में षष्ठ्यं पद्यायों का बहवहाट पर ब्रह्म का विरुदापली है । उक्तप्रकार प्रत्येक किसी न किसी आर्त्तिक भाव का जागरित करती है । देखिए कैसा सुन्दर चित्रण है -

(१) मंगला - जागिर गोपाल लाल, आनंद निधि नंद बाल ।

जुमाते कहे बार बार, भोर भयो प्यारे ।

नैन कमल दल विसाल, प्रति विपिका मराल ।

महल रूपो बदन ऊपर, कीटि वारि डारे ।

उगत अरुन विगत उर्वरी, अंक किरण हान ।

दोपक सु मलोक शान धुति समूह तारे ।

इस सम्प्रदाय में कहां कहां मंगला के अंतर्गत खंडिता भाव के पद भी आ जाते हैं । इस प्रातः काल के भोग में श्रोतृष्णार्थ को मक्खन मिथी, दूध मलाई, आदि दिया जाता है । वे कुछ खाते हैं, कुछ गिराते हैं, कुछ मुल से लपेट लेते हैं, इस कलेऊ के ताल मंगला आरता का अक्षर जातो है और कृष्ण का कृपा दृष्टि का प्रार्थना भी का जातो है । देखिए कैसा सुन्दर चित्रण है -

नैन भरि देखौ गिरघर को जुल ।

मंगलारति करो प्रातः हो परन जुल ।

लोचन छावे सच्चो हृदय में धरा ।

कृपा अवलोकन नारु मुकुटोन रुख ।

प्रातः काल तीन बार घंटा नाद दिया जाता है । त्रिवर घंटा बजना नाद में त्रिगुण (सत, रज, तम) का संकेत है । त्रिगुणात्मन प्रभु जो निज भक्तों के कारण गुण वपुधारा है, उन्हें गाथा जाता है और (मंगलं, मंगलं ब्रजसु, मंगलं) का घोषा किया जाता है ।

शोभंत्यं गरी तवत्रा सूत मागध विदनः (भागवत १० पृ ७०)

इसके बाद भगवान का धृंगार किया जाता है ।

२- धृंगार : शोकृष्ण को अद्वियों में गर्म तथा गर्म में शीतल जल से स्नान कराया जाता है और भूषण वस्त्र आदि का धृंगार करने को धृंगार कहा गया है । भगवान राज ही वश में नहीं आते । नहाने में आनाकारा करते हैं और रोते रोते धरती पर लोट जाते हैं , माता यशोदा उन्हें तरह तरह से बहलाता है -

जसुमति जबहि कस्यो अन्धवावन रोई गर हरि लोटत रा ।
तेल उबटनो ले आगे धरि, लालहि नोटत पोटत रो ।
मैं बलि जाऊं न्हाऊं जान नोहन, कौ रोवत तिसु काजि रो ।
पाछे धरि राजी छपाई के उबटन तेल अमाजि रो ।

इस प्रकार बड़ी मुश्किल से नहलाकर चित्र विचित्र व्यसनों से उनका धृंगार किया जाता है । आँखों में काजल तथा कहीं किसी को नज़र न लग जाय अतः काला टोका भी लगा देते हैं ।

भागवतकार ने धृंगार विषय कहा है -
धुलि धूसरितांगस्त्वं पुत्र मज्जनमावह
त्वच स्नातः कृतागरी विहरस्वस्वस्कृतः ।

३- ग्वाल भोग : ये गोपीनाथ भोग भी कहते हैं । इसमें ग्वालमत्तों के साथ भोग करोगने को भावना है । ग्वाल से पदों में कृष्ण का राल जोड़ा भी वर्णित है । वे नीरा चकड़ीरा खेल कर गोपियों का मन नवाते हैं । कभी छत पर पतंग उड़ाते हैं और कभी लांचते हैं । कृष्ण का गालीने से खेलना भी रहस्यमय संकेतों से पूर्ण है -

जाल जाज तेलत सुरंग मिलीना ।
काम अन्द उबटत है पपाहा गड़ा मुखर मलीना ।

प्रेम घुमे लेते हैं फिरको मुझना मनसि सलीना ।

वधा बधा चीवत चक्क हित जु अबहि करीना ।

(परमानंदसागर पद ६२६)

इसमें गया आरोगना प्रमुख है । प्रातःकाल यशोदा वधा मथकर कृष्ण वलराम को ध्याता खलातो है तथाबन में भेजता है, कृष्ण प्रसन्न होकर नाचते कूदते हैं -

नन्दरानो मथि प्यावत ध्याता ।

नाचत हंसत करत किलकारी उर आनंद बढ़ावत ।

फूँकि फूँकि पय पिवत कमल मुख अरस परस दोऊ भैया ।

बाल विनोद सुर नर मुनि मोहें जोग ध्यान विसरैया ।

गोविन्द प्रभु पिय बदन चन्द को जसुमति लेत बलैया ।

इसके बाल कृष्ण गीचारण के लिए चले जाते हैं और वहीं सब ग्वालबालों के साथ विभिन्न प्रकार का झोंड़ाए करते हैं । भागवतकार के विचार भा देखिए -

तिष्ठन् मध्य स्वपरि हस्तयन नर्मभि स्वैः

स्वर्ग लेके- लोके निष्ठाति नुमुने यस्य मुक्ता बाल केलिः (भाग १०, १३, ११)

४- राज भोग :

यशोदा किसी ग्वालिन से मध्याह्न का भोजन बन में खा भेजता है जिसे राज कहते हैं उता को राज भोग कहा जाता है । इसमें भांति भांति के व्यंजन होते हैं । इसमें मैत्रा भाव का प्रबलता, अभिव्यक्त होता है । किसी पछाड़ा पर चढ़ कर आकृष्ण का सस्य अखाओं को बुलाना बड़ा भला प्रताप होता है । उसको खाता मंटेते हैं, उता जा साथ जाते हैं, कभी एक दूसरे का ज्ञान जान कर भा जाते हैं । देखिए इस गीचारण ग्वाल बालों का कितना अच्छा भाग्य है । जिस रूप के दर्शन तक के लिए मुनि देवता आदि भा खलवाते रहते हैं,

वह कितने सहज हो उन्हें प्राप्त हैं । उदाहरणार्थ -

हंस परस्पर करत किलोल
विंजन सभी सराहे मोहन । माठे कमल बदन के बोल ।
तोरे पलास पत्र बहुतेरे, पनवारों जीरो विस्तार ।
चहुं दिसि बैठि ग्वाल मंडलो, जैत लागे नन्द कुमार ।
(परमानंदसागर)

डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल ने अपनी पुस्तक ' परमानंददास और
वल्लभ सम्प्रदाय ' में राजभोग के तीन प्रकार बताए हैं -

- १- नन्दयशोदा के गृह में भोजन
- २- ब्रजसुन्दरियों द्वारा लाया गया भोजन (क्वाक) अथवा निमंत्रण
(कुनवारा)
- ३- बन्य भोजन

इनके उदाहरण भागवत में पृथक पृथक दिये गये हैं -

१- यशोदा के गृह में भोजन

अलं विहोरःकुत्तान्तः क्रीडा भ्रान्तोऽसिक पत्रक
हे दशरामागच्छ ताताशु सानजः कुलनन्दन
प्रातरिव कृत्वाहार तद् भवान् भोस्तुमीहति
(भाग १०, अ० १५, १६)

२- ब्रज सुन्दरियों द्वारा लाया हुआ भोजन :-

चतुर्विधं बहुगुणायत्रमादाय भाजनैः
अभिसत्सुः प्रियं त्वरिः समुद्रमिव निम्नगाः
(१० स्क० २३ अ० १८ २०)

३- वान्य भोजन :

निर्विश्य भगवान् रैमे कन्दमूलं फलाक्षतः ।
तथ्योदनं समानात्तं शिलायां सलिलान्तिके ।
संभोनायेर्बुभुजे गीपेः संकषिणान्विताः ।

५- अनीसुर अथवा उत्थापन :

भाजनोपरान्त कृष्ण दोहरे को शयन करते हैं । इस विग्राम शयन से जगाना उत्थापन कहलाता है । इसमें भोग भी लगता है और अखण्ड भगवान् को फल फूल भेंट किये जाते हैं फिर कृष्ण गायों को बटोरने लगते हैं और छह लौटने को तैयार करते हैं और सब ग्वाले बांसुरा बजाकर कृष्ण से हो गारं घिरवाते हैं ।

गैया गई दूर टेरी जु कान्ह ।
जो ऊँचे टेर सुनओ तन नदुरंगां भरे जान ।
वृन्दावन में चरत हरित तून चोकि चमकि टेर परि कान ।
दूध धार धरनि जाँवत आई गोविन्द प्रभु जहाँ कैरत कमल मु . पान ।
(गोविन्द स्वामी)

घर लौटते समय उनका गोरज मंडित रूप देखने के लिए जारा गोमियां अपने घरों दरवाजों पर खड़ी हो जाता है । कहा जाता है कि यह अन्तरंग मित्रों का हो समय होता है । यह ठाकुर जो के विग्राम और मध्याह्न का समय है । भागवतकार ने कहा है -

स्वचित् पल्लव तल्पेषु नियुद्ध समकण्ठितः
वैष्णमूलान्नमः शैति गोपोत्संगोपहृष्टः ।
पादं ज्वलनं चक्षुः केचित्त्रय मलत्पनः ।
अपरे हस्तमाप्यानी उंजनीः समवाज्यनः ।

६ भोगी :

धर जानै पर कृष्णाची कुएँ समय खेलै कुदेन के परचात् संध्या का भोग अपित किया जाता है । कृष्णा के देखनेके लिए नन्द उतर पर गोपियों को भोड़ ला जाता है । गोपियों के इस व्यवहार पर रोहिणो बाहर निकल कर कटाक्ष करतो :-

जैत है रो मोहन अब जिनि जाओ तिवारो ।
 सिंह पोरि से फिर फिर आवत नरजो ही साँवरो ।
 रोहिनी आई निकसि ठाढ़ा भई दै दै आर मुख जारो ।
 तुम तसनि जोबन नदमाता ऐसा देखन हारो ।

कौउ गावत कौऊ लरजति आवति कौऊ वजावत तारो ।
 कुंभनदास प्रभु गोवर्धन घर अबहि बैठे थारो ।

इस भोजन में फलादि का भा मिश्रण रहता है -

भागवतकार के अनुसार -

श्रादामा नाम गोपालो राम केशवयोः उखा
 सुल्ल स्लेकः कृष्णायाः गोपाः गोपा प्रेम्णोदयजुष्मान् ।

० ० ० ० ० ० ० ०

फलानि तत्र भूरिणि मत्सन्त पतितानि च ।

अथतालफलान्यादन् भुष्या गत साध्वताः ।

(१०, १५, २८ - ४१)

७- संध्या आरतो ?

भोगोपरान्त कृष्णा का संध्या आरता दी जाता है । इस समय मंदिर में काफी धूम धाम होता है । रत्नजाटत कंचन थार में अगस्त चंदन

आदि मिलाकर दोप अज्या जाता है फिर आरता उतारा जाता है -

रतन जटित कंचन थार गधि सीधे ।
 दोपमाल आर आदि चन्दन सी अति अगन्ध मिलाई ।
 घनन घनन घंटा भीर कनन कनन फालर फकीर ।
 तत थैल्य बोलति ब्रज का नारि जुलाई ।
 तनन तनन तान भान लेति जुनति सु बंधान ।
 गोपि सब गावति हैं मंगल बघाई । (चतुर्भुजदास २८४)

भागवतकार के शब्दों में दक्षिण -
 तं गौरजध्वारत कन्तल बद्ध बहै ।
 वन्य प्रसून रुचिरेखाणा चारु हासमु ।
 वैष्णु कृष्णान्तमनुगैरनुगोतं कोतम् ।
 गोप्येद्धितात दृशोअभ्यगमन् समेता । १० स्क० १५ अ०, ४२ श०

८- इसके बाद भगवान को जुला दिया जाता है -

सोविश्य वर स्वामां जुलं जुष्टुपतुब्रजे ।

पुष्टिमासी में वन्दगोप सुत हो परमाराध्य और उर्व्य हैं । उन्हीं का यह सेवाक्रम है । द्रुजप्रति में नित्य लीला करे वाले कृष्णको यहाँ यथा देहे तथादेवे सेवा है । सम्प्रदाय के सर्वेक विशेषकर अष्टापा सखा गए इनो सेवा क्रम को लेखकर नित्य नये अनन्त पदों का रचना करते थे । उनके पद नित्य सेवा क्रम के अनुसार भी हैं और वर्णान्तरक्रम से भी ।

नित्य सेवा पदों में - अवसरानुकूल सेवापरक पदों में साक्ष प्रभु का राग सेवा भा उन काव्यों का उद्देश्य था ।

परमानन्ददास जी ने । नित्य सेवापरक ओक पदों का रचना की है ।
 उनको सेवा का विशिष्ट तीसरा प्रन्तः काल मंगला तथा राज भोग रहता था ।

1 फर नित्य सेवा के कुछ पद इस प्रकार से हैं -

१- माप्रभु वल्ल स्मरण :

प्रात उठि करिह ओ लक्ष्मण सुखगामा

२- यमुना जी के पद

३- मंगल मंगल का अनुसरण

मंगल माधो राम उचार

मंगल मंगल ब्रज भुवि मंगल

४- जगायवै के पद

५- कल्ले के पद

६- खण्डिता के पद

७- अंगार के पद

८- ग्वाल के पद

९- पनघट के पद

१०- राजभोग के पद - उष्ण काल और शीत काल जल - जल भोग सब के पद, बीरो के पद, फल फलारी के पद ।

११- आरता के पद

१२- अंगार तथा उत्थापन के पद

१३- जावनी के पद

१४- भोग (व्यंजन) के पद, जारा के पद दूध (धिया) के पद

१५- पौढ़ाहवे के पद स्नान समय के पद कहाना के पद, नित्य सेवा को तीन में

जावत जावधान रखकर परमानंद जो ने सेवा का महत्ता का प्रतिपादन करते हुए उसे मुक्ति के मा अधिक मधुर बताया है -

१- सेवा मदन गोपाल का मुक्ति तु ते पाठा ।

२- ताते गोविन्द नम्र लै गुण गायो ता जी ।

० ४ ० ० ० ०

चरण कमल हित प्राप्ति करि सेवा नरवाही ।

३- यह मीनो यशोदा नन्दन

० ० ० ० ०

चरण कमल का सेवा दाजे दीऊ जन राजत विधुलता घन ।

परमानंद जो में हमें भागवतगदस्त षाडंग सेवा साधना मो मिलतो है ।

श्रीमद्भागवत में सेवा छः अंग बताए हैं ।

है पूज्य भगवान आका सेवा के छः अंग है -

१- नमस्कार

२- स्तुति

३- समस्त कर्मों का समर्पण

४- सेवा पूजा

५- चरण कमलों का चिन्तन

६- लोला कथा का श्रवण

परमानंद जो के काव्य में उपर्युक्त षाडंग सेवा निम्नलिखित प्रकार से आरंभ है -

१- नमस्कार - चरण कमल, बन्दी जगदाश के जे गोधन संग धार

२- स्तुति - पदम धारियो जन ताप निवारन

३- समस्त कर्मों का समर्पण

हो नन्द लाल जना ना रहूँ ।

मनसा वाचा कर्मणा हित को तो सो कहूँ ।

यह तन अर्पण हरि को कीजौ वह कष्ट सुख कहाँ लहूँ ।

परमानंद मदन मोहन के चरण सरोज गहूँ ।

४- सेवा पूजा :

यह मागी गोपा जन वल्लभ

मानुषा जनम और हरि सेवा ब्रज वासिणी मोहि दाजे दुल्लभ

५- चरण कमलों का चिन्तन :

यह मार्गों संकषिण वोर
चरण कमला अनुराग निरन्तर भाव मोहि भक्तन को भार ।

६- लोला कथा का श्रवण :

श्री भागवत श्रवण सुनि चित ,
इन तजि चित कहूं अनत न लाऊं ।

उपर्युक्त षाडंग सेवा वल्लभ साधना के अतिरिक्त परमानंददास जो ने भक्ति वृद्धि के लिए सभी सम्भव उपायों का अवलंब लिया है । उन्होने यमुना स्तुति, गंगा स्तुति और गंगा स्नान में बड़ी आस्था प्रदर्शित की है ।

प्रभु प्राप्ति का सफल पुष्टिमागीर सेवा :

व्यावहारिक क्षेत्र में आचार्य जा के आदेशानुसार जीव को अपने समस्त अहं से पूर्ण अपनी समस्त क्रियाओं अपना अन्तःकरण धर्म तथा अन्य सुखों को प्रभु के सुखार्थ समर्पित कर दे । पुष्टिमागीर की दीक्षा लेते जीव ब्रह्म के साथ यह निश्चय करता है कि परब्रह्म शोकृष्ण जा मेरे एकमात्र आश्रम स्थान है । इस परब्रह्म प्रतीक्षा के उपरान्त वह स्वयं को शोकृष्ण का दास घोषित करता है । वह अपनी अहंता-ममता तथा विषय वासनाओं से शोकृष्ण को समर्पित कर है । ऐसे निश्चल निष्कपट वैष्णव को किसी सेवा स्वरूप का सेवा सौंप दी जाती है और वह अपना सम्पूर्ण जीवन अपने श्रेष्ठ को पूजार्थ ही बिता देता है ।

आचार्य ने अपने सिद्धान्तों को संक्षिप्त सुवाच्य बना कर अपने षोडश ग्रन्थों में संग्रहित किया है । तृतीय स्थान सिद्धान्त मुक्तावली है । यह ग्रन्थ यथा नाम तथा गुण है । इसमें आचार्य जी ने अपने मूल सिद्धान्तों का विवेचन किया है । आचार्य इस ग्रन्थ का प्रारंभ करते हुए कहते हैं -
‘नत्वा हरि प्रवत्स्यमि स्वसिद्धान्तं विनिश्चयम् अथत् (शोकृष्ण) को नमस्कार करके अपना विवेक पूर्ण निश्चय किया हुआ सिद्धान्त कहता हूँ ।

‘शोकृष्ण सेवा सदा कायार्थमानसोत्ता परामता’

अथत् शोकृष्ण को सेवा सदा करनी चाहिए वह मानसा सेवा सर्वोत्तम और फलरूपिणी माना जाता है । पुष्टि वैष्णव का फल मानसा सेवा के सिद्धि ही है । षोडश ग्रन्थों के पंचम पुष्प सिद्धान्त रहस्य में भी वल्लभ का कथन है -

‘शेवकानां यथालोके व्यवहारः प्रसिद्धयति ।

तथा कार्यं जनष्येव सर्वेषां नतत गतः ॥

अर्थात् लोक में सबकी का व्यवहार जिस प्रकार सिद्ध या सम्पन्न होता है , उन सर्वसम्पन्न करके ही सेवा कार्य करना उचित है क्योंकि सेवा करने

ये हा जगको ब्रह्मसा सिद्ध होता है । अपने ग्रन्थ नवरत्न के अष्टम् रत्न आचार्य जी अपने गुरुदेव का आज्ञानुसार प्रभु सेवा करने को सेवा करने का आदेश देने के साथ हा करते हैं। किन्ता समय प्रभु को इच्छा है उसमें किसी प्रकार को बाधा आ जाय तो कोई बात नहीं । वैष्णव को देव अपने चित्त को सेवा परायण रखना चाहिए । निरत्नम् के पश्चात् अन्तःकरण प्रवीण ग्रन्थ है । इसमें आचार्य जी ने सेवा पर हा बल दिया है । १ विवेकध्याय निरूपण २ में आचार्य का स्पष्ट कथन है, हम लोक के तीर परलोक के उत्तम कार्यों में भ्रा हरि को हा शरण आश्रय है । उपरोक्त कथन में भ्रा हरि का शरण ग्रहण करने का जग तात्पर्य सेवा से ही है । श्रीकृष्ण भू भ्रूत्रोत् के पश्चात् षोडश ग्रन्थों को लड़ी में चतुःश्लोका का स्थान है । इसके आरंभ में भ्रा वल्लभ के आदेशानुसार श्रीकृष्ण का हा भजन करने अथवा सेवा के योग्य है । इस ग्रन्थ में आचार्य जी ने केवलत्वार श्लोकों में ही अपने समस्त सिद्धान्तों का सार भरा है । अक्षयवर्णं भक्तवर्धनो में आचार्य जी का कहना है -

१ सेवायां वा कथायां व यस्यासक्तिदृढाभवेत् ।

अर्थात् भगवत सेवा या भगवत कथा में जिनको जो न पर्यन्त दुः आसक्ति रहती है उनका कहीं भी नाश नहीं होता । निरोध लक्षणा ग्रन्थ में आचार्य वल्लभ निरोध का एक मात्र साधन भगवत सेवा बताते हैं । उनका कहना है कि जिस इन्द्रिय का भी हरि सेवा में उपयोग नहीं होता उसे निग्रह अथवा निरोध करके अवश्य हो उसे भगवत कार्य में लगाना चाहिए । षोडश ग्रन्थों के अंतिम पुष्प सेवा फलम में आचार्य वल्लभ ने सेवा में उगे स्व भोग को बाधक बताते हुए पुष्टिमाग्यि सेवा का फल भा सेवा हा बताया है । अपने तत्त्वदर्पानिबन्ध २ में आचार्य ने सेवा पर हा बल दिया है - अक्षयवर्णं भक्तवर्धनं जैसा कि इस श्लोक से स्पष्ट है -

एक शास्त्रं देवकापुत्रोत्तं, एको देवः देवकापुत्र एव

मन्त्रोप्येकस्तस्य नामानिधानं, कर्मोप्येकं तस्य देवस्य सेवा

१- निरोध लक्षणा श्लोक सं० १६

२- तत्त्वदर्पानिबन्ध शास्त्रय प्रकरण, श० सं० ४

अर्थात् श्रीकृष्णकृत श्रीमद्भागवत गाथाभा एक मात्र शास्त्र है। देवकी पुत्र श्रीकृष्ण ही एक मात्र ज्ञाता व्यक्त हैं, उनका नाम ही मात्र मंत्र है एवं श्रीकृष्ण को सेवा ही एक मात्र कर्तव्य है। पुष्टि प्रवाह मयादा में आचार्य जी का कहना है कि वास्तव में पुष्टिमागयि जोव सबसे भिन्न है और यह सृष्टि श्रीकृष्ण सेवा के लिए ही बनाई गई है। अतः इसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। पुष्टिमार्ग के अन्य आचार्यों ने सेवा भावना पर बल दिया है। गौ० हरिराय जी ने अपने साहित्य में सेवा पर ही पूर्णतः बल दिया है। उनके कथनानुसार सेवा में मन को स्थापित करना एवं भगवत् सेवा को साधकता से ही गृहस्थाश्रम भी करना चाहिए।

भजनं भावस्वरूप भावनैवापद्यते ,

चेतस्तत्प्रवर्णां सेवा ह्यत एव निरूपिता ।

अर्थात् श्रीकृष्ण को सेवा भावना से ही सिद्ध होती है। इसीलिए आचार्य जी ने सिद्धान्त मुस्तावलो में प्रभु में चित्त विलीन होने के भाव को सेवा कहा है। अपने २२वें शिक्षाव्रतमें गौ० हरिराय जी के कथनानुसार -

भोवोअत्र साधनं मणीं प्रमेयं भगवान् हि सः

प्रमाणं कृष्ण सेवादी (सेवादिः) स एव च फलं पुनः ।

अर्थात् पुष्टिमार्ग में भाव ही साधन है, प्रमेय स्वयं भगवान् हैं और श्रीकृष्ण को सेवा प्रमाण रूप है और यही सेवा पुनः फल रूप है भा है। श्री गौपेश्वर जी ने अपनी टीका में श्रीमद्भागवत पुराण के प्रमाण प्रस्तुत करके पुष्टि-मार्ग में वैष्णवों के लिए भगवत् सेवा को साधन बतलाया है। पुष्टिमार्ग में सेवा स्वरूप को सेवा के प्रमुख तीन रूप हैं - (१) राग (२) भोग एवं (३) श्रृंगार। इस राग का तात्पर्य कीर्तन सेवा से है। इस मार्ग में कीर्तन सेवा का स्थान उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि सेवा स्वरूप को श्रृंगारादि सेवा का महत्व है। अष्टांग का स्थापना इसी कीर्तन सेवा को मुख्यस्थित

करने के लिए का गई था । अष्टाध्यायी कवियों का साहित्य हिन्दी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है । उपरोक्त कथन के उपरान्त हम पुष्टिमार्ग के एक और नाम से विभूषित कर सकते हैं , वह नाम है ' सेवा मार्ग ' इस मार्ग में शुभ प्रेम ही भाँक्त है । इस प्रेम लक्षणा भक्ति में भजनानंद ही फल है एवं भजनानंद ही साधन है -

हे यथार्थ ज्ञानियो भगवातत्कृष्ण का वर्णन करने स्ताताओं
(स्तुति करने वाली) कृतस्य नाम देववाणी (सत्यवाणी वेद) के उत्पादक स्थान रूप (प्राकृत्य स्थान रूप) परमात्मा हो (वेद परमात्मा का विश्वास रूप माना जाता है , अतः यह परब्रह्म परमात्मा ही वेद का उत्पादक स्थान है) को सम्पूर्ण जन्म सुख विचार कर सेवा करो । जब किसी व्यक्ति का सुख विचार कर सेवा की जाती है तो उसमें प्रेम भाव एवं रागात्मिका वृत्तियों का होना भी आवश्यक है । इसी सेवा पुत्र भाव या प्रिय भाव या सुखाभाव से हो का जा सकता है । आचार्य बल्हम के अनुसार वेद, गाथा, ब्रह्मसूत्रादि के जो प्रमाण वाक्य अस्पष्ट रह जाते हैं उनका विशद विवेचन धामद्विनागवत में मिल जाता है । इस कृष्ण में ऋषि अनेको विशेषतारं हैं - (१) उनके देवाता विष्णु हैं जो श्रृङ्खला के स्वरूप समझे जाते हैं । वेदों में भक्ति पूर्ण कृतारं प्राप्त होता है उनमें अधिकांश विष्णु तथा इन्दु से ही संबंधित हैं । सबसे बड़ा महत्व कृष्ण शब्द में भजामहे का है । जिसका निमित्त भज धातु से हुआ है । भज से भजन बनता है जिसका अर्थ आचार्य ने सदैव सेवा के अर्थ में लिया है । कृष्ण का सर्वत्र सेवा भावना के फल स्वीत में प्रस्तुत किया जा सकता है । इस कृष्ण में कृष्ण का कथन है कि जिस प्रकार एक पतङ्गता नारा अपने प्रिय का सेवा करता है उसी प्रकार कृष्णों तथा देवों का भजन करो । इस कृष्ण में कृष्ण के कथन के मूल में पति भाव से का जनि वाला पुष्टि भागीय सेवा का आनास मिलता है । एक पत्नी अपने पति का सेवा निष्काम भाव से करता है । पुष्टि सम्प्रदाय में गोपियों का सेवा श्रम भाव का है । ऋग्वेद के प्रथम जुवाक के १२वें अध्याय के ६२वें सूक्त का १२वाँ कृष्ण में हमारा भावनाका उक्ति दिखाई देता

है । कृष्ण का कथा है कि -

अनायुवोः नमसा नव्योर्जैर्विषयोमतयो दस्मदुः

पातं न पत्नाकशतो रुशन्तं स्पृशान्ति त्वा श्वासावन्यगावा

अर्थात् हे अद्भुत कमर वाले प्राणान् धर्मों की इच्छा से अभिनव स्तोत्रों के साथ कृष्णगण आप को शान्त करते हैं । सेवा इस भक्ति का यययिही सुबोधिता आचार्य के कथनानुसार 'भजन सेवैव भक्तियो इति तस्मैव वक्ष्ये नाम' अर्थात् भजन का अर्थ सेवा है जो भक्ति योग इसका नाम है । ब्राह्मण का भक्ता ही आचार्य ने भक्ति का अज्ञात है । इस मार्ग में भगवद्गुह हो साधन है एवं भगवद्गुह भी वही फल है । यही फलात्मक भक्ति पुष्टि भक्ति है या कहिए पुष्टि मार्ग है । इसमें भगवान् ही साधक एवं भगवान् ही फल माने गए हैं ।

तृतीय अध्याय

तनुजा के प्रकार और स्वरूप :

- (१) व्यावहारिक
- (२) ललित
- (३) संगीत-कीर्तन

तृतीय अध्याय

तनुजा के प्रकार और स्वरूप

स्वरूप सेवा का सांगोपांग वर्णन पुष्टिमार्ग में किया गया है । इस मार्ग के अनुसार सेवा तीन प्रकार की होती है - तनुजा, वित्तजा तथा मानसो । तनुजा तन से की हुई सेवा, वित्तजा धन से की हुई सेवा तथा मानसो मन से की हुई सेवा । अन्तिम अर्थात् मानसो सेवा विशेष महत्वपूर्ण है । इसमें भक्त की समस्त इन्द्रियां तथा वृत्तियां श्रीकृष्ण के रंग में रंग जाती हैं । उसे संसार का अपने संबंधियों का किसी का ज्ञान नहीं रहता । तनुजा तथा वित्तजा सेवा का महत्व है क्योंकि इन्हीं के द्वारा अंतिम सेवा को प्राप्ति किया जा सकता है ।

वित्तजा सेवा में धन के अभाव में मंदिर का निर्माण तथा समस्त प्रबन्ध होना कठिन है । तनुजा सेवा द्वारा धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प चयन, भोग, स्नान, चंदन, तेल आदि का कार्य तनुजा सेवा के प्रकार व्यवहारिक में आता है । प्रति दिन के आठों पहर को सेवा व्यवहारिक में ही आती है जैसे मंगला, भृंगार, ग्वाल, राज भोग, उत्थापन, भोग संध्या आरती, शयन ये सारा सेवा तनुजा सेवा कहलाता है तथा इन्हीं की व्यवहारिकता का रूप है अंकित है ।

तनुजा सेवा के द्वारा सौन्दर्य बोध की तृप्ति के साथ बाह्य चेतना का विकास होता है । व्यक्तित्व का बहिर्मुखता अन्तर्मुखता होने लगती है -

स्वामी हरि पर आत्मा तन मन इन्द्रो दास
अहं ओट दरसै नहां रहे निरन्तर पास ।^१

इन सेवाओं द्वारा कृष्ण में अपने आप की तन, मन तथा समर्पित कर देना -

सर्वं सेव हिज युगर वर सेवक सब ना नारि ।
गृह मन्दिर मंदार धन रसानंद आकारि ॥^१

जोवन के व्यसनों को भगवान व्यसन बना डालना स्वयं में उच्च साधना है । प्रभुदयाल मोतल जो के शब्दों में, 'नित्य और वषाँत्सव दोनों प्रकार की सेवाविधियों के तीन अंग मुख्य हैं - श्रृंगार, भोग, रोग । प्रत्येक व्यक्ति इन तीनों सांसारिक विषयों में फँसा हुआ है । उससे छुटकारा पानेके लिए वल्लभाचार्य जो ने मनुष्यों के सन्तान सेवा विधि का सिद्धान्त रखा । लोगों को इस सिद्धान्त के द्वारा ईश्वर को और उन्मुख करने में पर्याप्त सफल रहे । उनके इस मत का प्रचार काफी दूर दूर तक फैल गया ।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में तो सेवा दो ही प्रकार को माना गई है - प्रकट तथा अप्रकट (तनुजा, विराजा) । प्रकट सेवा स्नान तथा धन से की जाती है और अप्रकट सेवा अंतरंग मन से । प्रकट सेवा के बिना अप्रकट सेवा नहीं हो सकती क्योंकि वह प्रेम के सुदृढ़ होन पर ही सम्भव है और यह प्रेम प्रकट सेवा द्वारा पनपता तथा दृढ़ होता है । आन्तरिक पूजा के लिए बाह्य पूजा आडम्बर को आवश्यकता होती है ।

प्रगट भाव की नोम दृढ़ कीजे कृपा मनाइ ।
तब निश्चल हित महल रस रहै चित ठहराइ ॥
प्रगट सेवा निना चित न आवै प्रेम ।
प्रेम निना दरणी नहाँ नित्य केलिन नैय ॥^२

१- बुधमीबोधिना, पृ० १३

२- वरि, पृ० ५०

वेदाः श्रोतृष्णा वाक्यानि व्यास सूत्राणि चैव हि,
समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ।

सेवा इस भक्ति योग का पर्याय है । सुबोधिनो में आचार्य के कथनानुसार 'भजन सेवैव भक्ति योग इति तस्मैत नाम ' अर्थात् भजन का नाम सेवा है और भक्ति योग इसी का नाम है । श्रीकृष्ण को सेवा की ही आचार्य ने भक्ति का संज्ञा दी है । इस ऋषि मार्ग में भगवद्गुह हो साधन है, एवं भगवद्गुह हो साधन हो साधन एवं भगवद्गुह हो फल है । यहाँ फल-तत्त्वक भक्ति पुष्टि भक्ति है, पुष्टि मार्ग है । इसमें भगवान ही साधन एवं भगवान ही फल माने गये हैं ।

श्री आचार्य ने अपने प्रत्येक सिद्धान्त को प्रमाण चतुष्टय से सिद्ध किया है जिससे किसी प्रकार की समस्या न उठ खड़ी हो । अतः पुष्टिमागीय सेवा भावना के मूल श्रोत ये प्रमाण ग्रन्थ रहें होंगे । इन प्रमाण ग्रन्थों का निर्धारण करने के साथ-साथ श्री वल्लभ जो ने एक महत्वपूर्ण मत का प्रतिपादन किया । वेदों के संदेहों का निवारण श्रीमद्भागवत गीता में प्राप्त होगा, गीता के संदेह का निवारण ब्रह्म सूत्रों में एवं ब्रह्म सूत्रों के संदेह का निवारण श्रीमद्भागवत पुराण में उपलब्ध होगा । सुबोधिनो में आचार्य के कथनानुसार , ' भगवत् तु वैष्णवी वेदः ' अर्थात् भागवत वैष्णवी के लिए वेद स्वरूप है । भागवत में भागवतकार का कहना है कि भागवत स्वयं वेदों का सार है । सुबोधिनो में आचार्य जो ने अपने सिद्धान्तों एवं मान्यताओं का विस्तृत उल्लेख किया है । वल्लभाय दर्शन पुष्टिभक्ति अथवा पुष्टिमागीय सेवा का मूल प्रेरणा श्री आचार्य जो श्री भागवत से हा मिला है । सेवा भावना का सम्पूर्ण ढाँचा भागवत पुराण के सूत्रों पर हा सँझा किया गया है । बहुत से विद्वानों ने वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों को वेदों के विरुद्ध माना है परन्तु ऋग्वेद में एक सूत्र स्पष्ट हो ऐसा उपलब्ध हुआ है जिस पुष्टिमागीय सेवा का मूल श्रोत कहा जा सकता है । ऋग्वेद में विष्णु से संबन्धित ऋक्ओं में एक ऋक्

अत्यन्तमहत्त्वपूर्ण है। इसका दोघीतम कृष्ण विष्णु देवता है एवं त्रिष्टुप
छन्द है। इस कृष्ण में कृष्ण का कथन है -

श्वसु स्तौतारः पूव्यं यथा विद कृतस्य गर्भं जनुषा विवर्तन ।
आस्य जानन्तो नाम चिद्विवर्तन महस्ते विषाणोसुमतिं भजामहे ॥^१

कामना वाले पत्नियों को प्राप्त होने वाले पत्नियों के समान ये स्तुतियाँ
तुम्हें प्राप्त होती हैं। इसका मूल भाव के भा पुष्टिमागोयि सेवा से साम्य
रखता है। इस भावना का विस्तृत विवेचन श्रीकृष्ण मदभागवत पुराण से
ही प्राप्त होता है। कृष्ण जी को अलौकिक लीलाओं का जितना विस्तृत
सरस, सारपूर्ण विवेचन हमें भागवत से प्राप्त होता है उतना किसी अन्य
पुराण से नहीं।

वैष्णव सम्प्रदायों में भागवत का अपना एक विशेष महत्त्व है।
प्रभु प्राप्ति के साधनों में इस पुराण ने भ्रम लक्षणा भक्ति का जिसे इस
निर्गुण भक्ति का नाम दिया गया है प्रमुख साधन बतसाया है। आचार्य
वल्लभ ने पुष्टिमागोयि वैष्णवों के लिए व्यवहारिक क्षेत्र में केवल श्रेष्ठ स्वरूप
को सेवा को महत्त्व प्रदान किया है। आचार्य जी ने सेवा के विषय में
ब्रजवासियों को कृष्ण सेवा को प्रतीक मानकर उसका अनुसरण करने का आदेश
अपने षोडश ग्रन्थों में दिया है। 'सन्यास निणयि' में उनका कथन है -

कीरिडिन्यो गोपिका प्रोक्ता गरुवः साधनं च तत्
भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते ।

अर्थात् इस मार्ग में कीरिडिन्य कृष्ण और गोपिकारं गुरु हैं और
उन्होंने जो साधन किया वही साधन श्रेष्ठ है। इस सिद्धान्त वाक्य के आधार
पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण दशम स्कन्ध का पूर्वाद्ध एवं विशेष रूप से
कृष्ण जी ब्रज लीलाओं का पुष्टिमागोयि सेवा में बहूत महत्त्व है। श्रीकृष्ण के

प्रति ब्रजवासियों के प्रमुख तीन भाव हैं - 'नन्द यशोदादि का वात्सल्य भाव,' 'गोप बालों का सखा भाव,' 'ब्रज बलाओं का प्रेम भाव'। पुष्टि-मार्गीय सेवा पद्धति पर इनका विशेष प्रभाव है। श्री गुरुकुलनाथ जी ने अपनी पुस्तक 'रहस्य भावना' में पुष्टि-मार्गीय सेवा भावना के रहस्यों का उद्घाटन किया है। सेवा में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न उपादानों का भावनाओं का उल्लेख किया है। भावपूर्ण वात्सल्य रस में श्री यशोदा, रोहिणी तथा सखा ग्वाल बाल दर्शनार्थ आते हैं इसी विचार करने ताको स्मरण करने। मंदिर कपार के अन्तर्ध में गोस्वामी जी का कथन है कि मंदिर दो क्वार श्री स्वामी जो के दोऊ नेत्रन के पलक हैं। श्री स्वामी जो आँख खोल हैं तब श्री ठाकुर जी कोफाँकी होय है। पलकन के भीतर ठाकुर जो दमकत है भीतर जाकर यही भाव विचारना रहे अर्थात् मंदिर में आकर दर्शन के अपने मन में इसी भावनाओं रखना चाहिए।

नदालय की भावना से सिंहासन श्री यशोदा माया की गोद के समान एवं वाश्वी तकिर भुजदंड एवं पृष्ठभाग का ताकिया माता के हृदय के सदृश है। इसी भावना से प्रभु का मानसा सेवा करने वाले यशोदात्संग ललित श्रीकृष्ण का साक्षात् स्वरूप प्रकट रहस्य रहता ही तो कोई आश्चर्य नहीं। यही कारण है कि पुष्टिमार्ग में विधि विधानों एवं शास्त्रोक्त प्रणालियों के स्थान पर अविदित स्नेह एवं ब्रजवासियों को भावना पर तल दिया है।

हरिराय जो के अनुसार सेवा दो प्रकार को रीता है - त्याग से और अत्याग से। दूसरे प्रकार को सेवा में मस्त धमनुसार अनाजकत भाव से गृहस्थाश्रम का पालन करता है और यथायोग्य प्राप्त द्रव्य से भगवान का प्रजा करता है। सेवा और पूजा का भेद भा हरिराय जा ने बताया है -

सेवायां लीकिको मुक्तस्तथा स्नेही नियामक
(पूज्यायं तु विधिः स्नेह विरुद्ध इति निरूप्यः।

अर्थात् सेवा में स्नेह के साथ लौकिक मुक्ति से परिचय होती है तथा पूजा शास्त्रानुकूल अर्चना की जाती है इसलिए दोनों में अन्तर है। सेवा का एक अंग गुरु सेवा भी माना गया है। पुष्टि-मागीय सेवा के दो स्वरूप हैं -
 २- तो क्रियात्मक दूसरा भावनात्मक। इस मार्ग में क्रियात्मक सेवा पर पूरा बल दिया गया है।

पुष्टिमागीय सेवा विधि के दो क्रम हैं, नित्य सेवा विधि तथा वर्षात्सव की सेवा विधि। प्रातः काल से शयन तक नित्य सेवा विधि और विशेष अवसरों पर की जाने वाली सेवा की वर्षात्सव की सेवा विधि कहा गया है।

पुष्टि सम्प्रदाय में जो सेवा विधि बताई गई है जो अष्टयाम सेवा में विभाजित है ये सब तनुजा के अन्तर्गत ही आते हैं क्योंकि यह सेवा विधि शरीर से ही सम्पन्न की जाती है। तनुजा का व्यवहारिक रूप भी इसे हम कह सकते हैं। शृंगार आदि मंदिर सजाना व्रषव प्रतिमाओं की मज्जन आदि कराना तनुजा सेवा के एक संक्षिप्त रूप ललित के अन्तर्गत आ सकता है। अब अष्टयाम की सेवाओं का संक्षिप्त प्रस्तुत करते हैं -

१- मंगला :

पुष्टि सम्प्रदाय में प्रातः के उदय होते ही मंगला का विधान है। इसमें कृष्ण के स्वरूप की जाना मंगल भोग कराना तथा मंगला आरतो ये तीनों कार्य अन्य सम्प्रदायों का भांति हो हैं परन्तु पुष्टि सम्प्रदाय में इन कामों की करने समय वात्सल्य का भावना से मन भीतप्रोत रहता है।

पुष्प मालारं गूँथकर ब्रज में बनितारं प्रातःकाल होते ही कृष्ण

१- श्री हरिराय जो वाढःमुक्तावला ४८

के दर्शन का प्रतापता में नन्द भवन आ जाता है, यशोदा कृष्ण के मुख पर से जब वस्त्र हटता तो है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो सागर मंथ के फेन से चन्द्र प्रकट हुआ हो । सूर सागर का एक पद देखिए -

जागिए गोपाल लाल, आँद निधि नन्द बाल ।
जसुमति कहै बार बार भोर भयो झ्यारे ।
नैन कमल दल बिसाल, प्रीति बापिका मराल ।
मदल ललित बदन ऊपर कोटि वारि डारे ।
उगत असन विगत सवरी, ससांक किरन होन ।
दोषक जु मलीन, झीन दुति समूह तारे ।
० ० ० ० ० ० ० ०

सुनत वचन प्रिय रसाल, जागे अतिसय दयाल ।
भागे जंजाल जाल सुख कदंब छारे ।
त्यागे भ्रम कंद छंद, निरखि के मुखारविन्द ।
सूरदास अति अनन्द भरे पद भारे ।

मंगला भाग में कृष्ण कामक्लन, मिथी, दूध, मलाई आदि दिया जाता है वे कुछ खाते हैं, कुछ गिराते हैं कुछ मुँह के लपटाते हैं । ऐसे उन्हें माखन रोटो विशेषा प्रिय हैं परन्तु चोटो ब्रह्म के लिए वह कच्चा दूध तक पाने को तैयार हैं । मंगल भाग के बाद आसतो होती है -

नैन भारे देखी गिरधरन को कमल मुख
मंगल आरतो करी प्रात हा परम सुख
लौचन बिसाल कवि ताज्ये हृदय में धरो
कृपा अवलोकनि चारु प्रकुटोनु रुख ।

१- सूरसागर पद सं० ८२३

२- चतुर्भुजदास पद सं० १४२

श्रृंगार :

श्रीकृष्ण को नहला कर भूषण वस्त्र आदि से श्रृंगार करने को 'श्रृंगार' कहा गया है। कृष्ण सहज ही वश में नहीं आते। नहाने से दूर भागते हैं, कभी रोते रोते धरती पर लोटने लगते हैं। माता उन्हें तरह तरह से फसलाती है परन्तु वे मानते नहीं -

जुमैति जबहि क्यूँ न्हावन, रोइ गर हरि लोटत रो ।
 तेल उबटनी ले आगे धरि, लालहि चोटत पोटत रो ।
 मैं लखि जाऊँ न्हाउ न्हाउ जनि मोहन, कत रोवत बिनु काजि रो ।
 पाछे धरि राख्यो उपाइ कै, उबटन तेल स्याजि रो ।
 महरि बहुत विनती करि राखति, मानति नहीं कन्य्या रो ।
 पूर स्याम अति विरुक्कानि, सुर-मुनि अन्त न पैया रो ।^१

किसी प्रकार उन्हें नहला कर रंग विरंगे वस्त्रों से उनका श्रृंगार किया जाता है। अंख में काजल तथा दिठौना लगाया जाता है। कृष्ण का रूप ध्यान भक्ति का अनिवार्य अंग है। इस रूप ध्यान में श्रृंगार सहायक होता है।

३-ग्वाल :

श्रृंगार भागे तथा ग्वाल भाव से धिया आरोगना, ग्वाल के अन्तर्गत आता है। ऐसे पदों में कृष्ण का बाल फूँकोड़ा भी वर्णित है। कभी कृष्ण छत पर पतंग उड़ाते हैं कभी वह डोर खींचते हैं या गोपियों का मन, इसका निणयि करना कठिन हो जाता है। कृष्ण का सिलीना खेलना भी रहस्यमय संकेतों से भरपूर है -

आज लाल खेलत जुरंग सिलीना ।

काम शब्द उघटत है पपाहा यो मधुर मिलीना ।

प्रन घुमड़े लेत फिरको फूँकना मनहि सलीना।
परमानंद ध्यान भातन वस ब्रज केर तिरौना फिरौना ।^१

ग्वाल में धिया आरोगना महत्वपूर्ण है । प्रातःकाल यशोदा दही मथ कर
कृष्ण वलराम को धिया पिलाती है । कृष्ण नाचते कूदेत प्रसन्न होते हैं -

नन्दरानी मथि प्यावत धिया ।
बल मोहन खेलत जांगन में सुनत अवानक धिया ।
नाचत हंसत करत किलकारी उर आनन्द बढ़िया ।
फूँकि फूँकि पय पीवत कमल मुख अरस परस दाऊ धिया ।
बाल विनोद सुर, नर, मुनि मोहे जोग ध्यान बिसरैया ।
'गोविन्द' प्रभु पिय वदन चन्द को जसुमति लेत बैलिया ।^२

ग्वाल के बाद कृष्ण सखाओं सहित गोचरण के लिए चले जाते
हैं । काल में ही राजभोग का समय होता है -

४-राज भोग :

यशोदा वन में किसी ग्वालिन के हाथ अपने प्रिय पुत्र का भोजन
जिसे छाक कहते हैं भेजती है, इसी छाक का राजभोग के नाम से पुकारा जाता
है । इसी छाक में भांति भांति के व्यंजन होते हैं । छाक खाने में ही कृष्ण जो
भैरो भाव पूर्ण रूप से प्रबल हो जाता है । इसको अभिव्यक्ति का पूर्ण रूप
यहाँ प्रकट हो जाता है । किसी पहाड़ी पर चढ़कर कृष्ण अपने सभी सखाओं
को जुकारते हैं और सबको छाक बाँटते हैं । कनो किला का जूठा खोनकर खाते
हैं कभा किसी का -

हंसत परस्पर करत किलौल ।

विंजत अये अरार मोहन मोठे कनल वदन के गोल ।

१- परमानंद आगर, पद सं० ६५१

२- गोविन्दस्वामी, पद सं० २८१

तोरे पलास पत्र बहुतेरे पनवारी जीयों विस्तर ।
 चहुँदिसि बैठी ग्वाल मंडली जैवन लागे नन्द कुमार ।
 ० ० ० ० ० ०
 सेस प्रसाद रह्यो जो पायो परमानंददास हो संग ।^१

५- उत्थापनः

भोजन के उपरान्त कृष्ण शयन करते हैं । इस विव्राम शयन से उन्हें जगाना उत्थापन कहलाता है । उत्थापन में भोग भी लगता है जिसमें उन्हें फल आदि भेंट किए जाते हैं । उत्थापन के शेष में श्रीकृष्ण गारं नटोर कर ब्रज लौटने की तैयारी करते हैं । सखाओं से गारं धरे नहीं धिरता परन्तु श्रीकृष्ण की वंज्ञी को टेर सुनते ही प्रेम के वशीभूत होकर वे भागी चला आते हैं । सारे सखा कन्धिया से हो गारं धिरवाते हैं -

गैया गई दूरि हेरो जु कान्ह
 जो ऊंचे टेर सुनावो सब बदरेगो मेरे जान
 वृन्दावन में चरत हरित तून चौंकि चमकि टेर परो कान^२
 दूध धार धरनी संचित आई गोविन्द प्रभु को जहाँ करत
 कमल मुख पान ।

वन से आते हुए गोरज से धूसरित श्रीकृष्ण को श्राव देखने के लिए गोपियां अपने घरों के द्वार पर खड़ी हो जाती हैं ।

६- भोग :

घर आने पर श्रीकृष्ण की उंध्या का भोग अर्पित किया जाता है । भोग ग्रहण करता हुई श्रीकृष्ण का श्राव को निहारने के लिए नन्द भवन में भाड़

१- परमानंद आगर, पद सं० ६५१

२- गोविन्द स्वामी, पद सं० ३३६

लग जातो है । तब रोहिणी उन्हे बरजती है -

रोहना आरु निकासि ठाढा भई है दे आडि मुख सारी ।
तुम तरुनो जीवन मदमातो श्यो जु देखन हारो ।
कोउ गरजत कोउ तरजत आवति कोउ बजावत तारो ।
कुंभनदास प्रभु गोवर्धन-धर अवहि बैठ थारो ।^१

७-अंध्या आरतो :

भोग के उपरान्त कृष्ण को संध्या अवलोकन आरता हीतो है, जो बड़े धूम-धाम से का जातो है । रत्नजटित कंचन-थाल में चंदन आदि मिलाकार दोषसजाया जाता है। घंटा, कालर आदि वाद्यों तथा प्रतिपगो गोपियां के कंठ स्वर सहित आरतो उतारो जातो है । एक उदाहरण देखिए जिसमें अंध्या आरतो का संजोव हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है -

रत्न जटित कनक-थार मधि तोह ।
दोपमाल आर आदि चन्दन जो अति सुगंध मिलाई ।
घनन-घनन घंटा घोर, कनन-कनन कालर ककोर ।
तत थई थई बोलति ब्रज का नारि सुलाई ।
तनन-तनन तान लेति जुषति सुर-बन्धान ।
गोपा सब गावत हैं मंगल बधाई ।
चतुर्भुज प्रभु गिरधर लाल, आरतो लो रसाल ।
तन मन धन वारति है अब जसोमाति नन्दराई ।^२

८- शयन :

अंध्या आरता करके कृष्ण को रात्रि का भोजन कराया जाता है

१- कुंभनदास, पद सं० २०७ १८३

२- चतुर्भुजदास, पद सं० २८४

जिसे व्यास कहते हैं। इसके बाद उन्हें पर्यंक पर तुला दिया जाता है। शयन के समय यशोदा का कहानी कहना और कृष्ण का हुंकारी भरते हुए निद्रालीन हो जाना, वात्सल्य का विशेष भाव स्थल है। कभी-कभी कृष्ण कहानी को बालों का ध्यान कर निद्रावस्था चौककर उठक बैठते हैं और यशोदा उन्हें वात्सल्य से पूर्ण स्नेह थपकी देकर पुनः सुला देती है। कृष्ण के सो जाने पर यशोदा वात्सल्य ध्रम से विभर होकर सारे दिन को थकान अनुभव करके अपने पुत्र का शरीर सहलाती है और कभी-कभी निद्रावस्था के मुख कृवि को निहार कर अपने लाल का मुख चूम लेती है।

इस प्रकार छु तनुजा सेवा-स्वरूप हमने ऊपर वर्णित किया जो वास्तव ईश्वर प्राप्ति का साधन है तथा मानसी सेवा का पूर्वार्ध है। इसी में कीर्तन सेवा को भी पर्याप्त महत्त्व है जिसका वर्णन किया आगे किया जायेगा। सबुद्धा सेवा के द्वारा ही हम भगवान की तथा अपनी दूरी को समाप्त कर संसार के माया मोह राग-द्वेष आदि से छुटकारा पा सकते हैं।

संकोचीन-

आज चारों ओर अज्ञान का अंधकार है। इसी घोर अंधकार में संसार के मानव शान्ति को खोज करना चाहते हैं तथा आन्तरिक अंधकार में वे शाश्वत सुख का अन्वेषण कर रहे हैं किन्तु उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हो रही है। ऐसी स्थिति में इसका उपाय जानने की जिज्ञासा स्वाभाविक है। गोस्वामी तुलसीदास जो ने इसका बड़ा पुन्दर उपाय बताया है-

राम नाम मनि दोष धरु जह जहि देहरी डार ।

तुलसी भोतर बाहरैहूं, जाँ चाहसि उजिआर ॥

अर्थात् यदि तुम भीतर और बाहर दोनों ओर प्रकाश चाहते हो तो रामनाम रूपी मणि को इस शरीर के रसना रूपी द्वार पर रख लो ।

वास्तव में देखा जाय तो ईश्वर का नाम मनुष्य संसार के बंधनों से मुक्त कर सकता है। बहुत से ऐसे उदाहरण हमारे सामने हैं- हिरण्यकशिपु ने भक्त प्रह्लाद की प्रज्ज्वलित अग्नि में फेंक दिया पर हरि कृपा से उसका बाल बाँका नहीं हुआ तब पिता की बड़ा आश्चर्य हुआ । आश्चर्य में मान पिता की देखकर प्रह्लाद ने कहा-

रामनाम जपतां कुतामयं सर्वतापशमनैकभेषानयं

पश्य तात ! रूप गात्र सान्निधी पावकेपिसलि लायसे अधुना ।

पिताजी ! भावनाम का जप करने वालों को भय कहां ? क्योंकि वह सब प्रकार के तापों का शयन करने के लिए एकमात्र औषधि है । आप स्वयं देखिए मेरे शरीर के सामीप्य में आकर आज अग्नि भी जल के समान शीतल हो गई है।

आज जब चारों ओर संसार में हाहाकार मचा हुआ मानव भयंकर रोगों से आक्रान्त होकर पीड़ित हो रहा है तब क्यों न 'सर्वताप शयनैक भेषाज्य' का प्रयोग किया जाय । संसार की कोई भी इंजेक्शन , कोई औषधि, कोई रसायन इस नाम संकोचने रूपी दिव्य रसायन के सम्मुख नहीं ठहर सकता - किसी ने कहा भी है-

इदं शरीरं शतसंधि जरीं पतत्यवस्यं पठोपदिष्टं परिणापि पेशलम्।

कियोषधिः विलेश्यसि मूढ दुर्भैशनिराम्यं कृष्ण रसायनं पिब ॥

मनुष्य इस जन्म के पूर्व जन्म के पापों का उदय होने पर संसार विभिन्न रोगों से आक्रान्त होता है तथा विभिन्न कष्टों की फीलता है। यदि किसी युक्ति से इन पापों का नाश हो जाय तो जोव इन कष्टों से बच सकता है । श्रीमद्भागवत में इसका बड़ा सुन्दर उपाय बताया गया है-

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यत्नन्दनं यच्छ्रवणं यद ह्येषम् ।

लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषाणां तस्मै युमद्व्रजस्य नमो नमः ।

हमारा उन सुन्दर यश वाले भावान् को प्रणाम है जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वंदन, श्रवण एवं पूजन लोक के रूपों को नष्ट कर देता है। इस सब में भी भावनाम संकीर्तन एवं नामस्मरण। इतना सरल उपाय होने पर भी हमारा दुर्भाग्य है कि हम भावान् का नाम नहीं लेते। भावान् उसी घुमी को अपने हृदय में उच्च स्थान देते हैं जिसकी यह दशा हो ।

भय गुन गावत पुलक सरीरा, मृदगद गिरा नयन जल नीरा
काम आवि भय दंभ न जाके, तात निरन्तर बस मैं ताके ।

इस प्रकार अष्टछाप में भी कीर्तन पर जोर दिया जाता था। अष्टछापों कवियों के भावत्कीर्तन के समय बंध हुए थे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कीर्तन की परम्परा पुष्टि सम्प्रदाय में जोर पकड़ चुकी थी ।

कीर्तन का सुख धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जप, तप आदि सुखों से बढ़कर है-

जो सुख होत ब्रह्मपद गोपालहि गार ।
सो सुख होत न जप तप कीर्तन, कोटिक तोरथ न्हार्यं ।
दिर लेत नही चारि पदारथ, चरन कमल चित लार ।
तोनि लोक तृन सम करि लेखत नन्द नन्दन उर आर्यं ।
बंसो बट, वृन्दावन, जमुना तजि वै कुराठ बखान न जावै ।
सूरदास हरि सुमिरन करि बहुरि न भव जल आवै ।

-सूरसागर पद संख्या ३४६

चेतन्य माध्रमु ने जिस समारोह के साथ वाच्यंत्रों की झंकार में कृष्ण प्रेम की पुकार को निनादित किया, वह दक्षिण पथ में होता हुआ

उत्तरापथ में चले कर सम्पूर्ण भारतवर्ष में दूँटा गया । जनपथ प्रमण करते हुए कृष्ण भ्रम को धारा प्रवाहित करते चलना तथा जन जन उसमें आत्मसात् करके आगे बढ़ना हो उनके कोर्तन को विशेषता थी । ब्रज-मन्दिरों में अष्ट प्रहर सेवा के साथ कीर्तनियों की नियुक्ति वल्लभ सम्प्रदाय में विशेष उल्लेखनीय है । राधा वल्लभ सम्प्रदाय रागबद्ध पदों के गार जाने को प्रथा थी और हारस्वामी तो स्वयं पद रचयिता एवं सुविख्यात संगीताचार्य थे । श्रीकृष्ण की मधुर गान कृष्ण भक्त सम्प्रदायों में समान रूप से प्रचलित था । कहीं नाम का अधिक महत्व था, कहीं लीलागान का ।

कोर्तन के स्वरों के साथ वल्लभ साथ भक्ति का भावात्मक प्रवाह भी फूट पड़ा । चित्तवृत्तियों के जिस निग्रह निरोध को उत्पन्न करने के लिए निगुण मत में अनाहत नाद का श्रवण आवश्यक बताया गया, वह अब आहत नाद के श्रवण में सहज ही साधित होने लगा । संगीत से मनीनिग्रह जितना आसान है, उतना अन्य साधन से नहीं । कृष्ण मिलन के लिए हृदय की व्याकुलता से लेकर संयोग की सिद्धावस्था तक का निरूपण संगीत के तरल स्वरों में हुआ ब्रह्मानन्द से भजनानन्द श्रेष्ठ माना गया है परन्तु कृष्ण भक्त कवियों ने तो उसे पूर्ण मूर्त रूप दे डाला । इसमें कोर्तन में अपाथिक रस साकार हो उठा ।

इस कोर्तन एक लाभ यह भी हुआ कि कृष्ण भक्ति की वल्लभ साधना व्यक्तिगत न रहकर सामूहिक बनने लगी । कोर्तन का सामूहिक आयोजन होता था, वहाँ भक्त गायक को एक ओर जहाँ स्वरों की रागमयता से भावात्मक सहारा मिलता था, वहाँ दूसरी ओर श्रोता को कठिन से कठिन केवल कृपा से गम्य माना गया है। कोर्तन ने एक प्रकार से सामूहिक प्रार्थना का रूप धारण कर लिया ।

कोर्तन के आवेश में भक्त अपनी बाह्य चेतना से विगत हो अन्तश्चेतना इतना वशोन्मत्त हो जाता था कि उसके शरीर में उनके सात्त्विक भाव भी प्रकट होने

लाते थे । चैतन्य महाप्रभु कीर्तन करते करते कभी नृत्न करते कभी उच्च स्वर से रोदन करते, कभी भूमि पर लटने लाते हैं ।

पुष्टि सम्प्रदाय में कीर्तन का महत्व बहुत बढ़ गया था । इस सम्प्रदाय में अष्टछापों कवियों आठों प्रकार की सेवा का कार्यभार सौंप दिया गया था । वे अपने व्यक्तिगत पदों को रचकर अपने निश्चित समय पर गाते थे। कीर्तनकारों में प्रधान पद श्री कुंभनदास जी ने सुशोभित किया तत्पश्चात् महाकवि सूरदास ने इस पद को ग्रहण कर लिया । सूरदास जी के समस्त पद गयात्मक शैली में हैं। कहा जाता है कि सूरदास जो काव्य-रचना करने पूर्व हो संगीत मर्मज्ञ थे। तभी तो राग-रागनियों से आबद्ध पदों की रचना कर पाएँ । राग-रागनियों ॐ०अ०ब०घ०ङ०च०छ०ज०झ०ञ०ट०ठ०ड०ढ०ण०त०थ०द०ध०न०प० फ०ब०भ०म०य०र०ल०व०श०ष०स०ह०ळ०० का विभाजन श्री सूरसागर में मिलता है। सूरदास जी स्वामिन् सुखाय नहो स्वान्तः सुखाय रचना करते थे । भाव-सुमन सौरभ के सुन्दर संचार के लिए, पवित्र प्रेम प्रवाह प्रसार के लिए शृंगार मंजुमंजरी के मधुमय विकास के लिए और कविता कामिनी के कौतुक मय विकास के लिए गीति शैली के सिवाय और कोई शैली उपयुक्त नहीं हो सकती । इस प्रकार कहा जा सकता है कि पुष्टिमागीय पद्धति में कीर्तन की परम्परा के साथ संगीत का भी सामं-जस्य हो गया था । वल्लभ सम्प्रदायों में कात्सल्य तथा सख्य भाव की प्रधानता होने के कारण अन्य सम्प्रदायों से अष्ट प्रहर सेवा विधान में मिलता है। इस सम्प्रदाय में सेवा का क्रम आठ भागों में विभाजित है- मंगला, शृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या अररती तथा शयन ।

श्री विठ्ठलनाथ जी आठों प्रहर की सेवा अष्टछाप के आठों कवियों को सौंप दी थी जो स्वरचित गेय पदों द्वारा कीर्तन कर अपना समय पूर्ण करते थे । इनमें उच्च पद श्री कुंभनदास जी को प्रदान किया गया था । तत्पश्चात् सूरदास का स्थान था । भोग के समय का कुंभनदास जी का एक गेय पद नीचे दिया जा रहा है-

जैवत हैं री ! मोहन अब गिजि जाओ तिवारो ।
 सिंह पीरि तें फिरि फिरि आवति बरजो हों सौ बारो ।
 रोहनि आई, निकसि ठाढ़ी भई दे दे आडि सुख सारी ।
 तुम तरुनि जीवन मदमाती ऐसी जु देखन-हारो ।
 कोउ गरजत-लरजत आवति कोउ बजावत तारी ।
 कुंभनदस प्रभु गोवर्धन-घर अब ही बैठे थारी ।

वात्सल्य भाव जैसा सूर ने अपनाया है, वैसा शायद कोई भी कवि अब वर्णित नहीं कर पाया है। यक्ष्म सूर अंध थे फिर भी ऐसा सजीव चित्रण चित्रित किया है कि उनके पद पढ़कर विश्वास करना कठिन है कि सूरदास जैसा जन्मांध कवि इतना सजीव चित्रण कर सकता है। सूर के द्वारा रचित सूरसागर लगभग सभी रसों के उदाहरण हमें मिल जाते हैं, यहां एक वात्सल्य का एक वात्सल्य का एक उदाहरण देखिए-

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत ।
 मनिमय कनक नन्द के आंगन बिंब पकरिवे धावत ।
 ० ० ०
 बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा, पुनि पुनि नंदबुलावति ।
 अंतरा नर लै ढांकि सूर के प्रभु कीं दूध पियावति ।

इसी प्रकार अनेकों उदाहरण जो हमारे सामने बच्चों का सजीव चित्र उपस्थित कर देते हैं। वात्सल्य ही नहीं, विनय के पद, रूप माधुरी सख्य भाव के पद इन्होंने रचे हैं ।

अष्टछाप के सभी कवि श्री कृष्ण के बाल, रूप सखा रूप, रूपासक्ति, प्रमासक्ति, रास आदि वर्णनों में सिद्धहस्त से जान पड़ते हैं । कृष्णादास जी

का रूपासक्ति का एक उदाहरण देखिए-

ग्वालि कृष्ण दरस सौं अटकों ।
 बार बार पनघट पर आवत, सिर जमुना जल मटकों ।
 मनमोहन को रूप सुधानिधि, पिवत प्रेम रस गटकों ।
 कृष्णदास धन्य धन्य राधिका, लोक लाज सब पटकों ।

चतुर्भुजदास जो का एक उदाहरण देखिए जो रास रंग से संबंधित है- एक गोपी कह रही है, श्याम वर्णा होने वाली है, भरे वस्त्र भोग जांरंग अतः मुझे अपने पटपोत और मैं शिपा ~~देख~~ लो-

स्याम ! सुन नियरी आपी मेहु ।
 दामिनी तें डरपत हो मोहन ! निकट आपुनी लेहु ।
 दास ' चतुर्भुज ' प्रभु गिरिधर सो, बाढ़यी अधिक सनेहु ।

इसो प्रकार भांति भांति उदाहरणों से अष्टछाप साहित्य भरा पड़ा है, विस्तार भय से इतना उचित प्रतीत होता है ।

चतुर्थ अध्याय

१६वीं - १७वीं शताब्दी के

कृष्णभक्त कवि :

(१) व्यक्तित्व

(२) कृतित्व

चतुर्थ अध्याय

१६वीं - १७वीं शताब्दी के कृष्णभक्त कवि

१- व्यक्तित्व

२- कृतित्व

महाप्रभु वल्लभाचार्य - सं० 1535 - 1587 -

वल्लभाचार्य जी के पूर्वज दक्षिण में गोदावरी के तटवर्ती कांकरवड नामक ग्राम के निवासी थे । वे मारद्वज गोत्र के तैलंग ब्राह्मण थे । इन्सा केनाडु कहलाता था । इसी क्ल में श्री लक्ष्मण मट्ट वल्लभाचार्य जी के पिता थे जो बहुत विद्वान और धर्मानिष्ठ आदमी थे ।

लक्ष्मण मट्ट अपनी पत्नी के साथ तीर्थ यात्रा करते हुये दक्षिण प्रदेश से उत्तर को ओर आये और प्रयाग, काशी, गया, आदि तीर्थ यात्रा के पश्चात् काशी में रहने लगे । वहाँ रहने के कुछ दिन पश्चात् ही बहलोल लोदी के आक्रमण की चर्चा बढ़ी तेजी से फैली सब लोग गाँव छोड़ कर दक्षिण की ओर चल दिये । श्री लक्ष्मण मट्ट जी भी अपनी गर्भवती पत्नी के साथ चल दिये । ऐसी अशान्तिपूर्ण परिस्थितियों का सामना करते समय ये मध्य प्रदेश के रायपुर जिले के चम्पारण्य नामक वन में होकर जा रहे थे तभी उनकी पत्नी को प्रसव पीड़ा होने लगी शाम हो चुकी थी सब लोग थोड़ा जाकर चौड़ा नगर में जाकर विश्राम करना चाहते थे पर ये दोनों पहुँचने में असमर्थ थे अतः उस निर्जन वन में ये दोनों पति-पत्नी रुक गये । वहाँ एक वृद्धा के नीचे हत्मागारु ने 7 माह के बेटे को जन्म दिया जो संज्ञाशून्य सा था । उसे मृत जान दोनों सूखे पत्तों से ढक कर आगे चल दिये । प्रातः काल होने पर उन्हें पता चला कि अब आक्रमण का समय समाप्त हो गया है । अतः बहुत से लोग फिर वापिस आने को तैयार हो गये । कुछ दक्षिण की ओर चले गये थे । दोनों

पति पत्नी में वापस काशी के लिये चल पड़े । वापस लौटते समय बच्चे को जोकि या दौनो का प्रसन्नता का पारावार न रहा । बच्चे का नाम बल्लम रखा गया । वही बच्चा बड़ा होकर सुप्रसिद्ध बल्लमाचार्य हुआ ।

विद्याध्ययन और प्रचार

श्री लक्ष्मण मट्ट अपने पत्नी तथा पुत्र के साथ काशी में हनुमान घाट पर आकर रहने लगे । वहीं अध्ययन, अध्यापन तथा ब्राह्मणोचित अन्य कृत्य करते हुये अपना जीवकोपार्जन करने लगे ।

बल्लम बड़े क्षण्ड बुद्धि के बालक थे । कहा जाता है कि उन्होंने 10 वर्ष की आयु में ही समस्त वेद वेदांगों तथा पुराण उपनिषदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था और अल्पायु में ही काशी में प्रसिद्ध हो गये थे ।

सं० 1545 में इनके पिता का देहावसान हो गया । उसी वर्ष इन्होंने कैास कु० 15 को बल्लम ने जगदीशपुरी यात्रा की और अपने पिता की स्मृति में दानादि दिया । उस समय वहाँ पर वैष्णव तथा शंकर मन के पंथियों में शास्त्रार्थ चल रहा था । वहाँ इन्होंने वैष्णव मत वालों का पदा लेकर शास्त्रार्थ करने लगे और विजय प्राप्त की । इसके बाद निराकर मायावाद के विरोध में साकार एवं विद्वद् ब्रह्मवाद के व्यापक प्रचार का निश्चय किया ।

अपने इस निश्चय की पूर्ति के लिये इन्होंने अपनी माता का दण्डाण उनके पितृ गृह पहुँचा दिया गया और स्वयं भारत भ्रमण को निकल पड़े । समस्त देश को कई बार यात्रायें कीं । उन यात्राओं में इन्होंने मायावाद का खंडन एवं ब्रह्मवाद और भक्तिमार्ग का प्रचार किया । इनका दार्शनिक मत शुद्धाद्वैतवाद कहलाता है । इसी शुद्धाद्वैत सिद्धान्त तथा सगुण भक्ति का समर्थन करते हुये इन्होंने कई बार विपक्षियों को पराजित किया ।

विद्यानगर का शास्त्रार्थ और आचार्यत्व :

बल्लमाचार्य जो तृतीय यात्रा करते हुये अपने गाँव कंकरवाड में गये

वहाँ जाकर उन्होंने सुना कि इंदिराण क्षेत्रीय प्रसिद्ध हिन्दू महाराजा तृप्तिहर्मा के सेनापति कृष्ण देव राय ने¹ एक विशाल पीछित सभा का आयोजन किया उसमें विविध सम्प्रदायों के 6 विद्वान अपने सिद्धान्तों का महत्व प्रकट कर रहे थे। शास्त्रार्थ में एक ओर मध्व, निम्बार्क, विष्णु स्वामी और रामानुज सम्प्रदाय के वैष्णव थे दूसरी ओर शंकराचार्य के अनुयायी अद्वैतवादी, शैव शक्त आदि अवैष्णव भी विद्वान थे। दोनों पक्षों में जम कर वाद विवाद हो रहा था। धीरे धीरे वैष्णव पक्ष गिरता नजर आने लगा। क्लेश जी भी शास्त्रार्थ का समाचार पाकर वहाँ गये और उन्होंने वैष्णव के समर्थन में अपने फाँड द्वारा गिरते हुये पक्ष को बचा लिया। दूसरे पक्ष को पराजय का सुह देखना पड़ा। वैष्णवों की विजय का कारण क्लेश जी ही थे। अतः वैष्णवों ने उन का आदर सत्कार किया।

इन्की विद्वता से प्रसन्न होकर मध्व सम्प्रदाय के आचार्य श्री व्यासतीर्थ ने उन्हें अपने सम्प्रदाय का आचार्य बनाने का निश्चय किया। विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के आचार्य उन्हें अपने आचार्यत्व की गद्दी पर बिठाना चाहते थे। उस समय इस गद्दी के आचार्य विल्वमंगल थे जो किसी उत्तराधिकारी को अपना भार सौंप कर समाधिस्त होना चाहते थे। उन्होंने विष्णु सम्प्रदाय का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया क्योंकि उनका सिद्धान्त शुद्धाद्वैत इन्हो के सिद्धान्त से मिलता जुलता था।

राजा कृष्णदेव राय ने उन्हें शास्त्रार्थ में विजयी होने के कारण उनका कनकामिषेक किया। विभिन्न वैष्णवाचार्यों ने उन्हें विष्णुस्वामी सम्प्रदाय का आचार्य घोषित करते हुये उनको “आचार्य चक्र कुडामणि जगद्गुरु श्रीमदाचार्य महाप्रभु” की उपाधि से सम्मानित किया। तभी से ये लोक में महाप्रभु तथा आचार्य के नाम से प्रख्यात हुये। जितना स्वर्ण रक्त्र हुआ सब ब्राह्मणों में बाँट दिया। केवल 7 स्वर्ण सुदार्थें रखीं। इस साम्प्रदायिक ग्रन्थों में इन्की प्रथम यात्रा के समय ही कनकामिषेक का होना कहा गया है।

डा० दीन दयाल गुप्त ने भी इसी मत्त को स्वीकार किया है । गुजरात के सांवली नामक ग्राम में एक कुए की खुदाई के समय कुछ ऐतिहासिक महत्व की सामग्री मिली है । इसमें एक जोर्ण ताड़ पत्र मिला है जिसमें वल्लभजी के कन्काभिषेक का समय सं० 1565 अंकित है² । इस लेख से इनका कन्काभिषेक इनको तृतीय यात्रा में ठहरता है । उस समय इनको आयु 30 वर्ष की थी ।

इन्होंने अपनी प्रथम यात्रा पिता की मृत्यु के 1 वर्ष पश्चात् की 1546 सं० उस समय इनको आयु केवल 12 वर्ष की थी । तब में सं० 1550 में श्रावण शु० 11 को उन्होंने गोकुल के ठहरानी घाट पर भागवत का साप्ताहिक पारायण किया । उसी समय से इन्होंने अपने शिष्यों को बलसर्वध मंत्र की दोहादनी आरम्भ की । यह यात्रा 7 वर्ष में सम्पन्न हुई पूर्ण हुई ।

दूसरी यात्रा सं० 1554 की जेष्ठ शु० 2 रविवार को आरम्भ की ।

वेद तत्व सर सोम के जेष्ठ शुक्ल रवि व्रज

सद्ध पक्ष प्रभु कुंज किया, मातृश्री पव पुज । सम्प्रदाय कल्पद्रुम पृ० 35 इस यात्रा में उन्होंने प्रेम लक्षणा भक्ति का प्रचार किया । इन्हीं दिनों गोकर्धन जा कर श्रीनाथ जी के स्वरूप का प्राकट्य कर उनकी सेवा पूजा के ब्रजवासियों को आवेश किये । सं० 1558 में आषाढ़ कृ० 5 को मधुमंगल नामक सजातीय ब्राह्मण की महालक्ष्मी नामक कन्या के साथ उनका विवाह हुआ तबो यह यात्रा पूर्ण हो गई ।

तासरी यात्रा 1558 सं० में प्रारम्भ हुई । सर्व प्रथम गोकर्धन गये वहां इनका प्रेरणा से एक सैठ पुरणमल क्षेत्र ने एक विशाल मंदिर का योजना बनाई । इसका निर्माण 1559 सं० का आरंभ हुआ । इस यात्रा से आचार्य जो

1- अष्टाक्षर और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० 70

2- व्यापतन्म । श्री नृसिंह का सर्वभोग स्वास्ति श्री साम्राज्य मान मासे 11

लोक गुरु आचार्य चक्रवर्ती श्री प्रभु वल्लभ हेमाधिसिंहितम् । आवृत्तिपूर्ण

कार्तिक शुक्ल आव्द 1565 — श्री कृतिराम शास्त्री कृत गुजराती पुष्टिमार्गनामो इतिहास पृ० 19

के गौरव की अति वृद्धि हुई । सं० 1564 में इन्होंने नवनिर्मित मंदिर में श्रीनाथ जी का स्वरूप पधराया । वहाँ दक्षिण गए और सं० 1565 में विधानगर के महान शास्त्रार्थ में भाग लिया । इनके दो पुत्र उत्पन्न हुए । बड़े पुत्र गोपीनाथ जी का जन्म 1568 सं० को अश्विन कृ० 12 को अडैल ग्राम में हुआ था । छोटे पुत्र विद्वल नाथ जी का जन्म 1572 को पौष कृ० 9 को काशी के पास चरणाट ग्राम में हुआ । दोनों पुत्र अपने पिता के समान विद्वान तथा धर्मनिष्ठ थे ।

श्रीनाथ जी की सेवा पूजा राम दास चौहान को सौंप कर पुनः अपनी यात्रा को चले गये । ये मोग की सामिग्री स्कत्र करते थे । कुंभनदास जी स्वरूप सम्मुख कीर्तन किया करते थे । सद्द पांडे द्वारा पक्का मंदिर बनने पर आचार्य जी ने वह स्वरूप उसमें विराजमान किया । राम दास चौहान का देहान्त हो जाने के कारण सद्द के परामर्श से वंगाली वैष्णवों को श्रीनाथजी की सेवा में नियुक्त कर दिया । पूजा विधान बहुत सूक्ष्म था । ब्रजवासियों को मोग सामिग्री से मोग धराया जाता था । कृष्ण दास भेटिया तथा कुंभनदास कीर्तन का कार्य करते थे । धीरे धीरे मंदिर को सैंकड़ों गाय स्कत्रित हो गई जिसके कारण निकटवर्ती गाँव गोपालपुर कहा जाने लगा । कृष्ण दास भेटिया का अपेक्षा मंदिर के अधिकारी नियुक्त हो गए । अब कीर्तन में सूरदास भी सम्मिलित हो गये ।

पुष्टि मार्ग -

विशोरावस्था से हो वल्लभ जी की प्रवृत्ति शास्त्रोक्त चिन्तन तथा शास्त्रार्थ एवं सत्य के प्रचार को ओर थी । इसीलिये उन्होंने तीन यात्रायें कर प्रममूलक ज्ञानार्थकार को दूर सत्य के प्रकाश को ओर लोगों को आकर्षित किया । उनका सिद्धान्त दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैत कहलाता है । यह शाखा पुष्टि सम्प्रदाय के नाम से प्रचलित हुई । विष्णु स्वामी सम्प्रदाय की भक्ति का स्वरूप सगुण और तामस है । किन्तु वल्लभ जी ने प्रेम लक्षणा भक्ति का प्रचार किया । सगुण भक्ति प्रधान विष्णु स्वामी सम्प्रदाय और निर्गुण भक्ति प्रधान पुष्टि सम्प्रदाय की एक वाक्यता और उन लोगों का सामंजस्य करने के लिये इन्होंने विशिष्ट सेवा मार्ग निर्मित किया । इस सेवा प्रणाली में

बाल, सख्य, कर्त एवं ब्रह्म भावना की सामूहिक व्यवस्था है । श्रीनाथ जी को आठ प्रकार की फौकियाँ की वाल्य, सख्य और कान्त भावना का प्राधान्य है । श्रुति - स्मृति प्रतिपादित शुद्धि एवं वैष्णवी तीक्ष्ण पूजा में गृहति अभिषेक, पंचमृत आदि में ब्रह्म भावना का स्पष्टीकरण है । इस प्रकार का सेवा मार्ग वल्लभाचार्य जी की विशिष्टता है ।

ग्रंथ रचना :

वल्लभ जी ने अपने मत प्रचारार्थ छोटे छोटे अनेक ग्रंथों की रचना की जा अधिकतर इनकी यात्राओं के मध्य रचे गए । माधव मट्ट आचार्य जी कृत ग्रंथों के लेखन का कार्य करते थे । चौरासी वैष्णवन की वार्ता से ज्ञात होता है कि आचार्य जी के अनेक ग्रंथ भिन्न अवसरों पर उनके शिष्य सेवकों के प्रबोधार्थ लिखे गए थे । आगरा निवासी कन्हैया लाल क्षत्रिय को आचार्य जी ने अपने समस्त छोटे ग्रंथों का अध्ययन कराया था । आचार्य जी के देहावसान उपरान्त उनके अप्राप्त ग्रंथों को विट्ठल नाथ जी ने कन्हैया लाल जी से जाकर प्राप्त किया¹ । वल्लभ जी के ग्रंथों की रचना संख्या 27 अथवा 35 बताई जाती है उनके 30 छोटे ग्रंथ विशेष प्रसिद्ध हैं । 1- अणु माण्य, 2- सुबोधिनी, 3- पूर्व मीमांसा माण्य, 4- तत्त्वदीप, -निबन्ध, 5- पुरुषात्म सहस्र नाम, 6- दशमस्कंध अनुक्रमणिक, 7- यमुनावटक, 8- सिद्धान्त रहस्य, 9- नवरत्न, 10- पुष्टि प्रवाह मयादा, 11- अन्तर्करण प्रबोध, 12- मवित वर्धनी, 13- निरोध लक्षण, 14- सन्यास निर्णय, 15- कृष्णाश्रम, 16- सेवा फल, 17- चन्द्रः श्लोकी, 18- सिद्धान्त मुक्तावली, 19- बलिबोध, 20- विवेक धैर्याश्रम, 21- जल मेघ, 22- पंचपथ, 23- पत्रावलोकन, 24- विविध नामावली, 25- प्रेमाकृत, 26- शिवा श्लोक, 27- न्यायाक्षे, 28- सेवा फल विवरण, 29- मधुराष्टक, 30- परिवृद्धाष्टक ।

पुरुषात्तम सहस्र सुप्रसिद्ध साम्प्रदायिक पुस्तक है अन्तर्करण प्रबोध

1- चौरासी वैष्णवन की वार्ता । अग्रवाल प्रेस पृ० 539; 540

2- वल्लभ दिग्विजय ।

3- सम्प्रदाय कल्पद्रुम ।

इन्को अंतिम रचना है। इनके ग्रन्थ संस्कृत, तैलिंग तथा ब्रजभाषा में लिखे हुए हैं। सं० 1587 की जेष्ठ कृ० 10 अड़ैल से प्रयाग आये वही उन्होंने विधिपूर्वक सन्यास ग्रहण किया। और काशी में आकर रहने लगे वही उन्होंने पुष्टि मार्गीय सन्यास का पूर्णतः पालन किया। 40 दिन अन्नान तथा विप्रयोग करने पर 1587 की आषाढ़ शु० 3 को मध्याह्न के समय उन्होंने काशी के हनुमान घाट पर गंगा के बीच जल धारा में जल समाधि ले ली। उस समय उनको आयु 52 वर्ष की थी।

व्यक्तित्व और महत्व :

वल्लभ जी अपने समय के धर्मधर विद्वान् आदर्श महात्मा और सुप्रसिद्ध धर्मचारी थे। वे निष्पद त्यागी और परीष्कारी थे। इन्हें राजा महाराजा धनी व्यक्तियों से अमर धन प्राप्त हुआ। परन्तु उन्होंने स्वयं न लेकर साधु सन्त और विद्वानों की मंडली में वितरित कर दिया अथवा भगवान् सेवा में लगा दिया। इनका स्वभाव सरल तथा रहन सहन सादा था। जीवन में कभी भी सिले वस्त्रों का उपयोग नहीं किया। सदैव चरण पादुकाएं ही धारण कीं। उन्होंने 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य 12 वर्ष गृहस्थ 15 वर्ष 1 मास वानप्रस्थ तथा लगभग डेढ़ माह तक सन्यास धारण किया। उनका सन्यास अन्नान रूप में मक्ति मार्गीय विप्रयोग पद्धति का था।

जिस समय इनका जन्म हुआ देश महान् विपत्तियों में दारि से गुंजा जा रहा था इन्होंने तीन बार समस्त देश का भ्रमण कर अज्ञानाधिकार में पड़े जीवों का उद्धार किया। जिस समय विधर्मी शासकों के आतंक से हिन्दू जनता त्रस्त थी वेदाजित, कर्म, ज्ञान एवं मक्ति का मयाबि प्रायः नष्ट हो गयी थी नाना प्रकार के वाद विवादों के कारण आस्तिक जनता पशेन थी। उन्होंने उन सबको शान्ति और स्तौति प्रदान करते हुए उनके उद्धारार्थ उन्हें श्रीकृष्ण की शरण में जाने का उपदेश दिया।

राजकीय उपद्रव से भयभीत और किर्मियों के अत्याचार से निराश हिन्दू जनता उन्होंने अपने उपदेशों से निर्भीक और शक्ति सम्पन्न बना दिया।

उन्होंने जिस सरल, रसिक और आनंददायक मत का प्रचार किया उससे निराश जनजीव को सच्चे आनन्द का अनुभव हुआ। उन्होंने अपने आदर्श जीवन प्रत्यक्ष पाण्डित्य और लोक कल्याण की भावना से एक बार समस्त उत्तर भारत को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। विशेष कर कन्नड़, मध्य प्रदेश, राजस्थान, और गुजरात के अगणित व्यक्तियों ने उनके सम्प्रदाय की दीक्षा ली। उन्होंने अपने उपदेश से भक्तिमार्गीरथी की धारा ऐसी तीव्र गति से प्रवाहित की जो अनेक विप्लव बाधाओं के मध्य भी आज तक देश में विद्यमान है।

श्रीगोपीनाथ जी तथा पुरुषोत्तम जी :

श्री गोपीनाथ जी का जन्म सं० 1568 की अश्विन कृ० 12 को अडेल में हुआ। ये अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे अतः पिता की मृत्यु के पश्चात् पुष्टि सम्प्रदाय के आचार्य हुये। गोपीनाथ जी को शिक्षा दीक्षा वल्लभ जी की देख रेख में हुई। ये भी पिता के समान बड़े विद्वान् पुरुष थे। इनका एकान्त वास और भागवत का अनुशीलन विशेष प्रिय था। सम्प्रदाय तथा घट गृहस्थों को देखते ही माल छोटे मार्ग विट्ठल पर छोड़ कर डारका और सुदूर देशों की यात्रा को चले जाते थे।

इनका विवाह पिता की विमानता में दक्षिण देशस्थ पायम्पा नामक सजातीय कन्या के साथ सं० 1582 में हुआ था। इनके एक पुत्र तथा दो पुत्रीयां हुई। पुरुषोत्तम जी का जन्म 1587 में हुआ। सं० 1587 में वल्लभ जी के देहावसान के अनन्तर श्री गोपीनाथ जी आचार्य बने। यात्राओं में जी द्रव्य प्राप्त हुआ था वह श्रीनाथजी को अर्पित कर दिया।

ग्रन्थ रचना :

गोपीनाथ जी विद्वान् पुरुष थे इससे अनुमान होता है कि उन्होंने भी अपने पिता तथा छोटे मार्ग को भाँति अनेक ग्रन्थों की रचना की होगी। परन्तु इनका केवल एक ग्रन्थ 'साधन दोषिका' ही उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में उन्होंने पुष्टि मार्गीय भक्ति साधन स्वरूपा सेवन विधि पर प्रकाश डाला है।

सम्प्रदाय कल्पद्रुम में साधन दीपिका के अतिरिक्त तीन और ग्रन्थों से वाविधि नाम निरूपण संज्ञा और बल्लामाष्टक आदि मिलती हैं। किन्तु ये अप्राप्य हैं। कहा जाता है कि ये इनके देहावसान उपरान्त बिट्ठलनाथ जी से विरधि होने पर उनकी पत्नी सब ग्रन्थ लेकर अपने फितूगृह चली गईं। निम्न पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं -

बड़े जु गोपीनाथ कृत, चार ग्रंथ नृपमान, प्रथम जु साधन दीपिका,
सेवाविधि सुखदान, संज्ञा निरूपण रू गोपीजन सुखदान, बल्लमाष्टक
ग्रंथ किन्हीं गोपीनाथ सुजान । सम्प्रदाय कल्पद्रुम पु० 142 ।

देहावसान :

इनके कल्पद्रुम के देहावसान काल के सम्बन्ध में भी सम्प्रदायिक ग्रन्थों में मतभेद है। सम्प्रदाय कल्पद्रुम में उनके देहावसान का समय सं० 1620 दिया हुआ है।

बहुरि गोपीनाथ सुनि, क्षिप्र जाय जगदीस
लीन भये क्लमद्र मुल, अब्द कलासत बीस
कोंकरौली के इतिहास में लिखा है कि बिट्ठल नाथ जी के लिये श्रीनाथ जी की इयादो! बंद होने के दुःख से सुखी तथा अपने एक मात्र पुत्र श्री फुल्लान्तिम जी का देहावसान सं० 1618 - 1620 के बीच हुआ। परन्तु 1602 में अष्टकूप की स्थापना के समय ये मौजूद नहीं थे। पुष्टि सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान तथा ब्रज साहित्य के विशेषज्ञ श्री द्वास्त्रिका दास पारिल ने साम्प्रदायिक घटनाओं का परिश्रम पूर्वक शोध करके गोपीनाथ जी का निधन सं० 1599 निर्धारित किया है जो उपरोक्त प्रमाणों से भी सही प्रतीत होता है।

पारिल जी का विचार है कि पारिवारिक कलह 1602 में आरंभ हुई और 1605 में उग्र रूप धारण कर गई। 1606 में मंदिर की इयादो बिट्ठल जी के लिये बंद हो गई। इस घटना के 6 मास पश्चात फुल्लान्तिम जी का देहान्त हो गया तो यह स्वतः ही समाप्त हो गई।

1- ब्रजमारतो वर्षा 5 अंक 1 में प्रकाशित : हमारे सूरः नामक लेख से।

-:

श्री दारिकाबास पारिख द्वारा अनुमानित सं०, संवाद के उल्लेख से भी प्रमाणित होते हैं ** तार्त श्री गिरिधर गोविन्द जु प्रगटें हैं । अरु श्री बाल कृष्ण जु अब प्रगटेंगे । पाहें हम तुम्हारे फाटेंगे** । श्रीनाथजी ड्याँढ़ी कन्द हों जाने पर जब गोसाईं विट्ठल जी ने विप्रयोग करते हुये 6 माह तक चन्द्र-सरावर पर निवास किया उस समय वल्लभ जी के अन्तरंग शिष्य दामोदर दास दासाना उनके पास गये । गोसाईं जी के पूछने पर उन्होंने वल्लभ जी के चरित्रों का जो कथन किया था वह महाप्रभु के प्राकट्य वाता की आरम्भिक अंश संवाद के रूप में प्राप्त है ।

पति तथा पुत्र की मृत्यु के अनन्तर गोपीनाथ जी की विधवा पत्नी ने विट्ठलनाथ जी के आधोन रहना स्वीकार न किया और वे पति ग्रंथ तथा कुछ वल्लभ के ग्रंथ लेकर पितृ गृह चली गईं । वल्लभ जी ग्रन्थों की प्रतिलिपि बाद में विट्ठल नाथ जी ने आगरा निवासी श्री कन्हैया लाल से प्राप्त कर ली थी गोपीनाथ जी के कुछ ग्रन्थ इस गड़वड़ी में नष्ट हो गये । आज अब एक ग्रन्थ साधन दीपिका उपलब्ध है ।

-: गोस्वामी विट्ठल नाथ जी :-

इन्का जन्म 1572 सं० पोषा कृ० 9 गुरुवार को काशी के निकटवर्ती चरनाट नामक स्थान पर हुआ था ये गोपीनाथ जी के द्वितीय पुत्र थे ।

विट्ठलनाथ जी का उपनयन संस्कार 8 वर्ष की अवस्था में सं० 40 1580 में चैत्र शु० 9 को हुआ था । वहीं इन्का अध्ययन प्रारम्भ हुआ कहा जाता है कि प्रारम्भ में इन्का मन शास्त्रीय अध्ययन और साम्प्रदायिक सिद्धान्तों में अधिक न लगता था और पिता की विद्वता का सहवास भी इन्हें कम हो मिला फिर भी आयु के अनुसार इन्होंने वेद वेदांग उपनिषद् पुराण आदि का ज्ञान प्राप्त कर लिया ।

विवाद तथा संतति :

उनका प्रथम विवाह उनके पिता जी द्वारा सं० 1589 में हुआ उनकी पत्नी का नाम हकमणि था उससे 10 सन्तानों की उत्पत्ति हुई 6 पुत्र तथा चार पुत्रिणी । सं० 1616 में उनकी पत्नी का देहान्त हो गया । रानी दुर्गावती के आग्रह से उन्होंने दूसरा विवाह सं० 1620 में पदमावती नामक लका से हुआ इससे उन्हें एक पुत्र को प्राप्त हुई । इस प्रकार उनके 7 पुत्र थे जिनके नाम से आगे चल कर सात गदिमी प्रचलित हुई ।

सं० 1576 की वैशाख शु० 3 को गौर्खान के गोपालपुर में श्रीनाथ जी का नवीन मंदिर पूरी तरह बन कर तैयार हो गया था । वल्लभ जी ने विरक्त बंगालियों को मंदिर को सेवा सौंप कर कृष्णदास को मंदिर का अधिकारी नियुक्त कर दिया । कृष्णदास नवीन व्यवस्था करना चाहते थे क्यों कि वे मंदिर के भाग में प्राप्त द्रव्य का दुरुपयोग करते थे¹ । वे उन्हें मंदिर से हटाना चाहते थे । वे श्री विठ्ठलनाथ जी को सूचित करने के लिये अद्वैत पहुँचे और सारी बातें उनसे कहीं । वे बंगालियों को नहीं हटाना चाहते थे क्योंकि वे उनके पिता द्वारा निम्नित किया गये थे अतः कृष्णदास बोले मंदिर को व्यवस्था इस प्रकार नहीं हो पाएगी तब गौ० जी ने उन्हें हटाने को आज्ञा दे दी ।

कृष्ण दास ने सुविशेषपूर्वक बंगालियों को हटा कर अपने आदमी नियत कर दिये और गोस्वामी जी अद्वैत से व्रज आने पर उनकी सलाह से मंदिर को नवीन व्यवस्था की ।

सर्वमान्य मत के अनुसार यह घटना 1604 सं० की है । 1606 तक बंगालियों से मंदिर को सेवा के अधिकार लिये जा चुके थे और धीरे धीरे कृष्ण दास का प्रभुत्व इतना बढ़ गया था कि उन्होंने सं० 1628 गोस्वामी विठ्ठल नाथ जी को मंदिर प्रवेश से रोक दिया था । यह घटना सं० 1628 को प्रतीत होती है । बंगाली लोग काफी दिन तक अपने अधिकारों के लिये फगड़ा करते रहे पर कृष्ण दास का नीतिज्ञता के आगे उनकी एक न चली ।

1- चौरासी वैष्णवन की वार्ता । अग्रवाल पेस । में अष्टसखान की वार्ता

उन्होंने राजा अकबर तक फरियाद पहुँचाई पर वही भी उनकी दाल न गली । बीरबल ने विट्ठल नाथ जी का पुत्र देखकर यह फगड़ा सदैव के लिये समाप्त करवा दिया । गोपीनाथ जी के जीवन काल में ही सारे साम्प्रदायिक कार्यों को देखभाल करते थे बड़े भाई तो अधिकतर यात्रा पर रहते थे ।

वल्लभ जी के ही समय में ही गोपीनाथ जी के विचार सम्प्रदाय के विपरीत थे । ये मयादा मार्गीय कहलाते थे ¹ । सम्प्रदाय में यह मान्यता चल पड़ी थी कि विट्ठल नाथ जी कृष्ण और गोपीनाथ जी ब्रह्मदेव हैं अन्तार हैं । सम्प्रदाय के व्यक्तियों का आकर्षण विट्ठल नाथ जी की ओर था । बातों में भी अधिकतर ऐसे ही व्यक्तियों के सम्पर्क प्रसंग मिलते हैं कि शिष्यों ने गोपीनाथ जी का चरणोदक न लेकर विट्ठल नाथ जी का चरणोदक लिखा । उस समय पुष्टि सम्प्रदाय की जो दीक्षा लेते थे वे भी विट्ठलनाथ जी से ही लेते थे । अतः वे बहुत लोक प्रिय हो गये थे । गोपीनाथ जी के निधन के बाद सं० 1600 वे सह-कुटुम्ब व्रज में आये और पूरे व्रज की न यात्रा की तथा मंदिर की सेवा व्यवस्था पर ध्यान दिया । और थोड़ा मंदिर बमब बढ़ाने हेतु परिवर्तन करने का विचार किया । कृष्ण दास से इस विषय में परामर्श किया तो वे भी यही चाहते थे सहर्ष तैयार हो गये ।

सं० 1600 में अटेल से व्रज होते हुये ये गुजरात पहुँचे । इस यात्रा से उन्हें पर्याप्त लाभ हुआ और उन्होंने पु० सं० का सूत्र प्रचार किया ।

मंदिर के प्रबन्धक के रूप में कृष्ण दास ने काफी लोकप्रियता प्राप्त की । कृष्णदास के समय में ही स्कवैष्णव महिला का आना जाना मंदिर में अधिक बढ़ गया यद्यपि वह श्रोनाथ जी की सेविका और वल्लभ जी की शिष्या थी तथा एक धनाढ्य परिवार की स्त्री थी । कृष्णदास की सेवा परिवर्तन के कारण द्रव्य की आवश्यकता थी । अतः कृष्णदास ने इसी धनिष्ठता बढ़ा कर उसका धन का श्रोनाथ जी के लिये उपमाग में लाने लगे । धीरे धीरे लोगों

की संदेह होने लगा और दूसरे शिष्य गण दोनों का अनुचित संबंध का अर्थ लगाने ली। विट्ठल जी पर पहुंची। वे पहले ही उस स्त्री के व्यवहार से असंतुष्ट थे अतः उन्होंने बिना कृष्णादास के पूछे गंगाबाई का मंदिर आना जाना बंद कर दिया।

कृष्णादास इस व्यवहार से बहुत असंतुष्ट थे। अपना अधिक प्रभाव बढ़ जाने के कारण मंदिर की व्यवस्था में किसी का हस्तक्षेप स्वीकार करने को तैयार नहीं थे अतः उन्होंने विट्ठलदास जी का हरि मंदिर आना जाना बंद कर दिया। विट्ठलदास जी ने इस अवधि का कोई बुरा न माना और शान्त भाव से गोवर्धन से हट कर पुरा के पारसीली गांव में जाकर रहने लगे। वहां वे विप्रयोग पूर्वक अन्न का त्याग कर केवल दुग्धाहार पर ही अपना जीवनयापन करने लगे।

जब इसी प्रकार विट्ठलदास जी को वहाँ रहते हुए ६ मास व्यतीत हो गए तो उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरिधर जी ने मथुरा के हाकिम की सहायता से कृष्णादास को कैद करा दिया तथा मंदिर प्रवेश की आज्ञा प्राप्त कर ली तथा अपने पिता वापस गोवर्धन ले जाकर उनको मंदिर में प्रवेश के लिए कहा परन्तु गोवर्धन जी बोले जब तक कृष्णादास आज्ञा नहीं देंगे मैं नहीं जाऊंगा। उनकी जेल का समाचार पाकर उन्होंने घोषणा की जब तक कृष्णादास बंधन मुक्त न हो जायेंगे मैं अन्न जल ग्रहण नहीं करूंगा, यह सुनते ही हाकिम ने उन्हें बंधन मुक्त करके मंदिर का अधिकारी ही बना दिया।

इस घटना का कृष्णादास पर व्यापक प्रभाव पड़ा और उन्होंने कामा प्रार्थना ही नहीं अपितु उनके अन्य भक्त हो गये तथा उन्हें साक्षात् कृष्ण का अवतार समझने लगे। उन्होंने कहा भी है -

जाके मन में उग्र मरम है, श्री विट्ठल श्री गिरिधर दोय ।
ताको संग विषम विषाहूं तैं, भूलि चतुर करी नि कोय ।

संवाद के आधार पर इस दुःखद घटना का समय सं० १६०५ सिद्ध होता है। बातों के अनुसार विट्ठलजी पीछे शु० ५ से आषाढ़ शु० ५ तक श्रीनाथ जी के दर्शन से वंचित रहे।

संव० १६०७ में इन्होंने विधि पूर्वक आचार्यत्व ग्रहण किया। अब वे सम्प्रदाय की उन्नति तथा ग्रन्थ निमण्डित में लग गये। सम्प्रदाय का उत्तरदायित्व संभालने के बाद इन्होंने पु० सो की सांगीपांग व्यवस्था बदलने का निश्चय किया। पिता की मृत्यु के समय ये केवल १५ वर्षीय थे अतः सम्प्रदाय सिद्धान्तों रहस्यों पिता से जानने का अवसर प्राप्त न कर सके। इन्होंने पु० सो की सेवा भावना का रहस्य पिता के प्रिय शिष्य श्री दामोदर दास हरसानी से प्राप्त की जो उस समय विद्वतता में प्रसिद्ध प्राप्त कर चुके थे। इनके अतिरिक्त वल्लभ जी के दूसरे शिष्य श्री प्रच्युतदास से भी इन्होंने पु० मा० कर लीला भावना की आवश्यक जानकारी प्राप्त की।

श्री विट्ठल जी ने विचार किया कि पु० मा० सेवा भावना का क्रियात्मक रूप विस्तार करने पर ही सम्प्रदाय का भलीभांति प्रचार हो सकता है। इसके लिए उन्होंने श्री नाथ जी की सेवा विधि में, शृंगार, भोग, राग की योजना बनाई। अब सेवा सामान्य विधि की अपेक्षा शृंगार, पाग और मुकुट से होती थी। इन्होंने आठ शृंगारों की व्यवस्था की - (१) फंटा, (२) पाग (३) दुसाला (४) पगा (५) कुल्हे (६) सेहरा (७) टिपारा (८) मुकुट। इन सब शृंगारों के साथ साथ विभिन्न-प्रकार के वस्त्रों को भी व्यवस्था की गई। इन्होंने विभिन्न प्रकार के उत्सव भी प्रचलित किए जिनपर ठाकुर की विभिन्न भूषणों से भोंकी बिजाई जाती थी।

भोग के विस्तार में आठोयाम, ये कृतुओं के अनुसार बालभाव प्रदर्शक भोग्य सामग्री प्रस्तुत करने की व्यवस्था थी। अन्नकूट तथा छप्पन भोग जैसे उत्सव प्रचलित कर ठाकुर जी को नाना प्रकार के व्यंजन अर्पित करने का नियम बनाया।

राग के विस्तारके लिए आठो समयों में कृतु अनुसार विभिन्न प्रकार के

अष्टकूप की स्थापना :

ठाकुर जी की आठो भाँकियों में कीर्तन कृतु के अनुसार विभिन्न राग रागनियों में गायन करके का विधान है। इसके लिए उच्च कोटि के कवित्त के साथ-साथ वादन कलाओं के ज्ञान की भी आवश्यकता होती है। वल्लभ जी के समय में कुंभनदास, सूरदास तथा परमानंद दास विभिन्न प्रकार का गायन कर श्रीनाथ जी के सामने कीर्तन किया करते थे। विठ्ठलजी ने मूर्ति के समक्ष आठौयाम के कीर्तन के लिए नियमित रूपके से कला, विशारद तथा संगीत निपुण आठ कवियों को आवश्यकता अनुभव की। इसके लिए अपने पिता द्वारा निष्कृत चार कीर्तनकार तथा चार अपने शिष्यों में से इसके कार्य के लिए नियुक्त कर दिया। कुंभनदास, सूरदास, कृष्णदास तथा परमानंददास, चार अपने शिष्य हीतस्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास आदि की एक मंडली बनाई जो अष्टकूप के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह काम इन्होंने सं० १६०२ में किया। ये संगीत कला विशारद के साथ प्रभु लीलाओं का जानकार होना भी आवश्यक समझा गया। उस समय उसी मान्यता थी कि ये आठो महानुभाव श्री नाथ जी की मूल लीला स्थित - अजुन, कृष्ण, तौक, कृष्णम, श्रीदामा, सुबल, विशाल और भोज नामक अन्तरंगी आठों सखारं हैं। श्रीकृष्ण ने अपने एकादश सखाओं को निम्न नामों से संबंधित बताया है। प्रथम आठ नाम अष्टकूप से संबंधित हैं -

‘है कृष्ण स्तोक है ह अंशो, श्रीदायन, सुबलाजुन
विशालाश्रम, तेजास्विन, देवप्रस्थ, वरुथपा।

॥ श्रीमदभागवत दशम स्क० स० पू० अ० २२)

सूरदास सीता कृष्ण तौक परमानंद जानी। कृष्णदास सी कृष्ण
हीतस्वामी सुबल बरखानी अजुन कुंभनदास, चत्रभुज विससला, विष्णुदास सी भोज
स्वामिगोविन्द श्रीदामाला ।

अष्टछाप आठो सखा, श्री द्वारकेश परमान ।

जिनकैकृत गुन गान करि, निज जन हीत सुथान ।

गौ० टिठल जी के छ आठों सखाओंको एकत्रित कर अपने औसरे-नुसार आठों
याम की कीर्तन सेवा का आदेश दे दिया । यह काम सम्प्रदाय में बहुत सहायक
सिद्ध हुआ ।

इन आठों कीर्तन कार्यों के सहायक रूपमें आठ उपकीर्तनकार भी
रखे गये जो कीर्तन में उनकी सहायता देते थे । तथा उनके गाये हुए कीर्तनों की
लिपिबद्ध के लेते थे। इसी सुदृढ़ व्यवस्था के कारण हमें उनका साहित्य, हमारी
ज्ञानवृद्धि में सहायक सिद्ध होता है । अष्टछाप के आठों व्यक्ति आशुकवि थे।
वे समय समय की भाँकियोंमें लीला भावना के अनुसार अपने हृदय की अनुभूति
को तत्काल कविता बद्ध कर उसका गायन करते थे ।

वत्सभाचार्य जी के समय में ही गोकुल पु० सं० का प्रमुख स्थान था ।
१५५० सं० में महाप्रभु अपनी प्रथम बैठक गोकुल के ठकुराना घाट पर ही स्थापित
की । यद्यपि स्थायी निवास अडैल में था तथापि वे व्रज आकर उसी बैठक में
ठहरे थे । वहाँ उनके धार्मिक ग्रन्थों पे प्रवचन आदि होता था ।

१६३६ में अडैल में भवनों का उपद्रव शुरू हो गया अतः गौ० जी
अडैल से व्रज में रहने का विचार करने लगे । व्रज में रहने से पूर्व कुछ समय रानी
दुर्गावती के आग्रह से उनकी राजधानी गढ़ा में रहे वहाँ रानी आग्रह से ही इन्हें
१६२० में रामभट्ट की पुत्री पद्मावती से विवाह करना पड़ा । गढ़ा जाते हुए
मार्ग में राजा रामचन्द्र बबेला को राजधानी में ठहरे । वहाँ राजा ने उनका बड़ा
सत्कार किया । वहाँ पर सुप्रसिद्ध गायक तानसेन से परिचय हुआ । गढ़ा पर भी
अक्बर के आक्रमण का भय छा गया अतः वहाँ से ये मथुरा आ गए । रानी मथुरा

में इनके लिए एक विशाल भवन बनवा दिया जो बाद गौसाईं जी के सात पुत्रों के निवास के कारण सतघरा कहलाने लगा । यह भवन अब नहीं है परन्तु यह स्थान अब भी सतघरा के नाम से ही प्रसिद्ध है ।

गो० जी सं० १६२३ में अपने परिवार वालों को मथुरा छोड़कर गुजरात की यात्रा को चले गये । इनके पोछे श्रीनाथ जी के स्वरूपको इनके बड़े पुत्र धिरिधर जीने सप्तघरा में लेजाकर विराजमान कर दिया । सूरदास भी साथ ही चले गये , वहीँ पर अकबर बरि मिलन हुआ । गो० जी मथुरा निवास अनुकूल जान न पड़ा अतः वे मथुरा छोड़कर गोकुलवा गए । अकबर ने उनकी धार्मिक प्रवृत्ति से बहुत प्रसन्न हुआ अतः आजकल वाले नये गोकुल की भूमि सदैव के लिए गो० जी को प्रदान कर दी। वहाँ गो० सहकुटुम्ब भाई बंधु शिष्यों सहित एक जाकर वस गए । धीरे धीरे वह स्थान नये गोकुलके नाम से विख्यात हुआ । सं० १६२९ में नवनीत प्रिय जी का मंदिर बनवाया गया । सं० १६३७ में षो० ने सातों स्वरूपों के पृथक् पृथक् मंदिर बनवाकर अपने सातों पुत्रों के अधिकारों में कर दिया ।

जिस प्रकार वल्लभचर्या जी की ८४ बैठकें हैं उसी प्रकार गो० जी को भी २८ बैठकें हैं जिनमें १६ वृज में तथा १२ देश के अन्य स्थानों पर स्थित हैं । इन बैठकों बैठकर गो० जी ने श्रीमदभागवत तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों को व्याख्या की थी ।

जीवन भर पु० सं० की विभिन्न प्रकार से उन्नति कर जब गौ० जी अपना अन्तिम समय निकट जान पड़ा तब उन्होंने सं० १६३८ के लगभग सातों पुत्रों में अपनी चल तथा अचल सम्पत्ति को विभाजित कर दिया । इनके पास इनके पिता द्वारा प्रदत्त श्रीकृष्ण की सात मूर्तियाँ (स्वरूप) थीं जो सप्त निधि के रूप में काफी मूल्यवान सम्पत्ति थी । ये सातों स्वरूप उन्होंने सातों बेटों को दिये । उन्होंने पृथक्-पृथक् रूप से उनकी सेवा आरंभ कर दी । इन्हीं सातों स्वरूपों

के कारण पु० स० के प्रसिद्ध सप्त ग्रहों अथवा सप्त पीठों का नामकरण हुआ है । प्रवीन स्वरूपों नवनीत प्रिय जी तथा श्रोनाथ जी का स्वरूप इनके जेष्ठ पुत्र श्री गिरिधर को इस अभिप्राय से दिए गए कि उन पर सातों भाइयों का समान अधिकार रहेगा ।

विट्ठलदास जी के समय में तथा कुछ बाद तक में स्वरूप जतीपुरा तथा गोकुल में विद्यमान थे । परन्तु धीरे २ औरंगजेब के अत्याचार बढ़ते गए । उसने देव मूर्तिका नष्ट भ्रष्ट कराना प्रारंभ करा दिया, इस प्रकार से स्वरूप हिन्दू राजाओं के राज्य में पहुँच गए । श्रीनारायण जी का स्वरूप भवाट्ट के नाथद्वारा में अब सुरक्षित है । ^{उन} अब सब में छः अब भी पृथक् २ स्थानों पर विद्यमान हैं ।

उपरोक्त सातों स्वरूपों में से कौन सा स्वरूप किस पुत्र को दिया गया तथा अब कहां विद्यमान है नीचे हैं -

संख्या	पुत्रों के नाम	स्वरूप	कहां है
१-	गिरिधर जी	श्री मधुरेश जी	कोटा
२-	गोविन्दराय जी	श्री विट्ठलनाथ जी	नाथद्वारा
३-	बालकृष्ण जी	श्री द्वारकाधीश जी	कांकरली
४-	गोकुलनाथ जी	श्री गोकुलनाथ जी	गोकुल
५-	रघुनाथ जी	श्री गोकुल चन्द्रमाजी	कामवन
६-	यदुनाथ जी	श्री बालकृष्ण जी	सूरत
७-	घनश्याम जी	श्री मदनमोहन जी	कामवन

ग्रन्थ रचना :

गोसाईं जी बड़े विद्वान् पुरुष थे । उन्होंने वेदशास्त्र पुराण तथा धार्मिक एवं सैद्धान्तिक ग्रन्थों का मली भांति अध्ययन किया था । यह सब उनके द्वारा रचित ग्रन्थों से ज्ञात होता है । उन्होंने ग्रन्थों द्वारा अपने पिता के सिद्धान्तों की प्रकाश डाला और पु० स० के बहू गूढ़ रहस्यों का निवारण किया इनके छोटे बड़े सब ग्रन्थ मिला कर ५० हैं । इनमें से बहुत से ग्रन्थ वल्लभाचार्य के ग्रन्थों की पूर्ति तथा टीका ग्रन्थ हैं । उनके स्वतंत्र ग्रन्थों में विद्व मंडल प्रमुख

प्रमुख हैं। जिससे उनके पूर्ण पांति का प्रदर्शन होता है। निम्नलिखित ग्रन्थ उनके प्रमुख ग्रन्थों में से हैं -

(१) अणुभाष्य का अंतिम १॥ अध्याय (२) सुबोधिनी की पूर्ति तथा टिप्पणों (३) षोडश ग्रन्थ टीका (४) निबंध प्रकाश टीका (५) विद्व मंडल (६) भक्ति हंस (७) भक्ति हस्तु (८) भक्ति निणयि (९) विज्ञप्ति (१०) श्रृंगार रस मंडल (११) स्वामिनी स्त्रोत (१२) अन्य स्त्रोत टीकारं आदि।

इस प्रकार अष्टछाप के निर्माता विद्वता में अग्रगण्य तथा श्रीकृष्ण के अन्य भक्त श्री विट्ठलनाथ जी में चन्द्र-मा के समान सदैव हिन्दी साहित्य के गगन मंडल में चमकते रहेंगे।

आधुनिक हिन्दी क्षेत्र में कृष्ण भक्त कवियों की संख्या इतनी बढ़ गई है, उनका साहित्य इतना विशाल है, उस पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव इतना विविध रूप व्यापक है कि उसके स्वरंश दिग्दर्शन कराना भी एक शोधार्थी के लिए असम्भव है। हिन्दो के कृष्ण भक्त साहित्य में अष्टछापी कवियों की रचनाएं अग्रगण्य हैं।

अष्टछाप -

श्री वल्लभ जी के पुत्र गौं विट्ठलनाथ जी ने सं० १६०२ में अपने पिता के चार शिष्यों तथा अपने चार शिष्यों को मिलाकर आठ भक्त कवियों को मंडली बनाई जो अष्टछाप के नाम से विख्यात हुई। इन कवियों का क्रम काल यह है -

- १- कुंभनदास - (सं० १५२५-१६४०)
- २- सूरदास - (सं० १५३५-१६४०)
- ३- परमानंददास - (सं० १५५०-१६४१)
- ४- कृष्णदास - (सं० १५५३-१६३६)

५- गोविन्दस्वामी - (सं० १५६२-१६४२)

६- क्षीत स्वामी - (सं० १५७३-१६४२)

७- चतुर्भुजदास - (सं० १५८४-१६४२)

८- नन्ददास - (सं० १५६०-१६४०)

श्री आचार्य द्वारा अपने सम्प्रदाय के श्रीमदभागवत को प्रस्थान चतुष्पा में गृहीत किए जानेपर अष्टछापों कवियों कृष्ण लीला के लिए श्रीमदभागवत को ही अपना प्रेरणा स्रोत बनाया । सूरदास को श्री आचार्य के अपने सम्प्रदाय में दीक्षित करने पर श्रीमदभा० का अनुक्रमणिका सुनाई । आचार्य जी जिस प्रसंग का भी वर्णन करते जाते थे, सूरदास उसी प्रसंग पर अनेकों ललित पदों को रचना करते जाते थे^१ । अष्टछाप के तृतीय कवि परमानंद दास को भी आचार्य ने अपनी अनुक्रमणिका सुनाई थी और प्रभु की लीला गान करने का आदेश दिया था पर उन्होंने भगवतोक्त भक्ति का अपनी स्थिति काल का विकट धार्मिक परिस्थितियों के लिए एक मात्र अवलम्ब स्वीकार किया था और वेदनापूर्ण भाषा उससमय की धार्मिक दुर्दशाका वर्णन किया था - देखिए :

माधा या घर बहुत घरी ।

कहन सुनन को लीला कन्हिं मयादा न हरो ।

जो गापिन के प्रेम न देखती अरु भागवत पुरान ।

तो सब ओघड पंथहि होती कथत ममिया ज्ञान -----

(सम्पादक द्वारकादास (अष्टछाप की वाता)

परोख पृ० २२

अष्टछाप के आठवें कवि नन्ददास ने भागवत पर विपुल साहित्य रच डाला उनका उल्लेख प्रंगानुसार आगे करेंगे । अष्टछापों कवियों ने दशम स्कंधीय कृष्ण लीला का विशेष वर्णन किया है । विशेषकर सूरदास ने बहुत प्रासंगिक तथा दृष्टान्त भागवत से लिए हैं ।

१- कुंभनदास - (सं० १५२५-१५४०)

अष्टकृपा के सर्वाधिक वयोवृद्ध कवि कुंभनदास थे । सूरदास के दत्तात होम से पूर्व ये ही गोवर्धन में श्री नाथ जो की कात्तन सेवा किया करते थे । उनकी रुचि अधिकतर मधुराभक्ति की ओर थी जिसका आदर्श गोपियां हैं । उनकेपद युगल लीला संबंधी हैं, श्री मदभागपत के गापी प्रेम से ये प्रभावित थे । गोपियों की रूपासक्ति के भाव इन्होंने भागवत से ही लिए हैं -

(क) नननि देखो भरि देखी नन्दकुमार ।
ता दिन ते भूलि गई हों आं आं सब हारि ।
बिन देख ही विकल भई हों आं आं सब हारि ।

(ख) कबहुं देखि होइ न ननति ।
सुन्दर स्याम मनोहरि मूरति आं आं सुख दैननु ।^१

उक्त पदों में भागवत के गोपी प्रेम कुछ प्रसंगों की कल्प देख सकते हैं ।
उदाहरणार्थ -

कुंभनदास -
----- इनका जन्म सं० १५२५ की कात्तिक वृ० ११ को गोवर्धन के निकट जमुनावती नामक ग्राम में हुआ था । पारसीली नामक ग्राम के पट्टे स इनकी थोड़ी सी पैतृक भूमि थी , उसी में अपने परिवार का निवास करते थे । कुंभन दास के अतिरिक्त प्रारम्भिक जीवन पर अपने महान चाचा का बहुत प्रभाव पड़ा इन्हें प्रारंभ से ही काव्य रचना और संगीत में रुचि थी ।

पुष्टि सम्प्रदाय की दीक्षा -

सं० १५५० में वल्लभाचार्य अपनी प्रथम यात्रा करते समय गोवर्धन गए । कुंभनदास १५५६ सं० में उनकेसेवक हुए । सं० १५३५ में श्रीनाथ जी प्राकट्य हुआ । आचार्य जी और सद्गु पांडे ने एक छोटा सा मंदिर बनवा कर वह स्वरूप वहां पधरा दिया । कुंभन दास , सद्गु पांडे और रामदास इस स्वरूप की सेवा बढ़े

भक्ति भाव से करने लगे । सं० १६०२ अष्टरूप को स्थापना में कुंभनदास तथा चतुर्भुजदास को शामिल कर लिखा गया तब तक इनको प्रसिद्धि दूर दूर तक पहुँच चुका थी ।

इनको काफी बड़स गृहस्थी थी, सात बेटे उनको ही पत्नियाँ आय साधन केवल वहीं रखती थी लेकिन कभी श्रद्धा भाव से दिया अब हुआ द्रव्य भी इन्होंने स्वीकार नहीं किया । सं० १६०२ में राजा मानसिंह वृज में आए । मानसी गंगा पर उन्होंने अपना डेरा लगाया । कीर्तन के समय कुंभनदास जी का गायन देखकर ये बहुत प्रसन्न हुए आले दिन जमुनावती जाकर उन्होंने उन्हें बहुत सा द्रव्य देना चाहा पर इन्होंने स्वीकार नहीं किया । एक बार विट्ठलनाथ जी द्वारिका पुरी का यात्रा पर उन्हें साथ ले जाना चाहते थे । उनके आदेश से चल तो दिए पर पहले पड़ाव पर श्रीनाथ जी कर विरह में व्याकुल होकर बोले (किते दिन रहे गए बिन देखे, तरलन किसोर रसिक नंद नंदन , ककुं उठति मुल देखे) गंगा जी ने यह दशा देखकर उन्हें वापस भेज दिया ।

एक बार एक भक्त ने इनका रचा हुआ पदअकबर के दरबार में सुना दिया । अकबर ने अपने सैनिकों को उस पद के रचियिता को बुलाने भेजा । वे बोले मैं तो एक साधारण कृष्णक हूँ मुझे बादशाह से कोई प्रयोजन नहीं । सैनिक बोले महाराज आपसे मिलने के उत्सुक हैं । आपके लिए घोड़ा, और पालक^१ उपस्थित हैं जैसे चाहे चलें -

चितं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु
यन्तिर्विश्रत्युत करावपि गृह्यकृत्ये
पादै पदं न चलतस्तव पादमूला
थापः कथं व्रजमथो करनाम किंवा ।^१

नो कृष्ण के समय वर्णन के^२ कुंभनदास का पंक्ति ' कुंभनदास पद्म गोवर्धनघर लाल है युवतिन सुखदाई ' यह पद भागवत के ' वनितोत्सवरूपेशात्म ' का

लिख है । मुरली के स्वरौदयकारो यभाव के विषयमें उन्होंने लिखा है -
बोलो मुरली को धुनि सुनि, तुम तन बदन रह्यो ।

लो लागन रसल लेला -

(क) कृष्ण तरनि तनया तीर रास मंडली रच्यो ।
अघर कल मुरलिका वैष्णु बाजे ।
जुवति जन जूथ संग, निर्तत ओकछुरंग ।
निरखि अभिमान तजि काम लाजे ।

(ख) गावत गिरिधरन संग, परम मुदित रास रंग ।
उरपति रममान लेत नागर नागरी ।

भागवत की रास पंचाध्यायी के आधार पर ही उपरोक्त पदों की रचना हुई है -

नथाऽ पुल्लि भाविश्य गोपीभिर्ममबालुकम्
रमे तत्तरलानन्द कुमुदामोदवामुना (भागवत १०, २६, ४५)
वल्ग्वानां नु पुराणां किंकिणिनां च यौष्णिताम्
सप्रियाणाम्भूच्छब्दस्तुपुलो रास मंडले ।

उक्तपदोंमें गोवर्धन पर्वत के लिए प्रयुक्त हरिदासवर्म शब्द में उन्होंने भागवत के हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्मः (१०, २०, १८) श्लोक से लिया है
महात्मा जी बीस में श्रीनाथ जी के दर्शन करके तुम्हारे साथ पैदल ही भूँगा ।
वहाँ राजानेउनका बड़ा आदर सत्कार किया और बीस महाराज बड़े सुन्दर
पदों की रचना करते हैं कोई नया पद सुनाइये, वे तो श्रीनाथ के विरह से
व्याकुल थे -

भक्तन की कहा सोकरी सो काम ।
आवत जात पन्हैया टूटी, विसर गयो हरिनाम ।

जाकी मुख देख दुःख लागे, ताकी कान परी परनाम ।

कुंभनदास, लाल गिरिधर बिन यह झूठाधाम ।

राजा उनकी स्पष्टवादिता से बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें एक आदरपूर्वक घर पहुंचवा दिया । कहते हैं इनका इनके एक बेटे का नाम कृष्णदास था जो गायों की रखवाली करता था । एक बार एक सिंह ने एक गाय पर एक आक्रमण किया , वह गाय की रक्षार्थ सिंह पर छूट पड़ा । सिंह ने गाय को छोड़ उसी कौसमाप्त कर दिया । उन्हें इस घटना का दुःख नहीं हुआ ।

एक बार घर जाते समय मार्ग में येही कुछ अशक्त से हो गए । पुत्र ने उन्हें घर ले जाना चाहा पर उन्होंने अन्पौर के निकट संकषीण कुंड पर गो० विट्ठलनाथ की उपस्थिति में अपना शरीर छोड़ दिया । उस समय इनकी आयु ११५ वर्ष की थी । सं० १६४० में इनकी मृत्यु हुई ।

(२) सूरदास

सूरदास का जन्म सं० १५३५ की वैसाख शु० ५ को दिल्ली के निकट वती सीहीग्राम हुआ- एक निधन सारिस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था । वे जन्मांध थे इसीकारण उन्हें अपने माता पिता का अधिक प्यार न मिल पाया था ।

भाव प्रकाश से ज्ञात होता है कि वे वात्स्यावस्था में ही विरक्त होकर घर से निकल गये । अपने ग्राम के निकट ही एक तालाब के किनारे १२ वर्ष तक रहे । वहां रह कर उन्हें गायन विद्या का अच्छा अध्यास हो गया था ,इससे इनकी सुब प्रसिद्धि हो गई थी । शकुन और गायन के कारण इनके पास द्रव्यादि भी काफी एकत्र हो गया था । एक दिन उन्होंने स्वयं अनुभव किया कि मैं यहीं रहा तो माया मोह में फंस जाऊंगा अतः सब कुछ वहीं

होड़ कर चलेगये । और मथुरा तथा आगरा के बीच गऊ घाट पर आकर रहने लगे । वहीं पर उन्होंने गायन तथा संगीत शिक्षा का पूर्ण अध्ययन कर लिया और ३१ वर्ष की आयु तक पुराणादि शास्त्रों का भी पूर्ण अध्ययन किया । वाता में लिखा है कि वल्लभाचार्य से दीक्षा होने पर उनके द्वारा नाम तथा समर्पण विधि के अनन्तर सूर के हृदय में सत्क ही भागवत ज्ञान का उदय हो गया था ।

वल्लभाचार्य जी ने शिष्यत्व से पूर्व ये गऊ घाट पर रहते थे और विनय तथा भक्ति के पदों का गायन करते थे । वाता के अनुसार उन्हें लोग उन्हें स्वामी जी के नाम से पुकारते थे । आचार्य जी चौथी बार व्रज आते समय मार्ग में गऊ घाट पर रुके और उनकी विद्वता की प्रसिद्धि सुनकर सूरदास को अपने शिष्यों सहित वहां उनके मिलने गए । आचार्य जी ने आदेश पूर्वक उन्हें अपने सामने बिठाया और भागवत यश वर्णन करने को कहा । सूर ने विष्णु के पद गाए पर वे तो भागवत लीला सुनना चाहते थे तब वल्लभ जी ने भागवत दशम स्कंध पर आधारित स्वकृत अनुक्रमिका सुनाई जब सूर के हृदय में भागवत लीला का स्फुरण हुआ ।

अब सूरदास गावधी आकर रहने लगे । आचार्य को अपने धर्म स्थापन मार्ग को मनीरम बनाने के लिए सूरदास जैसे ही गुप्त गायक तथा प्रकांड विद्वान की जरूरत थी । उनके समस्त शिष्यों में सूरदास का ही आदर था । सं० १६०२ में विठ्ठलनाथ जोने अष्टछाप स्थापना में सूर को प्रमुख स्थान दिया । आठों कवियों में सूरदास सर्वश्रेष्ठ थे ।

मूल चौरासी वाता में सूरदास को अकबर सेमेट होनी लिखी है । तानसेन ने सूरदास का एक पद गाकर दरबार में सुनाया । अकबर प्रसन्न होकर सूर से मिलने गये । सूर से अपना यश गाने को कहा पर सूर ने श्रीनथ जी के अनन्य भक्त थे -

नाहिन रह्यो मन के ठौर
नन्द नन्दन अकृत कैसे आनिये उर और
चलत, चितवन, दिवस जागत, सपन सौवत राति
हृदय ते यह स्याम मूर्ति कन न इत उत जाति -----

उन्होंने अकबर को बता दिया कि कृष्ण के अलावा वे किसी को भी अपने हृदय में स्थान नहीं दे सकते। सं० १६२३ में विठ्ठलनाथ जी के पुत्र श्रीनाथ जी के स्वरूप को मथुरा ले गए तो सूरदास जी भी साथ ही चले गए।

एक दिन अपना अंतिम समय निकट जान श्रीनाथ जी दर्शनोपरान्त तुरन्त अपने निवास स्थान पर पारसीली वापस आ गये। राजभोग के समय गौ० जी ने सूर को अनुपस्थित जान कर कारण पूछा सूचना मिली पर अवैता-वस्था में ये पड़ हैं। तुरन्त गौ० जी ने सेवकों को भेजा और स्वयं भी राजभोग के बाद वहाँ पहुँच गये और पुष्पिणी का जहाज निम्न पद गाते गाते सदैव के लिए डूब गया -

संजन नैन रूप रस माते ।
अतिसै चारु चपल अनिमौर पल पिंजरा न समाते ।
चलि, चलि जाति निकट स्त्रनन के, उलटि उलटि ताटक फँदाते ।
सूरदास अंज सुन अटके, नतरु अबहि उडि आते ।

खोज रिपोर्ट के अनुसार सूर ने २५ ग्रन्थों की रचना की पर उनमें से कई नहीं मिलते, निम्न ग्रन्थ मिलते हैं -

सूर सारावली, साहित्य लहरी, सूरसागर, सूर साठी, सूर पच्चीसी, सेवा-फल, सूरके विनय पद, भागवत भाषा, दशम स्कंध भाषा, सूरसंगर सार, सूर रामायण, मान लीला, राधारसकैलि कौतुहल, दान लीला, गौवर्धन लीला भंवर गीत, नाग लीला, व्याहली, प्रणव प्राण प्यारी आदि हैं।

सूरदास का काव्य (सं० १५३५-१६४०)

श्रीमदभागवत की सूर ने ही सर्वाधिक उपजीव्य बनाया है।

भागवत का महत्त्व प्रतिपादन -

सूर ने भागवत ?वण को मानव जीवन का सफलता के लिए आवश्यक बताया है ।

श्रीमदभागवत सुनि नहि सुवननि नैकहूँ रुचि उपजाई ।

आनि भक्ति करि हरि भक्तनि के कबहूँ धार पाई ।

भगवान की भक्त वत्सलता कीचचाँ करते हुए सूर ने भागवत के परम प्रामाण्य की स्वीकृति वेद और गीता के साथ उसका नामोल्लेख करके इस प्रकार की है-

गीता, वेद भागवत में प्रभु यी बोलि है आय ।

जन के निपट ^{निकट} सुनियत है सदा रहत हीं साथ ।

भागवत कथन -

सूर सागर में कृष्ण लीलागान में यद्यपि सूरने ऋवि० अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाया है तथापि उनका सूरसागर १२ स्कंधों में समस्त भागवत को प्रस्तुत करता है । सूर ने मूल चतुःश्लोकी भागवत के विषय में कहा है-

श्रीमुख चारि स्लोक दये ब्रह्मा को समझाई ।

ब्रह्मा नारद सौ कहै नारद व्यास सुनाई ।

व्यास कहै सुकदेव सौ द्वादश स्कंध बनाई

सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाई ।

सूर ने भागवत के अनुसार ही भागवत को वक्तृ श्रोतृ परम्परा का वर्णन किया है और भागवत रचना का कारण भी बताया है -

१- सूरसागर पद ११५ (काशी ना० प्र० सभा)

२- वही , पृ० २२५

भयो भागवत जा परकार, कही सुनौ सौ अब चितधार ।
 सतजुग लख बरस को आई, त्रेता दास सख्य कहि गई ।
 द्वापर एक सख्य को भई, कलजुग सत संवत रहि गई ।
 सौऊ कह्य सुनन को रहि, कलि मरजाद नाई नहि कही ।
 तातैं हरि करि व्यास अवतार, कौरासंहिता वेद विचार ।
 बहुरि पुरान अठारह किए, पैं तउ संगति न छाई हिए ।
 तब नारद चिनकैं ढिंग आई, भारि श्लोक कहै सुभभाई ।
 ० ० ० ० ० ० ० ०
 दासी सुन्न नै नारद भयो, दोष दासप को मिटि गयो ।
 व्यससदेव तब हरि हरि ध्यान, कियो भागवत को व्याख्यान ।

सूरदास ने सूरसागर में भागवत का प्रत्यः सभी कथाओं तथा अन्य विषयों
 का वर्णन (सूर कहें भागवतनुसारि) आदि पंक्तियाँ सहित किया है ।
 सूरदास के स्कंधात्मक संस्करण में मुख्य २ कथारं हैं -

प्रथम स्कंध -

सूर शौनक संवाद, श्रीकृष्ण^{द्वार} का गहन, धृतराष्ट्र वन गमन,
 अर्जुन का द्वारका से शोक समाचार लेकर लौटना, परीक्षित जन्म, पांडवों
 का परीक्षित कौराज्यदेकर स्वर्ग रोहणा, परीक्षित की दिग्विजय,
 परीक्षित की श्रृंगी कृष्ण का शाप, परीक्षित का शुक समागम ।

द्वितीय स्कंध -

विराट रूप वर्णन, भागवत भक्ति की प्रधानता का निरूपण, भागवत
 के लेखनावतारों की कथा ।

तृतीय स्कंध -

उद्धव तथा विदुर को भेट, भैरव विदुर संवाद, ब्रह्मा की उत्पत्ति
 वाराहवतार कथा, जपविजय कथा, हिरण्यकेश वध, कर्दमदेहिता कथा, कपिल
 देव अवतार, देवहूति कपिल संवाद ।

चतुर्थ स्कंध -

सती तथा दत्ता को कथा, ध्रुव कथा, पृथु कथा, पुरंजनोपाख्यान ।

पंचम स्कंध -

सष्म देव की कथा, जडभरत और रङ्गाणा सेवाद ।

षष्ठ स्कंध -

अजापिलोपाख्यान ।

सप्तम स्कंध -

नृसिंह वराहवतार कथा (प्रह्लाद चरित)

अष्टम स्कंध -

गज ग्राह कथा, समुद्र मंथन और देवासुर संग्राम कथा, मोहिनी अवतार कथा, वायनावतार कथा, यत्स्यावतार कथा ।

नवम स्कंध -

पुरुखा कथा, च्यवन और सुकन्या कथा, वलराम रेवती विवाह, राजा अम्बरीश को कथा, सीमरि कृष्ण को कथा, गंगावतरण को कथा, श्रीराम तथा परशुराम कथा ।

दशम स्कंध -

श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध में श्रीकृष्ण लीला का पूर्ण वर्णन, सूर ने इस स्कंध की लीलाओं के वर्णन बहुत विस्तृत किए हैं । कुछ अन्य ग्रन्थों से कृष्ण लीला संबंधी सामग्री लेकर अपने पदों द्वारा इस स्कंध का विस्तार किया है । सूर ने अपनी मौलिक प्रतिभा तथा कल्पना से भागवत की कृष्ण लीलाओं को मनोहर रूप दिया है । सूर का कहना है -

व्यास कह्यौ सुकदेव सो श्रीभागवत वखानि ।

द्वादश स्कंध परम सुभ, प्रेम भक्ति कीखानि ।

नव स्कंध नृप सो कहै, श्री सुकदेव सुजान ।

सूर कहत अब दसम की उर धरि हरि को ध्यान ।

(सूरसागर पद ६१६)

एकादश स्कंध -

नर नारायण कथा, हंसावतार कथा ।

द्वादश स्कंध -

परीक्षात को परमपद प्राप्ति ।

सूर ने भक्ति पर बहुत ज़ोर दिया है। भक्तिपरक-पदों-वर्णन यद्यपि पिछले अध्यायों में किया जा चुका है पर प्रसंगानुकूल संक्षिप्त रूप में फिर इसे देखें -

रे मन समुक्तिसौचि विचारि ।

भक्ति बिनु भगवन्त दुर्लभ, कहत निगम पुकारि ।^१

श्रीमदभागवत में कहा गया है -

एतावानाएव लोकेऽस्मिन्, पुसां धर्माः परः स्मृतः
भक्ति योगी भगवति तत्रामगृह्णणादिभिः ।

जिसप्रकार भक्त ईश्वराधीन रहता है वैसे ही ईश्वर भक्तों के आधीन रहते हैं^{१।}
देखिए सूरने स्वयं प्रभु के मुख से कहल्लाया है -

हम भक्तन के भक्त हमारे ।

धुन अजुन परतिज्ञा भरी यह व्रत शात न टारै ।

भक्तन काज लाजहिय धरि के पाइ पियादे धाऊँ ।

जहं जहं भीर परै भक्तन पै, तहै तहं जाऊँ कुड़ाऊँ ।

जौ भक्तन से बैरकरत है, सो निज वैरो भैरौ ।

दखि विचार भक्त हित कारन, हांकित ही रथ तेरौ ।

जोसँ जीत भक्त अपने की हारै हारि विचारौ ।

१- अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज आदि, श्रीमदभागवत, ६-४

२- सूरसागर पद, २१२

इन सबके अतिरिक्त सूरने नाम महिमा, गुरु महिमा, सत्संग, वैराग्य, आदि विषयों पर भी विचार व्यक्त किए हैं। इतने विस्तार में हम नहीं जायेंगे।

(३) परमानंददास (१५५०-१६४१)

पुष्टि सम्प्रदाय में इनकी रचनाओं को तथाइन्हें स्वयं भी सागर की उपाधि दी गई है। जार अनुक्रमणिका द्वारा भागवत रूपी समुद्र श्रीआचार्य जी ने परमानंद के हृदय में धरया।^१ इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि इन्होंने श्रीकृष्णलीला गान किया है। पुष्टि सम्प्रदाय के अनुसार इन्होंने भगवतोक्त प्रेमभक्ति कृष्ण की चार अवस्थाओं, बाल, कुमार, किशोर, पीगण्ड लीलाओं के माध्यम से प्रतिपादित किया है -

पीगण्ड, बाल, किशोर, गोप - लीला सब गाई।
अवरज कहा यह बात, हुतो पहिली जु सखाई।
नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमांच रैन-दिन।
गदगद गिरा उदार, स्याम सोभा भोज्यो तन।

डा० दोनदयाल गुप्त ने सारंग शब्द के विषय में लिखा है -

परमानंद दास जी के जितने पद भी उपलब्ध हैं, उनमें दो तीन पदों में ही लेखक ने कवि के नाम के साथ सारंग शब्द देखा है। अन्यथा सारंग शब्द पदों में नहीं आता। इतनी बात अवश्य देखने में आता है कि परमानंद दास के आधे से अधिक पद सारंग राग में लिखे गए हैं।^२

अपने जीवनवृत्तान्त के विषय में इन्होंने कुछ नहीं लिखा इसके लिए हमें वैष्णवन की वाता और हरिरायकृत भावप्रकाश पर ही आधारित है -

१- अष्टकाप (सम्पा० कंठमणि शास्त्री) पृ० १४१

२- अष्टकाप और वल्लभ सम्प्रदाय (दोबदयाल गुप्त) पृ० ११३

चौरासी वैष्णव की वार्ता में परमानंद दास को कन्नौज का रहने वाला काव्य कुंज ब्राह्मण बतलाया है। यहाँ मत सबको मान्य है। विद्यदा विभाग कांकरौली को सीज के अनुसार इनका जन्म सं० १५५० को मार्गशीर्ष शु० ७ सोमवार को हुआ था^१। पुष्टि सम्प्रदायकों प्रसिद्धि के अनुसार ये आयु में वल्म जी से १५ वर्षों छोटे थे। अन्य प्रमाणों के अभाव में हमको वही जन्म सं० मान्य है। वल्म दिग्विजय और श्री द्वारिकानाथ जोके प्राकट्य वार्ता की संगति से उनका शरणकाल सं० १५७६ सिद्ध होता है। निधन का भी कोई पुष्टि प्रमाण नहीं मिलता पर वार्ता के अनुसार इनका देहावसान सूरदास, कुमन दास के पश्चात् विटेठलनाथ जी से पूर्व हुआ। इनके निधन पर गोस्वामी जी ने कहा था कि दोनों सागर नहीं रहे अर्थात् सूरदास और परमानंद वल्म सागर १६०६ ई० के रचयिता सूर तथा परमानंददास थे। इनके देहावसान का सम्म अन्मानतः १६४१ सं० में बताया जाता है।

चौरासी वार्ता और भाव प्रकाश दोनों से ही प्रकट है कि श्री आचार्य जो के शिष्य होने से पूर्व वे काव्य संगीत में निपुणता प्राप्त कर चुके थे। इनके विद्या गुरु कौन थे किन साधनों से इतनी विद्वता ग्रहण की, इस विषय में कुछ भी वृत्तान्त नहीं मिलता।

वार्ता के अनुसार इनका विवाह नहीं हुआ, सदैव अविवाहित रहे। गोवर्धन के निकट सुरभी कुंड पर श्याम तमाल वृक्ष के नीचे अपना स्थायी निवास स्थान बनाया। वहीं उनका देहावसान हुआ। सूर को तरह इन्होंने भी सद्गुणों पदों की रचना की। इनका काव्य भी उच्च कोटि का है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में इनके काव्य पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया।

भाव प्रकाश से ज्ञात होता है कि उनके^{उनके} उर्वर^{उर्वर} समय में कन्नौज में महान

दुर्भेदा पड़ा । वहाँ के मुखियाने दंड स्वरूप इनका सारा धन ले लिया ।
इससे दुःखी होकर पिता ने पुत्र से कहा, ' मैं तुम्हारा विवाह नहीं कर पाया
हूँ, विपत्ति आ गई, अब हमें पर्याप्त धन एकत्रित करना चाहिए ' । इनका
उत्तर था - भरे विवाह को चिंतान करो क्योंकि मैं अपना विवाह करना नहीं
चाहता । धन एकत्र करना भी व्यर्थ फिर नष्ट हो सकता है, अब तो जो
भी कुछ आप ही उससे अतिथियों का आदर सत्कार कर भगवत भक्ति करते
हुए जीवन निवहि काँजिए ।

हरिराय जी के विवरण से ज्ञात होता है कि ये बचपन से ही
संगीत तथा विद्या में बहुत निपुण थे । अपने बनये हुए पदों की गाते हुए समय
श्रोतागण मुग्ध हो जाते थे । इनके अनेको शिष्य बन गये । जिनसे उन्हें निवहि
के लिए पर्याप्त आय होने लगी ।

प्रयागवास और वल्लभ जी का शिष्यत्व -

सं० १५७६ अर्ध में २६ वर्ष की आयु में मकर संक्रान्ति परये प्रयाग
गर, वहीं मन रम जाने से वहीं पर रहने लगे । इनके कीर्तनों से इनकी प्रसिद्धि
काफ़ी बढ़ गई और बहुत शिष्य बन गए । उन्हीं दिनों यमुना के दूसरी
ऊँल नामक स्थान पर वल्लभाचार्य जी का निवास था । आचार्य जी के सेवकों
तक परमानंद जी के कीर्तनों की चर्चा पहुँची । ये एकदश वाँले दिन सारी
रात जागकर भजन कीर्तन किया करते थे । एक स्वामी जी का सेवक कपूर जल-
घरिया ठाकुर जी की सेवा के पश्चात् परमानंद दास जी के कीर्तन भजन को
सुनने के लिए चल दिया । शास होने के कारण घाट पर नाव न थी अतः वह
तैर कर यमुना पार कर गया, सारी रात भजन कीर्तन का अमनंद लेता रहा
सुबह जब सब शिष्यों के चले जाने परमानंद जी को कुछ फ़पकी सा आ गई
और उन्हें स्वप्न में वल्लभाचार्य जी के पास जाने की ~~वेणु~~ प्रेरणा मिली ।
प्रातः होते हो वे ऊँल के लिए चल दिए (संध्या आदि के बाद आचार्य जी
ने परमानंद जी से भगवद यश गान करने का आदेश दिया तब उन्होंने यह पद

जिय की साथ जिय में रही री ।
 बहुरि गोपाल देखन नहि पार, विलपत कुंज अहीरी ।
 एक दिन सौ जु सखी इन्ह मारग, बैचन जात दही री ।
 प्रीति के लिए दान पिस मोहन, मेरी बांह गही री ।
 बिन देखे छिन जात कल्प सम, बिरहा अनल दहीरी ।
 परमानंद स्वामो बिन दरसन, नैन न नींद बही री ।

और भी कई विरह के पद गार जब बाल लीला का वर्णन करने को कहा तो उन्होंने अपनी अज्ञता प्रकट कर दी तब आचार्य जी ने उन्हें 'स्वकृत भागवत पर रचित अनुक्रमणिका सुनाई' । इसका उनपर अद्भुत प्रभाव पड़ा और वे वहाँ अडिल में ही रहने लगे । ये ज्येष्ठ की शु० १२ को आचार्य जी के शिष्य हसर ।

आचार्य जी के प्रभाव तथा सत्संग के प्रभाव से इन्होंने बाल लीला पर अनेकों पद बनाए और श्री नवनोत प्रिय जी के सामने गाते रहे । श्री आचार्य जी को उनकी पद रचना और गायन शैली बहुत पसंद थी । आचार्य जी अडिल से व्रज जाने लगे तो अन्य शिष्यों के साथ ये भी चल दिए । मार्ग में कन्नौज में इन्होंने अपने निवास स्थान को दिखाया और स्वामो जी का बड़ा आदर सत्कार किया और निम्न पद गाकर सुनाया -

हरि, तेरी लीला की सुधि आवे ॥
 कमल नयन मन मोहिनी मूरति मन मन चित्र बनावे ।
 एक बार जाहि मिलत मया करि, सौ कैसे विसरावे ।
 मुख मुस्कान बंक अवलोकन, चाल मनोहर भावे -----

देहावसान -

इस पद को सुनकर आचार्य जी भावावेश के कारणमूर्छित हो गए । व्रज आकर परमानंद जी को आचार्य जी नर श्रीनयन जी की सेवा में विमुक्त कर

दिया । वहाँ ये ऐसैरमें कि समस्त जीवन वहीं व्यतीत कर दिया । सं० १६०२ में आचार्य जी अष्टछाप को स्थापना की, उसमें इन्हें भी शामिल किया। अंत में १६४१ सं० में जन्मष्टमी के दूसरे दिन भाद्रपद कृ० २६ के मध्यकाल में अपने निवास स्थान सुरभि कुंड पर उन्होंने ६१ वर्ष की अवस्था में शरीर छोड़ दिया ।

काव्य रचना -

पुष्टि सम्प्रदाय में सम्मिलित होने के पश्चात् आचार्य जी के आदेशानुसार कृष्ण लीला के पदोंकी रचना की । इनका कविता में परमानंद, परमानंद प्रभु, परमानंद स्वामी, परमानंद दास और दस परमानंद की छाप मिलती है।

इन्होंने भी दशम स्कंध की अनेक लीलाओं का गायन किया पर इनके काव्यमें कोई क्रम नहीं मिलता और उनके काव्यको मुक्तक काव्य कहा जा सकता है । वृजभाषा काव्यमें सूर तथा परमानंद दास वात्सल्य रस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं । श्री सोमनाथ गुप्त ने सूर की तुलना में इनके विषय में लिखा है - 'अभी तक तो सेहरा सूरके सर है, सम्भव है परमानंद जी का काव्य संग्रह प्राप्त हो जाने पर विद्वानों की निणय करने में कुछ कठिनाता हो' ।

इस कथन को अतिशयोक्तिपूर्ण भी कहा जा सकता है क्योंकि यह निश्चित है कि सूर साहित्य की कोई भी कवि रचना समता नहीं कर सकते फिर यह कह सकते हैं, अष्टछाप में इनका भी महत्वपूर्ण स्थान है । अष्टछापों कवियों में सूरदास और नन्ददास के बाद इनका नाम ले सकते हैं । परमानंद दास ने बाल लीला के साथ साथ श्रृंगार भक्ति के विविध अंगों का भी रचना की है । इस प्रकार की रचनाएं यद्यपि सभी अष्टछापों सभी कवियों में मिलती हैं परन्तु सूरदास नन्ददास और परमानंददास की रचनाएं सर्वश्रेष्ठ हैं । परमानंद दास के काव्य में श्रृंगार भक्ति के संयोग और वियोग दोनों पदोंका वर्णन किया है । इनके विरह के पदों में अत्यंत उत्कृष्ट कोटि के हैं ।

इनके रचे हुए निम्न ग्रन्थ हैं - परमानंद सागर, परमानंद दास के पद,
दान लीला, उद्धव लीला, ध्रुव चरित्र, संस्कृत उत्तममाला ।

(४) कृष्णादास : व्यक्तित्व -

कृष्णादास का जन्म सं० १५५३ में गुजरात के विलीचरा नामक ग्राम में हुआ था । इनके पिता गांव के मुखिया थे । इनका स्वभाव प्रारंभ से विरक्त भवव काथा । माता पिता कुछ बाधा में डालना चाहते थे तो खाना पीना छोड़ देते थे अतः उन्होंने सोच लिया कि बड़े होकर यह विषय विरक्त जीवन ही व्यतीत करेगा अतः विवाह करना व्यर्थ है ।

इनके विषय में एक घटना प्रसिद्ध है कि एक बार इनके गांव में एक बनजारा आया उसने वहाँ सारामाल बेचकर १३-१४ हजार रुपया एकत्र कर लिया । रात हो जाने के कारण वह वह उसी ग्राम में रुक गया । कृष्णादास के पिता ने कुछ आखिरी ले जाकर उसका सारा पैसालुटवा लिया और रात : कात्ल होते हुए जब वह मुखिया के पास फरियाद लेकर आया तो उसे गांव से बाहर निकलवा दिया (कृष्णादास १२ वर्षी के थे । अपने पिता के इस कुकृत्य का उस बच्चे पर बहुत प्रभाव पड़ा और उस बनजारे के पास गया बोलता तुम जाकर राजा से फरियाद करो, ये गांव के मुखिया यानि मेरे पिता ने लिया है, साक्षी रूपमें, मैं गवाही दूंगा । कृष्णादास को गवाही से उसके पिता को वह रुपया देना पड़ा ।

इस बात पर बाप और बेटे में वैमनस्य हो गया और कृष्णादास विषय पिता को नमस्कारकर विरक्त भाव से तीर्थ यात्रा करते हुए व्रज में आ गए । उन्होंने दिनों श्रीनाथ जी के काम में श्री आचार्य जो अद्वैत से व्रज में आए हुए थे । उन्होंने दिनों गऊ घाट पर सूरदास को दोहना दो था । आचार्य

सूरदास के साथ कुछ दिन मथुरा रहे फिर गोवर्धन पर आ गए। वहीं पर सं० १५६७ में कृष्णदास १३ वर्षों की आयु में आचार्यजी के शिष्य हो गए। वल्लभ दिग्विजय के अनुसार मथुरा के विश्राम घाट पर हरिराय कृती भाव प्रकाश के अनुसार गोवर्धन पर आचार्य जीने कृष्णदास को अपनी शरण में ले लिया था। कृष्ण दास ने गुजराती भाषा की अपने गांव में सीखी थी पर व्रज भाषा व्रज में पुष्टिमागीय विद्वानों से संगीत व ज्ञान को शिक्षा ग्रहण की। ये हस्ताव किताव में प्रारंभ से कुशल थे। अतः आचार्य जी पुष्टि सत्त्व सम्प्रदाय में सम्मिलित होने श्रीनाथ जी की भेंट सक्रिय करने का काम उन्हें सौंप दिया। बाद श्रीनाथ जी के मंदिर का अधिकारी नियुक्त कर दिया। इनके गृहस्थ जीवन का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता अतः ऐसा अनुमान होता है कि ये जीवन पर्यन्त अविविध अविवाहित ही रहे।

श्री नाथ जी के मंदिर की व्यवस्था -

श्रीनाथ जी प्रारंभिक पुजारी विरक्त बंगाली वैष्णव थे। वे लोग पुष्टि सम्प्रदाय के छह सिद्धान्तानुसार मंदिर की व्यवस्था नहीं कर रहे थे। भट पूजा में आये हुए द्रव्य का दुरुपयोग करते थे। कृष्णदास का जब ये कार्य भार सौंपा गया तो वे इस अवस्था से बहुत परेशान हो उठे। वल्लभाचार्य जी तथा गोपीनाथ जी के समय तक इसी व्यवस्था चलती रही। इन दोनों के देहावसान पर कृष्णदास ने अडिल जाकर विट्ठलनाथ जी से बंगालियों को मंदिर से निकालने की कहा। विट्ठलनाथ पिता की व्यवस्था को भंग करना नहीं चाहते थे। पर जब उनके द्रव्य के दुरुपयोग की बात सुनी तो उन्हें निकालने पर राजो हो गए। बंगालियों को लिखित आज्ञा पत्र दिया और दो एक पत्र आगरा - मथुरा के राज कम्चासरियों के छवत नाम भी लिख दिए।

कृष्णदास ने पत्र लेकर वापस आए और बंगालियों से व्यवस्था छोड़ देने की कहा। वे लोग इस पर राजो न हुए और पत्र की अवहेलना कर अपना वही कार्य करते रहे। कृष्णदास चुप होकर उचित अवसर की प्रतीक्षा करते रहे। देव योग से एक दिन गोवर्धन पर्वत के नीचे

बनो हुईं उनका। कौपड़ियों में आग लग गई, वे सारे मंदिर से निकल आग बुझाने गए। इसी बीच कृष्णादासने अपने आदिभिरोंको मंदिर में नियुक्त कर दिया। वे आगरा मथुरा के राजकर्मचारियों के पास गए पर कृष्णादास के प्रभाव से कहीं भी उनका दाल न गली। कृष्णादास का प्रभाव बहुत बढ़ गया। यह घटना १६०० सं० के उपरान्त १६०५ सं० के बीच की है।

इसके बाद श्रीनाथ जी की सेवा राजसी ठाठ से होने लगी। मंदिर के विभिन्न कार्यों के लिए कर्मचारी नियुक्त किए गए। मुखिया, पुजारी, कीर्तनिया, भंडारी, रोकड़िया, भेटिया, समाधानी, पखावजी, ग्वाला, दर्जी, सुनार, खाती आदि के कर्तव्य तथा उनके नेग आदि सब निश्चित कर दिए गए। कृष्णादास को आज्ञा से ही सब काम होता था। गौसाईं जी भी कर्मों मंदिर में जाते तो उन्हें केवल मूर्ति पूजा सेवा और श्रृंगार से हो मतलब था, कोई मंदिर की व्यवस्था केबारेमें बात भी करता तो वे उसे कृष्णादास के पास ही भेज देते थे। इससे कृष्णादास की प्रसिद्धि और प्रभाव खूब बढ़ा हुआ था। कहीं भी जाते तो सेवक, कर्मचारी और रथ, गाड़ी, घोड़ा आदि सब चलते थे।

विट्ठलनाथ जी से विरोध -

सं० १५६६ में गोपीनाथ के देहावसान पर विट्ठलनाथ जी अपनी योग्यता और सामम्प्रदायिक अनुभव के कारण लोकप्रिय थे। विट्ठलनाथ जी के बाद उनके पुत्र श्री पुरुषोत्तम जी आचार्य पद के अधिकारी थे पर क्योंकि वे केवल १२ वर्ष के थे अतः ये हा सारा काज संभालते थे। अतः लोग इन्हें को आचार्य पद आसनि करना चाहते थे।

गोपीनाथ जी को विधवा पत्नी अपने पुत्र को आचार्य गद्दी दिलाना चाहती थी। कृष्णादास भी भी यही न्यायोचित समझते थे। नियमानुसार गद्दी स्थित आचार्य के होते हुए किसी दूसरे को मंदिर की सेवाका अधिकार नहीं है अतः कृष्णादास ने पुरुषोत्तम जी को सेवार्थ आमंत्रित किया और विट्ठलनाथ

जी को मंदिर में आने से रोक दिया । विट्ठलनाथ जी ने इसका कोई विरोध नहीं किया , वे दुःखी मन से श्रीनाथ जी को सेवा से वंचित होकर पक्षवके पास के एक गाँव में जाकर रहने लगे ।

सं० १६०५ की पीण शु० ५ से सं० १६०६ की आषाढ़ शु० तक विट्ठल जी श्रीनाथ जी के दर्शनों से वंचित रहे । इनके बड़े बेटे गिरिधर ने यह शिकायत मथुरा के हाकिम से की, उन्होंने सिपाहों भेजकर कृष्णादास को बंदी करा लिया । यह खबर सुनते ही बंधन मुक्त होने तक अन्न जल ग्रहण न करने का निश्चय कर लिया । इस बात से कृष्णादास को अपनी भूल पर बड़ा पश्चाताप हुआ और दामाहित्य उनके पास गए और उन्हें आते देख विट्ठल ने खड़े होकर उनका स्वागत किया और पिछली बातें भूल जाने को कहा ।

रसिकता और कलाप्रियता -

कृष्णादास कला के पारखी तथा रसिक थे । एक बार वे मंदिर के किसी काम से आगरा गए वहाँ उन्होंने एक वैश्या को नृत्य गान करते हुए देखा । ये उस पर मुग्ध हो गए । उसे अपने साथ लेआए और स्वरचित पद उसे बताए । उन्हें भी गान करने का मंदिर में आदेश दिया और सच्चे मन उसे कृष्णादास ने श्रीनाथ जी को अर्पित कर दिया । उसने मंदिर में यह पद गाया -

मो मन गिरधर छवि पर भटक्यो ।

ललित त्रिभंगो आन पर चलि, गयो तन्हाई ठठक्यो ।

सजल स्याम घन चरन नील हैं, फिरि चित आनन न भटक्यो ।

कृष्णादास कियो प्रान न्योछावर, येतन जा सिर परक्यो ।

कहा जाता है कि इसके बाद पद के समाप्त होते ही उस वैश्या का देहान्त हो गया और उसका स्वरूप श्रीनाथ जी के ही दिव्य रूप में विलीन हो गया । अर्थात् श्रीनाथ जी ने अपने भेंट स्वरूपकार कर ली ।

देहावसान -

कहा जाता है कि इनके देहावसान के कुछ दिन पूर्व इन्हें एक व्यक्ति ने ३०० रु० एक कुआ बनाने के लिए दिया । २०० रु० तो कुआ में लगा दिया, १०० रु० एक वृक्षान के नीचे गाढ़ दिए । एक दिन कुए का निरीक्षण करते समय ही अचानक उसमें गिरकर उनकी मृत्यु हो गई । कहा जाता है कि इन्होंने १०० रु० की बेईमानी की थी पर यह बात न्यायोचित नहीं जवती । इतने बड़े भक्त सेवक १०० रु० के लिए निष्कत ठिगठ ठिगठ बिगाड़ेंगे । कहा जाता है कि कुए में गिरकर इनकी मृत्यु नहीं हुई अतः इन्हें 'प्रेम योनि' प्राप्त हुई पर विट्ठलनाथ जी के उद्योग से इनकी मुक्ति हो गई ।

काव्य संग्रह - बाल लीला ?

नंद को लाल वृज पालने मूलै ।

अलक अलकावली, तिलक गौराचना, चरन, अंगुष्ठ मुख किलकि फूलै ।

नैन अंजन रस-मेख, अभिराम उठि, कंठ केहर करज किंकिनि कटि भूलै ।

कृष्ण दास नाथ रसिक प्रिय गिरवर धरन-निरखि नागर देह गेह भूलै ।

(२) जे अलक जे लाल गावर्धनधारी, इन्द्र मान भंग कीनी ।

वाम बाहु राख्यो गिरि-नामक दासन को सुख दीनी ।

सात दिवस-सुरपति पचि हारयो, गो सुख सींग न भीनी ।

कृष्णदास स्वामी मोहन के , पाप परयो मति हीनी ।

छवि वर्णन -

लाल तैरे चपल नैन अनियारै ।

नन्दकुमार, सुरति रस भीने प्रेम रंग रतनारै ।

कछु असीरीभी चकित चहुं प्रियसि, नव वर जीवन तारै ।

मानै सरद कमल पर खंजन, मधुप अलक धंधरालै ।

- (२) अद्भुत ओट स्याम स्यामा का, विरहत वृन्दावन चारी ।
 रूप कान्ति बल वैभव महिमा, रहत वैद श्रुति मति हारी ।
 पदहि विलास कुनित मनि नूपुर, कनित मेखला कुनकारी ।
 गावत हस्तक वैद दिखावत नांचत, गति मित्तवत न्यारी ।
 किलकत हंसत कनाखियन बिबि चित्तवत, प्यारे तब प्रीतम प्यारी ।
 कंठ बहू धरि मिलि गावत है, ललितादिक सखि बलिहारी ।

राधा वर्णन -

ब्रज में रतन राधिका गौरी,
 हरि लीनों वृष्णभक्तु भजन में नंद सुवन तन चोरी ।
 गुंफा अलक सहित कुसुमावलि और सरंग पत्र ठोरी ।
 पिय भुज कंध क धरै सोभित मनो धन दामिनी की जोरी ।
 कालिंदी तट कैलि कुलाहल, सघन कुंज बन खोरी ।
 कृष्णदास प्रभु गिरिधर नागर, नागरि नवल कुसौरी ।

रास -

नांचत रास में गोपाल संग, मसदत गोकुल की नारी ,
 तरुन तमात स्याम लाल, कनक बैलि प्यारी ।
 चदि नितंब नूपुर कछि लारल बंक ग्रीवा ।
 राग तान मान सहित, वैनु गान सीवा ।
 ग्राम जल क न कन भरत, सुभां रंग रेनु सौहैं ।
 कृष्णदास प्रभु, गिरिधर वृज तन मन सौहैं ।

(५) गौविन्द स्वामी (सं० १५६२- १६४२)

इनका जन्म सं० १५६२ में वर्तमान भरतपुर राज्यान्तर्गत आंतरी ग्राम में हुआ था । वे सनाढ्य ब्राह्मण थे । इनके माता पिता के वृत्तान्त के विषय में कोई विशेष सामग्री हमें नहीं मिलती । इतना निश्चित है कि वे विवाहित थे और उनकी एक लड़की भी थी ।

इनकी शिक्षा के विषय में भी कुछ ज्ञात नहीं होता । साधारणतः ये पढ़े लिखे अश्व्य थे । काव्य तथा संगीत शास्त्र का इन्होंने विधि पूर्वक अभ्यास किया था । वाता के इत्तेखानुसार ये उच्च श्रेणी के विद्वान और गायक थे ।

पुष्टि सम्प्रदाय की दीक्षा -

गो० द्विठलनाथ जी के असीक्विक चरित्र और उनकी भगवद् भक्ति से आकर्षित होकर सं० १५६२ में ये गोकुलआर और गो० के सेवक बन होकर पुष्टि सम्प्रदाय में शामिल हो गए । इनके साथ इनकी बहिन कान बाई भी रहती थी जो स्वयं द्विठलनाथ जी की सेविका थी ।

पुष्टि सम्प्रदाय दीक्षातीपरान्त वे महावन से गौवर्धन चले गए, वहीं पर स्थायस् रूप से रहने लगे । गौवर्धन में श्रीनाथ जी की सेवा, भक्ति और कोतन स्वयं सार्थक करने लगे । गौवर्धन के निकट कदंब वृद्धों का एक मंदिरम उपवन अब भी गौविन्दास की कदमखंडी के नाम से प्रसिद्ध है ।

अकबरी दरबार के श्रेष्ठ वर गायक, तानसेन भी इनके गायन पर मुग्ध हो गए वे इनसे मिलने आते थे और इनसे गायन कला की कुछ शिक्षा भी प्राप्त की थी । गो० ने अष्टरूप में सं० १६०२ में इन्हें भी सम्मिलित कर लिया ।

वाता के कई प्रसंगों से ज्ञात होता है कि भक्ति सनसा भाव का थी

तथा इनका श्रीनाथ जी की हास्य विनोद करने का भी उल्लेख मिलता है ।
इससे ज्ञात होता है कि श्रीनाथ जी बाल रूप में इनके साथ खेला करते थे ।
इससे सिद्ध होता है कि ये परम भक्त और अच्च कौटि के महात्मा थे ।

अनन्य भाव -

ये गोवर्धन में रहते हुए सांसारिक संबंधों को भूलकर एक निष्ठ भाव से श्रीनाथ जी की सेवा में रहा करते थे । वाता से ज्ञात होता है कि घर छोड़ने के काफी लि बाद इनकी लड़की इनके पास मिलने आई और काफी दिन साथ रही किन्तु उन्होंने उससे एक बार भी बातचीत नहीं की थी । कारण पूछने पर उत्तर दिया कि वे अपने हृदय में श्रीनाथ जी के अतिरिक्त किसी को भी स्थान देना नहीं चाहते ।

वाता में लिखा है कि एक बार वे प्रातःकाल यशोदाम घाट पर बैठे हुए भैरवी राग गा रहे थे । उस समय गान का ऐसा उमा बंधा कि राहगीर भी चलते लड़ ही गये । उन्हीं में राजा अकबर भी छिपे वेष में थे । उनके मुख से वाह वाह धुनि सुनकर वे गाते गाते तुरन्त बंद हो गये और उठ कर चल दिए । मन में कहते ली, ये राग अब भावना के काम का नहीं रहा । यपन के सुनने के कारण भ्रष्ट हो गया है अतः फिर कभी भी उन्होंने भैरव राग नहीं गाया ।

देहावसान -

वाता में गोविन्द स्वामी का अंतिम काल विषयक कथन नहीं हुआ है । श्री गिरिधर लाल जी के १२० वचनामृत में एक नामक ग्रन्थ ज्ञात होता है कि गौसाईं विठ्ठलनाथ जी का लीला संवर्ण सुनकर वे इतने शोक संतप्त हुए कि उन्होंने उसी समय गोवर्धन की एक कन्दरा में अपना देह छोड़ दी । पु० ३० का मान्यता के अनुसार इनका निधन काल १६४२ कीफाल्गुन मास की कृ० ७

को हुआ था । इनके निधन वाली कन्दरा में अब भी स्मृति चिन्ह के रूप में एक चबूतरा बना हुआ है ।

काव्य रचना -

इनकारवा हुआ कोई स्वतंत्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है , ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने श्रीनाथ जी के कीर्तन स्वरूप केवल स्फुट पदों की रचना की थी । इनके द्वारा रचित २५२ पदों का एक संग्रह सम्प्रदाय में विशेष प्रसिद्ध है । इसके अतिरिक्त कुछ अन्य पद भी मिलते हैं । खोज अब ६०० पद प्राप्त हो सके हैं । इनके काव्य का अधिकांश भाग राधाकृष्णके शृंगारात्मक लीलारं है । वैसे हर विषय पर कुछ पद मिलते हैं -

उपालम्भ -

देखो जु मोहन, काहू अब मेरी ईदुरी दुराई ।
सूँध सूँध वेगि क्यों न माने, यह कीनी कोने चतुराई ।
कछु जु परस्पर करत सेना बैनो, चाहि मोहि क्यों न देहु बताई ।
सबै सीमिटि यहाँ कहत कीन सौं, ताकी फँद पकरें किन धाई ।---

(२) अबहीं या ढाँटा ते हारी ।
गौरस लेत अटक जब कीनी हँसत दत फिरि गारी ।
निसि दिन हू घर घेरो करत है, बालक जूझ मझारी ।
गोविन्द बलि इदि कहति ग्वलिनी, ये बात कैसे जात सहारी ।

रास -

आजु गोपाल खूबो है रास देखत होत जिय हुलास ।
नाचत वृषाभान, सुता सँग रंग भीने ।
गिडि गिडि तक थंग थंग, तत तत, तत, थई थई ।
गावत के दारों दख राग, सरस तान लीने ।

फूले बहु भांति फूल परम सभग जमुना कूल ।
 मलय पवन बहल गगन, उडूपति गति कीने ।
 गाविन्द प्रभु करत केलि भामिनी रस-सिन्धु भलि ।
 जे जे सुर सवद करत, आनंद रस कीने ।

हिडोला -

दंपति ^{फरसल} ~~हूँ~~ सुरंग हिडोरे ।
 गौर- स्याम तन अति क्वि राजत ।
 मानो घन दामिनी जाति भोरे ।
 विद्रुम खंब जटित नग पटली ।
 कनक डांडो सोभा देत चहुं ओरे ।
 गाविन्द प्रभु को देखि ललितादिक ।
 निरखि हंसत बन नवल किशोरे ।

रूप वर्णन -

वदन कमल ऊपर बैठे री मानो जुगल खंग री ।
 ता ऊपर माननों मोन चलत अरु, ता पर अल कानलि गुंजारी ।
 अरु ऐसी क्वि लागैमानों उदित रवि री, निक्क फरसली कानकंद
 व मंजरी ।

गाविन्द बलि बलि ~~धन~~ सोभा कहाँ लौ बरनों, सु मदन कौटि
 दल लंज री ।

(२) विमल कदंब मूल अवलंबित, ठाड़े पिय भानु सुता तट ।
 सोस पिटारी, कटि लाल काश्चिनो, उपरीना फरहत पीत पट ।
 परिजात अवतंस सरित सखि, ससि सेहरों बनि अलक लट ।
 विमल कपोल कुंडल की सोभा, मंदहास, जीते कौटि मदनभट ।

वाम कपोल वाम भुज पर धरि, मुरलिया बजावत तान विकट ,
गोविन्द प्रभु श्रीदामा प्रभृति सखा, करत प्रसंसा जै नागर नट ।

विविध लीला वर्णन -

मोहन देही वसन हमनरे ।

जाय कहागों व्रजपति जै के आगे करत अनोति लला रे ।

तुम व्रजराय कुमार लाडिले, होसबके प्रान पियारे ।

गोविन्द प्रभु पिय दासी तिहारी, सुन्दर घोषा कुमारे ।

(२) चार पहर कीन रस रंग, असन नैन रति रसम सै अंग ।

लाल रस मोने हो ।

अधरन की रंग फीकी लागत, मिटि गयी तिलक लिलाट ।

लाल रस मोने हो ।

कैला सिमिल , वरषस सिथिल मये सब गात ।

लाल रस मोने हो ।

गोविन्द प्रभु को छवि निरखि निरखि कै, रंग दिवस भई बाल ।

लाल रस मोने हो ।

(३)

लहरिया मेरे भोजेगी, वह देखी री आवत मेह ।

सुरंग रंगन रम्याँ हे सांवरी, अबहि घटेगी नेह ।

सधन कुंज में चली सांवरे, ओट पोताम्बर देह ।

गोविन्द प्रभु पिय रस चलेगी तो बहु विधि बढ़े सनेह ।

(६) श्रीतस्वामी (सं० १५७२-१६४२ तक)

श्रीतस्वामी का जन्म १५७२ के लगभग मथुरामें हुआ था । आरंभ

में शिव मतानुयायी थे । वे मथुरा के चौबे और तार्थ पंडाये । तथा उनके यहाँ यजमानों पुराहितों का काम होता था । वे अकबर के मंत्री बीरबल के पुराहित थे । अपने प्रारंभिक कालमें ये बड़े दुष्ट प्रकृति के पुरुष रहे । जब वे २० वर्ष के थे, उस समय में ब्रज में गौ० विट्ठलनाथ जो के अलौकिक व्यक्तित्व की चर्चा थी । उन्होंने अपनी पाटी के साथ उनसे मजाक करना चाहा । एक छोटा रु० और एक फूटा नारियल लूक लेकर गोकुल गए और वहाँ उनसे मिलकर वह रु० व नारियल भेंट किया । गौ० जी के चमत्कार से वह छोटा रु० और नारियल ठोक हो गए । उन्होंने होत स्वामी के आगे ही नारियल तुड़वाया , उसमें से सुन्दर धिरी निकली और रुपया देकर बाजार से उसके पैसे मंगवा लिए । यह चमत्कार देखकर होत स्वामी को अपने किए पर बड़ा पश्चाताप हुआ और उनको चित्तवृत्ति बदल गई । वे पु० स० में सम्मिलित हो गए और १५६२ ई० में उन्होंने पु० स० की दीक्षा ग्रहण की ।

एकनिष्ठ भाव और निस्पृह जीवन -

बीरबलराजा के पुराहित होने के कारण इन्हें उससे वार्षिक वृत्ति मिलती थी जिससे उनके परिवार का पालन होता था । एक बार वे वृत्ति के लिए बीरबल के पास गये वहाँ बातचीत के दौरान जब बीरबल ने गौ० जी के देवत्व पर संदेह प्रकट किया । विट्ठलनाथ जी को के तो वे साक्षात् परमात्मा समझते थे। अतः रुष्ट होकर अपने निवास स्थान पर आ गए और वृत्ति को सद्मा के लिए त्याग दिया । अष्टसत्तान का वार्ता में लिखा है कि जब इसकी सूचना विट्ठलनाथ जी को पहुँची तो इन्होंने इनके परिवार निवहि के लिए इन्हें एक पत्र देकर लाहौर भेजना चाहा पर ये तो इसे भीख समझते थे अतः नहीं गए । तब गौ० जी ने अपने ब दूत के द्वारा पत्र भेज कर लाहौर से इनके लिए वार्षिक वृत्ति नियत हो गई । इस घटना का इनके मन पर औ भी अधिक प्रभाव पड़ा।

दीक्षा लेने के उपरान्त ये स्थायी रूप से गोवर्धन के पास पूंछरी स्थान पर एक श्याम तमाम वृद्धा के नीचे रहने लगे और वहीं पर रहते हुए श्री कृष्ण नाथ जी के भजन कीर्तन में अपना समय बिताते थे ।

काव्य तथा संगीत में उनकी प्रारंभ से ही रुचि थी । पु० सं० में सम्मिलित होने पर उन्हें अपनी प्रतिभा को निखारने का सुअसर प्राप्त हुआ और वे प्रमुख कवियों में गिने जाने लगे । १६०२ सं० में अष्टछाप की स्थापना में गौ० जी ने इन्हें भी सम्मिलित कर लिया ।

देहावसान -

गौ० जी का लीला संवरण सुनकर वे इतने शोक संतप्त हुए कि उन्होंने भी अपने निवास स्थान पर अपना शरीर छोड़ दिया , उनकी आयु तब ७० वर्ष की थी । उस समय पर इनका स्मारक भी बना हुआ है ।

काव्य रचना -

उनका रचा हुआ कोई ग्रन्थ नहीं मिलता । इससे अनुमान होता है कि उन्होंने कीर्तन के स्फुट पदों की रचना की थी । इनके पद भी बहुत कम संख्या में मिलते हैं । इनकी कविता भक्तिपूर्ण है, भाषा सरल और सीधी है । वैसे इनकी कविता उत्कृष्ट कौटि की नहीं कही जा सकती । कुछ उदाहरण देखिए-

बाल लीला -

प्रात भयो, जागो बाल मोहन सुखदाई ।
जननी कहै बार बार उठी प्रान के आधार ।
मेरे दुःख हार स्याम सुन्दर कहलाई ।
दूध दहो माखन, धृत, मिश्री, भवा, बदाम ।
पक्वान भांति विविध रस मलाई ।
कीत स्वामी गोवर्धन घर लाल भोजन कर ।
ग्वालन के संगे बन, गोचारण गाई ।

- (२) गौवधन गिरि पर ठाढ़ लखत ।
 चहुं दिसि धनु चरनि धावत, तब नव मुरली मुख लखत ।
 मो मुकुट बनमाल मरजनी, कुंकुम फूल सिर लखत ।
 नव उपहार लिए सब ग्वालिन, निरख दृंग चल हंसत ।
 कोत स्वामी बसकियो चाहत है, संग सखा गुन गूँसत ।
 झूठहि मिस करि हत उत चाहत, श्री विट्ठल मन बसत ।

आसक्ति -

- मेरी अखियन के भूषण गिरिधारी ।
 बलि बलि जाऊँ कबी लो कवि पर, अति आनंद सुखकारी ।
 परम उदार चतुर चिन्तमनि, दरस परस दुःखहारी ।
 अतुल सुभाव तनक तुलसी दल, मानत सेवा भारी ।
 कोत स्वामी गिरिधरन तिसद जस गावत है कुल नारी ।
 कहावरन गुन गात नाथ के , श्री विट्ठल हृदय बिहारी ।

- (२) अरी हों स्थाम रूप लुभानी ।
 मारग जाति मिले नंदनंदन, तन को दसा भुलानो ।
 मोर मुकुट सीस पर बाँकी, बाँकी चितजन सोहे ।
 ओं ओं भूषण बने सजनी, जो देखे सो मोहे ।
 मो तन मुरिके जल मुसिकाने, तब हों छाकि रही ।
 कोत स्वामी, गिरिधर की चितवनि जाति न कहू कही ।

रास रंग -

- आयी कुतुराज साज वंचमी बसंत आज ।
 बौरे द्रुम अति अनूप अब रहे फूली ।

बैलो पट पीत माल, सैत पीत कुसुम लाल ।
 उडवति सत्त स्याम भाव भँवर रहै भूली ।
 रजनि अति भई स्वच्छ, सरिता सब बिमल पनछ ।
 उडगन पति अति अकास वरणात रस भूली ।
 जति० छिन्न सति सिद्ध-साधु जित तित ते उठै भाग ।
 विमल सभी तपसी भई, मनि मन गति भूलो -----

- (२) बादर भूम भूम बरसन लागे ।
 दामिनी दमकति, चौकि चमकि स्याम, धन की गरज सुनि जा ।
 गोपी वन छोड़ि द्वारै ठाडी, नारि नार मोजित मुख देखति अनरणौ ।
 कीत स्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल औत प्रीत रस पागे ।

भक्ति भावना विषयक -

आगे कृष्ण, पाछे कृष्ण इत कृष्ण, उत कृष्ण ।
 नित देखी नित कृष्ण री माई री ।
 मोर मुकट, कुंडल किरनि क धई सुभा ।
 मुरली मधुर तान सेत नई नई री ।
 काछनि काछे लाल, उपटना पोत पर ।
 तिहिं काल देखत ही सोभा थकित भई री ।
 कीत स्वामी गिरिधारी विट्ठल वपुधारी ।
 निरखत छावै आं आं ठई री ।

- (२) श्रीकृष्ण कृपालु, कृपानिधि, दीनबन्धु दयाल ।
 दामोदर, बनवारी, मोहन, गोपीनाथ, गुपाल ।
 राधारमन, बिहारी नटवर, सुन्दर जसुमति बाल ।
 माखन चौर गिरिधर मनहारी, सुखकारी नन्दलाल ।
 गौचरी गौविन्द, गोपपति भावन मंजुल ग्वाल ।
 कीत स्वामी सोई अब प्रगटे कमलि में वल्लभ ललल ।

(७) चतुर्भुज दास (सं० १५८७ - १६४२)

जन्म तथा आरंभिक जीवन :

इनका जन्म सं० १५८७ के लगभग गोवर्धन के पास जमुनावती ग्राम में हुआ था । वे अष्टरूप के वयोवृद्ध कवि कुंभनदास के सबसे छोटे पुत्र थे । इनकी जाति गौरवा क्षत्रिय थी । कः दूसरे भाई लौकिक विष्णयोन्मुख थे । कृष्णदास हब द्वैत पुत्र थे जो गीर्णों को रक्खाली करते थे । कुंभन दास ऐसा पुत्र चाहते थे जो उन्ही की तरफ श्री नाथ जी की सेवा में लगा रहे । चतुर्भुज दास को आरंभ से ही भगवानेन्मुख देखकर बहुत संतुष्ट हुए । चतुर्भुजदास को गौ० विट्ठलनाथ जी का आशीर्वाद जन्म से पूर्व ही प्राप्त था । अतः कहते उनके जन्म के ४१ वें दि० ही गौ० जी ने इनको गुरुमंत्र दीक्षा और ब्रह्म संबंध करा दिया था । ये बचपन गोवर्धन के बास गौ० के आस पास ही रहते थे । अतः इन पर कुंभन दास जी का विशेष स्नेह था । बातों साहित्य से ज्ञात होता है कि जब गौ० विट्ठलनाथ जी अपने ज्येष्ठ पुत्र का जन्मोत्सव कर गोकुल से गोवर्धन गए तब कुंभनदास की प्रार्थना पर उन्होंने चतुर्भुज दास को १० वर्षी आयु में पु० सं० की दीक्षा दी ।

चतुर्भुजदास अपने पित के आज्ञाकारी पुत्र थे । खेती बाड़ी में पितर का सहयोग देते थे । श्रीनाथ जी की सवारी प्रतिदिन मंदिर में पिता के साथ जाते थे । प्रारंभ ही कीर्तन में सम्मिलित होने के कारण थोड़ी आयु में ही उत्तम पदों की रचना करते ली थे । छोटी आयु से सुन्दर पदों के निर्माण तथा अपने सरल निष्कपट व्यवहार तथा श्रीनाथ जी की एकनिष्ठ सेवा के कारण ये गौ० जी के कृपापात्र शिष्य बन गए । १६०२ सं० अष्टरूप की स्थापना के समय गौ० जी ने इनको भी उसमें सम्मिलित कर लिया ।

अपने पितर की तरह इन्होंने भी आयास गृहस्थ जीवन स्वीकार किया । बातों से ज्ञात होता है कि पत्नी का स्वर्गवास होने पर गौ० जी की आज्ञा से इन्होंने एक सजातीय विधवा से विवाह कर लिया । इनका पुत्र राघवदास

था जो गौ० जी का शिष्य और पु० सं० का एक सेवक था । मृत्युपर्यन्त इनका जीवन श्रीनाथजी की एकनिष्ठ सेवा में व्यतीत हुआ । ये अपने जन्म स्थान जमुनावती में रहा करते थे, वहीं से श्रीनाथजी के दर्शन और सेवा के लिए जाया करते थे । एक गौ० जो के अष्ट पुत्र गिरिधर जी आनाथ जी के स्वरूप की मथुरा ले गए । यह वियोग का अधि इन्होंने बड़ी कठिनाई से व्यतीत की ।

देहावसान -

सं० १६४२ में विठ्ठलनाथ जी का देहावसान हुआ , उस समय ये जमुनावती में ही थे । समाचार वह पाते ही गौ० जी के दर्शनकर गौ० जी के स्तुति पद गाते हुए रुद्र कंठ पर एक झमेली के वृक्ष के नीचे अपने शरीर को छोड़ दिया ।

काव्य रचना -

इन्होंने कीर्तन के स्फुट पदों की ही रचना की थी । इनके पदों के तीन संग्रह - कीर्तनावली, कीर्तन संग्रह और दाा लीलाकांकारोली के विद्या विभाग में सुरक्षित हैं । ये संग्रह इनके या किसी अन्य इसी नाम के कवि द्वारा किए गये होंगे । खोज रिपोर्ट में चतुर्भुजदासकृत मधुमालती, भक्तिप्रताप, द्वादश यश और हितज्ञ की मंगल नामक कई ग्रन्थों का उल्लेख आया है पर हमारे विचारानुसार अष्टछापों चतुर्भुजकृत न होकर इसी नाम के किसी अन्य कवि द्वारा रचित हैं ।

चतु० के पदों में भक्ति भावना और श्रृंकार को अच्छी छटा मिलती है । इन्होंने अपने पदों में कृष्ण जन्म से गोपी विरह की वृज लीला का भाग गायन किया है ।

बाल लीला -

अपने बाल गुपालि रानी बबल पाली कुलावै ।
 बारंबार निहारि कमल मुख, भ्रुवदित मंगल गावै ।
 लटकन भाल, मुकटि मिस विदुक, कठुला कंठ बनावै ।
 सद माखन मधु सानि, अधिक रचि अपने करहि चखावै ।
 कबहुँक सुरंग खिलीना ले लै, नाना भांति खिलावै ।
 निरखि मुस्कात सांवरी। द्वै दंतियां दरसावै ।

(८) नन्ददास (सं० १५६०-१६४०)

इनका जन्म सं० १५६० के लगभग सूकर दैत्र (सौरा, जि० एटा) के पास रामपुर ग्राम में हुआ था । ये सानंद्य ब्राह्मण थे । इनके पिता का नाम जोवराराम था । इनके दो पुत्र नन्ददास और चन्द्रहास हुए । आत्माराम तुल्सीदास के चाचा थे । दोनों नन्ददास तथा तुल्सीदास ने साथ ही सौरा में रहकर वहाँ के विख्यात विद्वान नृसिंह पंडित से शिक्षा ग्रहण की ।

नन्ददास के पिता का देहान्त उनके बचपन में ही हो गया था अतः ये अपनी दादी के पास सौरा में रहे वहीं संस्कृत शिक्षा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया, साथ ही साथ काव्य रचना और संगीत कला में भी विशेष रुचि थी अपने शिक्षा गुरु के अभाव से आरंभ में ये तुल्सीदासको मांति रामचक्र थे । इनके हनुमान और रामविष्णु इसी समय के लिखे हुए हैं । ये रचनाएं प्रौढ़ता का अभाव और काव्य शैथिल्य होने के कारण नन्ददास की सिद्ध होती थी।

एक बार एक दल द्वारका जाने वाला था, इनका हृदय भी द्वारका जाने को मचल उठा । इन्होंने अपने बड़े भाई तुल्सीदास जो थे अनुमति मांगी उन्होंने कहा सोच लो मार्ग में अनेकों संकटों का सामना करना पड़ेगा । पर ये न माने चल दिए । वह दल कुछ दिनों में-म-के लिए मथुरा रुक गया । उससे

अलग होकर ये अकेले ही द्वारका यात्रा को चल दिये। मार्ग भूल कर सिंहनंद ग्राम में पहुँच गए। वहाँ एक रूपवती स्त्री पर अत्यंत मोहित हो गए। रात दिन उसके घर के चक्कर लगाते। घर वाली ने हर प्रयत्न किया वहाँ से हटाने का, पर वे कहीं मानने वाले थे न अतः उस स्त्री को लेकर उसके घर वाले व्रजयात्रा पर चल दिए और अपनी सारी कथा गो० विठ्ठलनाथ जो से कही उन्होंने नन्ददास को बुलाया और उपदेश दिया देते रहे उसके जब जाऊँ उपदेश से इनका सारा मोह दूर हो गया और उनसे पु० सं० को दीक्षा लेकर पुष्टिमार्ग में सम्मिलित हो गए। उस समय इनकी आयु अनुमानतः १७ वर्ष की थी। पु० सं० की दीक्षा के बाद तो इनका जीवन क्रम ही बदल गया वे पूणभिवद् भक्त बन गये और वहीं पु० सं० विद्वानों के सत्संग से तथा कथा वाता साहित्य चर्चा से अपनी प्रतिभा को निखारने लगे। शीघ्र ही अपना काव्य शिष्टा को उन्होंने विकसित किया और ये पु० सं० के प्रमुख कवियों में गिने जाने लगे।

सूरदास के सत्संग में रहते वरुण के कारण इनका विद्याभिमान दूर हो गया और इनके हृदय में देव्य भाव का संचार हुआ और मर्यादा भक्ति के स्थान पर पुष्टिभक्ति का उदय हुआ। साम्प्रदायिक जन श्रुति सेज्ञात होता है कि सूरदास को उन्हें अपने साथ रखने से अनुभव किया कि अभी इनमें सांसारिक भावना शेष है, अभी वैराग्य दृढ़ नहीं हुआ अतः उन्हें गृहस्थाश्रम में प्रवेश होने का अनुमति दी और कहा जब तक तुम दाम्पत्य जीवन का उपयोग न कर लोगे तब तक मुझे लीला रस का सुख नहीं मिलेगा। उनको आदेश से वे वापस और ग्राम रामपुर चले गये, वहाँ कमला नामक एक कन्या से विवाह कर लिया जिससे उन्हें कृष्णदास नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उन्होंने अपने ग्राम का नाम बदल कर श्यामपुर रख लिया और एक श्यामसुन्दर नामक तालाब भी बनवाया। कुछ समय गृहस्थ में रहकर वे सं० १६२४ के लगभग विरक्त नाव से फिर गोवर्धन चले गये।

गोवर्धन आने पर ये मानसा गंगापर स्थायी रूप से रहने लगे, वहीं अपना शेष जीवन उन्होंने श्रीनाथ जी के भजन कीर्तन में लगा दिया। अन्त में

सं० १६४० के लग्गभा मन्नसी गंगा के किनारे एक पीपल वृद्धा के नीचे इन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया ।

काव्य रचना -

अष्टछाप के अन्य कवियों को भांति इन्होंने कीर्तन संग्रहों के स्फुट पदों की तो रचना का थी, खोज रिपोर्टों के अनुसार उनके नाम से अनेक ग्रन्थों का भी उल्लेख मिलता है । जिनसे कहीं ग्रन्थ उनके द्वारा रचित नहीं है । हमारे मतानुसार इनके निम्न ग्रन्थ हैं -

१- अनकार्थी मंजरी, २- मानमंजरी, ३- रस मंजरी, ४- रूपमंजरी, ५- विरह मंजरी, ६- प्रेम बारह खड़ी, ७- स्यमम सगाई, ८- सुदामा चरित्र, ९- रुक्मणि मंगल, १०- भंवर गीत, ११- रास पंचाध्यायी, १२- सिद्धान्त पंचाध्यायी १३, दशम स्कंध भाषा, १४- गोवर्धन लीला, १५- पद्मावली ।

इन ग्रन्थों में इनके रचना काल का कोई उल्लेख नहीं मिलता अतः काल के अनुसार इनका वर्गीकरण करना कठिन है । डा० दीन दयाल गुप्त का मत है कि रस मंजरी इनकी आरंभिक रचना है । और दशमस्कंध रास पंचाध्यायी, भंवर गीत एवं सिद्धान्त पंचाध्यायी उनको अंतिम रचनाएं हैं लेकिन यह भी पूर्णतः चित जान नहीं पड़ता ।

पु० सं० को दोढ़ा से पूर्व इन्होंने कुछ स्फुट पदों की रचना की दोढ़ा के उपरान्त ये सूरदास के संसर्ग में रहे, उस समयके पदों में सूरदास का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है । कुछ प्रमाणों के अनुसार इनका कोई ग्रन्थ रचा हुआ नहीं है ।

अष्टछापी कवियों में सूरदास और नन्ददास ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने पद रचना के साथ-साथ विभिन्न शैलियों में कव्यरचना की है । सूर को

अधिकांश रचना पदों में अधिक शैलियों में कम हैं पर नन्ददास जी की शैलियाँ अधिक पदों में कम हैं। छोटे छोटे पद जैसे रोला चौपाई आदि लिखने की इन्हें विशेष रुचि थी। इनके काव्य प्रमुख विशेषताएँ दो थीं, एक भाषा की मधुरता और शब्दों की सजावट। एक उक्ति इसी कारण प्रसिद्ध हो गई - और कवि गडिमा, नन्ददास गडिमा *। भाषा कौश का इन पर विपुल भंडार था।

अष्टछापी कवियों में सूर के बाद इन्हें ही अधिक प्रसिद्धि मिला है। इनका टकासाली काव्यव्रजभाषा साहित्य का शृंगार है। इनमें माधुर्य और प्रसाद का प्रधानता है। प्रत्येक पद मानों अंगूर का गुच्छा है जिसमें मीठा रस भरा हुआ है, शब्दों में कोमलता है। पंक्तियों में न तो सयुंताकार है न लम्बे चौड़े समास। शब्दों की ध्वनि ही अर्थ निर्देश करती है। इनका धार्मिक महत्त्व भी कुछ कम नहीं है। इन्होंने अपने रस पूर्ण कथन में पु० स० के सिद्धान्तों को सफलता पूर्वक व्यक्त किया है। इस दृष्टि से इनकी रचनाओं में रसमंजरी रूप मंजरी, विरह मंजरी, भंवर गीत, रास पंचाध्यायी और सिद्धान्त पंचाध्यायी विशेष उल्लेखनीय हैं।

दृष्टिमागितर वैष्णव सम्प्रदायों के कृष्णभक्ति कवि-

जहाँ वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछापी कवियों ने बहुधा श्रीमदभागवत को बाल, कुमार, तथा पीगण्ड लीलाओं का विशेष गान किया है, वहाँ चैतन्य राधावल्लभ आदि सम्प्रदायों ने प्रमुखतया श्रीमदभागवत को किशोर, कृष्ण-चरित माधुर्यलीला को जिसका चरम विकास गोपियों की प्रेम लक्षणा भक्ति में दृष्टि-गोचर होता है। अपनी रस साधना का प्राण स्पंदन बनाया है। यद्यपि गोपी प्रेम अन्य पुराणों, प्राचीन संस्कृत काव्यों और अपभ्रंश की काव्य परम्पराओं के

प्रभाव से (बालान्तर) में एकान्तिक होते होते केवल राधाकृष्ण के युगलप्रेम में आबद्ध हो गया । और राधावल्लभ सम्प्रदाय तक आते आते उसमें राधा का प्राधान्य हो गया, तब यह बात निश्चित रूप से कही जासकती है कि कृष्ण प्रेम की तन्मयो अवस्था और उसमें तत्स्पशी गांभीर्य की स्वरूपोपलब्धि में सभी वैष्णव कवियों^१ का आदर्श श्रीमदभागवत का गोपी प्रेम हो है । यद्यपि भागवत में राधा कहीं स्पष्ट नामोल्लेख न हैकर एक विशिष्ट गोपी के रूप में उसका वर्णन आया है । राधा का चरम विकास तो राधावल्लभीय सम्प्रदाय में ही दृष्टिगोचर होता है । राधावल्लभीय और हरिदासीय सम्प्रदाय में नित्य विहार और निकुंजलीला आदि की कल्पना श्रीकृष्ण भागवतोक्त मधुररस प्रधान रास लीला से ही प्रभावित है । जिस प्रकार श्रीमदभागवत में रास लीला के श्रवणादि का फल हृदय रोग, कामनानाश बताया गया है^२ वैसे ही राधावल्लभीय सम्प्रदाय में रास लीला को कामजयी लीला माना जाता है^३ । श्रीकृष्ण की मधुर लीला को जिन वैष्णव सम्प्रदायों में विशिष्ट महत्त्व दिया गया है, वे ये हैं -

- १- निम्बककी सम्प्रदाय ।
- २- चैतन्य सम्प्रदाय ।
- ३- हितहरिवंश राधावल्लभ सम्प्रदाय तथा
- ४- हरिदासी का सखी सम्प्रदाय ।

इन सम्प्रदायों में कृष्णकी लीलाओं के धाम वृन्दावन का महत्त्व है -

१०-११ : श्री भट्ट स्वं हरिव्यास देव - (सं० १५६५-१६००)

केशव काशमीरो के शिष्य श्रीभट्ट और उसके शिष्य हरिव्यास देव^{व्यास} जो हुए श्री केशव जी के समान ही प्रतापी महात्मा थे । नि० सं० का उनके द्वारा विशेषा विशेषा विकास हुआ । पंजाब को और ही इन लोगों का निवास स्थान था, उसी और हिन्दू धर्म पर संकट छाया हुआ था । इसी कारण

हरिव्यास जी धर्म रक्षार्थ संतों के समूह को लेकर भ्रमण करते थे। इनके प्रचार का जनता पर महान प्रभाव पड़ा। इनके शिष्य प्रशिष्य निम्बाकीय कहलाये^१। कहलाने के बदले हरिव्यासी कहलाने लगे। पंजाब प्रान्त में वैष्णवों देवी को बहुत मान्यता है। पहले उस देवी को बकरे बलि रुकवा दो थी और देवी के गले में भी तुलसी की माला पहनवा दी थी^२। तब से यह देवा इनकी शिष्या मान ली ली गई और वैष्णवों देवी के नाम से प्रसिद्ध हो गई। इस घटना से पंजाब के पहाड़ों भाग तक निम्बाकीयों का विस्तार हो गया। हरिव्यास जी ने उनकी शिष्य बनाए, उनमें द्वादश शिष्य प्रमुख थे। इनके षष्ठःषष्ठ नामों पर बारह द्वारे अर्थात् बारह शिष्य शाखारं प्रचलित हुई।

हरिव्यास जी की संस्कृत भाषा में ये रचनाएं कही जाती हैं। सिद्धान्त कुसुमांजली, सिद्धान्त रत्नावली, तत्त्वार्थ पंचक, निम्बाकी स्तोत्र की टीका और पंच संस्कार निरूपण। पांडित्य के विचार से रत्नावली की विशेष मान्यता है।

सिद्धान्तरत्नावली ने निं सिद्धान्तों की सरल भाषा में सबके समझ के योग्य बनाने के लिए उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की। यह वैदान्त कामधेनु दशश्लोकी का विस्तृत व्याख्या है। उसकी विषय निरूपण शैली तार्किक तथा दार्शनिकता पूर्ण है।

भक्ति के प्रसंग में सरथ, दास्य अङ्ग के बाद माधुर्य रस भक्ति को सर्वोत्तम बनाया गया है। इससे इसकी रसिकाचार्यता स्पष्ट होती है। इससे भी अधिक ये व्रजभाषा की महान रसपूर्ण महावाणी के कर्ता के रूपमें अधिक प्रसिद्ध है।

१- हरिव्यासयशामृत रूपरसिकदेव कृत, पृ० ७४

२- मनसिच्छामंजरी, छन्द सं० ५

श्री भट्ट जी के एक शिष्यन संकषणि देव थे । इनकी परम्परा के वैष्णव भी कहीं-कहीं मिलते थे । इनके द्वारा विरक्ति ' वैष्णव -सुर द्रुम मंजरी नाम वृत आधार ग्रन्थ से इनकी गंभीर विज्ञता प्रकट होती है । श्रीभट्ट जी ने ही सर्वप्रथम वैधी और भक्ति प्रधान नि० सम्प्रदायमें रत्नोपासना का समावेश किया और राधकृष्णकी प्रेम लीला का वर्णन करते हुए मुगल-शासक नामक सरस ग्रन्थ लिखा जो महाबन्नी नाम से प्रसिद्ध है । इन्होंने ब्रज श्री कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति रूपमाधुरी, व्रज माहत्म्य, वैष्णुमाधुरी आदि का सुन्दर वर्णन किया है।

ब्रज महिमा -

भूमि मोहिनी में जानी ।
मोहन कुंज मोहन वृन्दावन, मोहन जमुना पानी ।
मोहन नारि सकल गोकुल की बोलति अमृत बानो ।
श्रीभट्ट के प्रभु मोहन नागर, मोहिनी राधा रानी ।^१

रूपमाधुरी -

अंग अंग दुति माधुरी, बिम्बि मुख चन्द्र चकौर ।
अटके श्रीभट्ट दृष्टि में नटवर नवल किसौर ।

रूपासक्ति तथा वैष्णुमाधुरी -

बंसो त्रिभंगी लाल को, मनमोन की बंसी ।
कहा अन्तर धरि दुरि रहे, छई मूरति घनसी ।
हरि देखे बिनु क्यों रही, घोरज नहीं तनसो ।
जै श्री भट्ट हरिस बस भई, जुनि धुनि नैकु मनसो ।^३

१- ब्रजमाधुरी सार (श्रीभट्ट) पृ० ११२

२- वही, पृ० ११४

३- वही, पृ० ११३

(१४) परशुराम देवाचार्य -

श्री हरिव्यास जी के शाखा विस्तारक बारह शिष्यों में परशुराम जी की कूटी संख्या है। इस शाखा का सम्मान अधिक है। क्योंकि इस गद्दी स्थान में स्वयं शालग्राम विराजते हैं और राजस्थान के सब राजा इस शाखा के आचार्यों को सम्मानित करते रहे हैं।

जीवनवृत्त -

इनके जीवन-वृत्त संबंधी अभी तक कोई ऐतिहासिक आधार उपलब्ध नहीं है। जनश्रुति और कविता के आधार पर इतना पता चलता है कि वे जयपुरराज्य के उत्पन्न हुए थे और गौड़ ब्राह्मण थे^१। पिता का नाम वासु-देव था। सं० १६४४ वि० में आपका आविर्भाव हुआ। बालकपन में ही इनके पिता का देहावसान हो गया था। अतः इन्हें घर से विरक्ति हो गयी और ये हरिव्यास जी के शिष्य हो गए।

खाजा मुहनुद्दीन चिश्ती के अवसानोपरान्त अजमेर मुसलमान धर्म का प्रमुख केन्द्र बन गया। कालान्तर में धर्म प्रचारकों ने जनता पर अत्याचार प्रारंभ कर दिया जिसका आस पास के प्रदेशों पर बुरा प्रभाव पड़ा। प्रसिद्ध है कि हरिव्यास जी के समय में वहाँ पर सलीमशाह चिश्ती बख नामधारी कोई भवन साधु महान् अत्याचार कर रहा था। अजमेर के निकट ही पुष्कर क्षेत्र में हिन्दू पुरातन तीर्थ था। वहाँ पर इनके अत्याचार अधिक थे अतः दुःखी लोगों ने व्रज आकर हरिव्यास जी से अपनी मुक्ति की प्रार्थना की और गुरुदेव ने परशुराम जी को अत्याचार रोकने के लिए वहाँ भेजा। व्रज परित्याग से व्याकुल देखकर गुरुदेव ने इन्हें समझाया -

१- ब्रह्म कर्म कारिणी गई, गई जनेऊ जाति।

अब हमहुर राम जनु, परसा परम जुजाति। (परशुराम सागर दोहा खंड सं० वियांगी विश्वेश्वर दोहा सं० १६६३)

२- नाम माहात्य, वाणी अंक पृ० ३७

श्री गुरु शब्द समझि से, बीले, चालि तहि पखाणौ ।
ताकी भजन परम की भेदे, पहुँचे ठीर ठिकाणौ ।^१

गुरु आदेश से दल बल सहित ये पुष्कर क्षेत्र पहुँच गए । वहाँ उन्होंने सलपि चिश्ती को अपनी सिद्धि द्वारा परास्त कर दिया । इस प्रकार धीरे २ इनका जमना गया । राजस्थान के अनेक राजा, महाराजा, सरदार, अमीर, इनके दर्शनार्थ आने लगे । वह स्थान परशुरामपुरी कहलाने लगा । पुष्कर क्षेत्र में परशुराम देव द्वारा पुनुरुद्धारित यह आचार्य पीठ अब निम्बार्की सम्प्रदाय का सर्व प्रथम पीठ माना जाता है ।^२

परशुराम जी के लोला संवरण के अनन्तर उनके शिष्य हरिवंश देवाचार्य परशुरामपुरी की गद्दीपर प्रतिष्ठित हुए । उन्होंने अपने गुरुदेव की स्मृति में उनकी समाधि तथा एक स्थान का निर्माण कराया जो परशुराम द्वारा के नाम से प्रसिद्ध है । इस समाधि के एक द्वारे पर एक लेख है जिसमें उसका निर्माण काल सं० १६८६ वि० अंकित है । अतः अनसमझन किया जाता है कि समाधि इनके निर्माण काल के बाद १०-१२ बनी होगी अतः इनका अवसान काल सं० १६८० वि० के आस पास का माना जाता है । ये महाकवि के समसामयिक माने जाते हैं।^३

रचनारं -

मित्र विनीत में इनके द्वारा रचित पाँच ग्रन्थोंका उल्लेख है । परशुराम सागर एक विशाल ग्रन्थ है । यह उनको समस्त वाणियों का संग्रह है । इसमें नीति, उपदेश, सत्संग, संत स्वभाव, निरूपण, माया का त्याग, गृहस्थ धर्म, भागवत शरणागति, सन्यास, गेरुआ वस्त्र धारण करना, कलियुग, दास भाव, ज्ञान कर्म, गुरु सेवा आदि अनेक धार्मिक विषयों पर रचनारं है ।

१- परशुराम सागर, दोहा सं० १२५

२- भागवत सम्प्रदाय बलदेव उपाध्याय, पृ० २३०

३- वही

राधावल्लभ सम्प्रदाय के कवि

गोस्वामी श्री श्रीहितहरिवंश (सं० १५५६-१६०१)

ये स्वयं श्री राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। इन्होंने शुद्ध रासोपासना अपनाया और प्रेम लक्षणा भक्ति का प्रचार किया। सम्प्रदाय में इन्हें साक्षात् श्री कृष्ण वंशों का अवतार कहा जाता है।^१ इन्होंने अपने सम्प्रदाय में राधा को विशेष महत्व दिया है। इस सम्प्रदाय में राधावल्लभ होने पर ही कृष्ण का महत्व है स्वतंत्र नहीं। इन्होंने अपने स्वतंत्र स्तोत्र ग्रन्थ में सुधासीनिधि में अपना आराध्या राधा का अत्यन्त भक्ति विह्वल होकर स्तवन किया है। २७० श्लोकों-कोई ग्रन्थ में राधा राधा का अत्कृष्ट प्रेम, निकुंज लीला, रास लीला, वृन्दावन धाम, एवं यमुना का सरस वर्णन किया है। इनका दूसरा संस्कृत ग्रन्थ 'यमुनाष्टक' है। जिसमें यमुना का माहात्म्य और स्तुति गान है। इनके दो ब्रजभाषा ग्रन्थ हित चौरासी एवं स्फुटवाणी हैं। इनमें रासलीला, वन विहार, प्रेम आनन्दता आदि विषयों का वर्णन है। देखिए उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं -

(अ) सामान्य तत्व - भक्ति वैराग्य -

(क) तू बालक नहि भदयी समानप कहि कृष्ण भजत नही नाके ।
अति सुमिष्ट तजि सुमिन पय मनबाँधत तंदुल जल फीके ।
जय श्री हितहरिवंश नरकगति दुभर यमदारे करियत न कछोके ।
भज अज कठिन मुनीजन दुलीभ पावत दयों जु मनुज तन भोके ।^२

(ख) मानुष की तन पाय भजी व्रजनाथ की ।
दवाँ लै मूढ़ जरावत तथ की ।^३

१- ज्यातयुगमकसत्प्रेमसाक्षादंशोस्वासाकः । उद्धृत भूमिका (विज्ञान) श्रीहित

२- श्री हितसुधा सागर, स्फुट वाणी, पृ० १४६

३- वही, पृ० १५१

नाम महिमा तथा गुरु महिमा -

जय श्री हितहरिवंश विचारिके, मनुज दहे गुरु चरन गहि ।
सकहि तो सब परपंच तजि, कृष्ण कृष्ण गोविन्द कहि ।^१

सत्संग और प्रेम लक्षणाभक्ति -

तनहि राखि सत्संग मैं, मनहि प्रेम रस भै ।
सुख चाहत हरिवंश हित, कृष्णकल्पतरु सेव ।^२

(आ) विशेष तत्व -

लोला गान श्रो कृष्ण जन्मोत्सव (नन्दमहोत्सव)
आनंद आज नन्द के द्वार
दास अनन्य भजन रस कारन प्रगटे, लाल मनोहर ग्वार ।
० ० ० ० ० ० ०
युवति यूथ मिलि गोप विराजत, बाजत पयव मृदंग सुनार ।
जय श्री हितहरिवंश अजिर वर, बाधिन दग्ध मधु दस दुग्ध-
हरद के सार ।^३

रास लीला -

इन्होंने रास लीला पर उधर उधर विकीर्ण कुल सत्रह पद लिखे हैं।
‘रास समय में’ श्रीमदभागवत के शरदरास के अतिरिक्त बसंत रास का भी वर्णन
है। हित चौरासी में वर्णित रास का सारांश यह है, ‘श्रीकृष्ण ने कालिंदी
तट पर रास रचा है। रसमयी मुरली एवं स्वगीय संगीत का ना हो रहा है।

१- श्री हित सुधा सागर, स्फुट वाणी, पृ० १५८

२- वही, पृ० १५२

३- वही, (श्रीमच्चतुरपाशी जो) पृ० १६१-२२५

जाति पुष्प खिल रहे हैं । शरद कुतु को पूणिमा को रात्रि है । चहुं
और स्वच्छ चंद्रिका विखरी हुई है । नखशिख शृंगार किए गोपिकारं लीला
अब विग्रह धारी श्याम सुन्दर को लीचन भर देख रही हैं । ओ कृष्ण और
उनको प्रियतमा व्रजांगनारं गले में बाँधें डाले कपोल स्पर्श रास कर रही हैं ।

मधु कुत में वृन्दावन में छठे चारों और आनंद ही आनंद है । चंवक
बकुल, केतकी, और नानारूप पुष्प खिल रहे हैं । कीकिल और शुक कलरव कर
रहे हैं । यमुना का जल स्थिर हो गया है । देवगणा प्रसव होकर पुष्प वर्णा
कर रहे हैं । आगे कु उदाहरण दृष्टव्य हैं -

(१६) श्री दामोदास सेवक जी -

(सं० १५७७-१६१०)

श्री हितहरिवंश जी की चतुराशी (चौरासी) का रहस्योद्घाटन
करने वाले नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है । माधुर्य भक्ति हो सोलह प्रकरणों में
में विभक्तित सरवक वाणी का महान प्रतीकाय है । अन्य भाव से इस रीति
को अपनाना ही उनका उद्देश्य था । भागवत में वर्णित गोपियोंकी अन्य
माधुर्य भक्ति ही इनकी रसरिति का प्रेरणा स्रोत है । सेवक जी ने स्पष्ट
रूप से अपने सम्प्रदायमें भागवत के श्रवण का उल्लेख किया है ।

श्री सेवक जी ने कथनानुसार भावद भक्ति को दृढ़ता स्काग्र मन
से स्मरण करते पर होती है । इसी पर भागवत में जोर दिया गया है ।
अतः शुकदेव वचन (श्रीमद्भागवत) सुनाकर ही शुक मुख वचन जु श्रवण सुनवहु
तब हरिवंश सुनाम कहावहु । मन सुमिरन किसरे नहों ।

श्री सेवक जी ने अपनी वाणी के प्रथम प्रकरण 'श्री हितरस विलास

१- श्री हित सुधा साधर (श्री सेवक वाणी जीने पृ० २४५

में कहा है कि हितहरिवंश का जन्मोत्सव वृज में वैसा हो मनाया गया था
जैसा कि भागवत में वर्णित कृष्ण जन्मोत्सव नन्द द्वारा सम्पन्न हुआ ।

श्री भागवत जु शुकउच्चरी, तैसो विधि जु व्यास विस्तरि ।
करी नन्द जैसो हुती ।
घर घर तोरण बंदनवार, घर घर प्रति चित्रहि दरबार ।^१

श्री सेवक जी ने स्पष्ट कहा है कि श्रवण और कीर्तन आदि नवधा
भक्ति के पश्चात् होपरम दुर्लभ प्रेम लक्षणा भक्ति प्राप्ति होती है । श्री
हितहरिवंश जो का यही विचार भी भागवत से समर्पित है ।

श्रवणादिक चितलाय योग जप तप तजै ।
औरौ कर्म सकाम सकल तजि सब भजै ।
साधन विविध प्रयास ते सकल विहावहीं ।
श्रवण कथन सुमिरन सेवन चितलावहीं ।

०० ०० ०० ०० ०० ००

ये नवलक्षणा भक्ति बढ़ाई, तब तिन प्रेम लक्षणा पाई

गुरु महिमा -

- (क) गुरु गौविन्द न भेद कराय, सन्तन सकल सुनहु चितलाय ।
(ख) गुरु सेवा तजि करहि जे वानि, यहि अधर्म यहि सब हानि।^३

विशिष्ट तत्व-

(लीला गान)

बाल चरित्र प्रेम को गोव, कल्लु जुनत सब सुख का सींव ।
जोवन वृज वासिन उपल ।^४

-
- १- श्रीहितसुधा सागर (श्री सेवक वाणी) पृ० २३१
२- इस पुस्तक का द्वितीय अध्याय (वैद्यो सेव रागानुगा भक्ति)
३- श्रीचैतन्य चरितावली, खंड ५ (श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी), पृ० २५८
४- श्रीहितसुधा सागर (श्री सेवक वाणी जी) पृ० २३५

रास लीला -

- (क) प्रिय विचित्र बन हरषि मन जिय यक्षेणु खणान्त ।
 सिय तरुणी सुनि धुनि किय तंह गमन तुन्त ।
 किय तंह गमन तुन्त कन्त मिलि विसलत सवैस ।
 तंत रास मण्डल जरन्त रस नितै रंग रस ।
 सन्तत सुर दुंदभि बजन्त वरणात सुमन लिय
 अन्त कौलि जल जनुकि मत्त इमराह करिणि पिय ।^१
- (ख) वंश बजाय विमाहित नररो, बीली संग सुनित्य बिहारी ।
 परिरंभन चुम्बन रस कैला, विहरत कुंवरि कंठ पुज मैली ।

(१७) श्री हरिनाम व्यास (व्यास जी) सं० १५४६-१६५०-५५

राधावल्लभ उम्प्रदाय इनका भी स्थान कम महत्वपूर्ण नहीं है ।
 इनका वाणी साहित्य अत्यन्त विशाल है । इनका वाणीमें प्रतिवाद्य विषय
 मधुराभाक्त है साथ ही उसमें सामान्य सिद्धान्त एवं जीवन के व्यवहारिक पक्ष
 का भी निरूपण हुआ है । इन पर भी भागवत का बहुत प्रभाव रहा है ।
 उदाहरण देखिए -

सामान्य तत्त्व - भगवतोक्त भक्ति का आदर्श

जैसी भक्ति भागवत देखी वरनी ।

तैसी विरल जानत मानत कठिन रहनि तैं करनी ।

स्वामी भट्ट, गुसाई, आनित, मति गति तैं खरनी ।

० ० ० ० ० ० ०

अहज प्रीति बिभा परतोगि न, सिस्नोदर का भरती ।

व्यास आस जी लागि है तौ लागि, हरि बिनु दुःख विय भरनी ।^२

१- श्री हित सुधा सागर (श्रीशैवकवाणी जी) पृ० २८६

२- भक्त कवि व्यास जी (द्वि० ख० वाणी सिकली, श्री वासुदेव गोस्वामी) पृ० २२८

- (ख) शुक नारद सै भक्त न कोऊ, जिहि भागवत सुनायो ।
जिनु भागवत भक्ति नहीं उपजे, साधन साधि बनायो ।

नाम महिमा -

श्री व्यास जी ने कहा है कि यदि कितने ही विद्वान और कुण्डि मुनि भी उस भगवान की महिमा का वर्णन करें तो भी उसका पार नहीं पा सकते । समस्त सारों का सार है ।^१ मेरा धन तो केवल राधा नाम है जो परम रहस्यमय सारभूत तत्व है, इसलिये शुकदेव जी के इस भागवत में प्रकट नहीं किया है । श्री व्यास जीने तो हरिनाम के कीर्तन को फड़ी ही लगा दो -

हरि हरि हरि मेरे आभार, हरि हरि मेरे सहज सिंगार ।
हरि हरि सकल सुखन की सार, हरि हरि व्यास कृपन कै मंडार ।^२

गुरु महिमा -

गुरुजी को अण्णीय महिमा के स्थापन में भी व्यास जी ने भागवत के कृष्ण चरित एवं धर्ममत का प्रामाण्य स्वीकार किया है -

गुरु की सेवा हरि करि जानी ।
गर जब उजेन रैन दिन दुःख सहि , तजि मथुरा राजधानी ।
कांडी प्रभुता पांइ लागत है दास क त सुखदानी ।
भूख प्यासं मेहु सख्यो निसि, भोर भरयो हरि पानी ।
दियो जिवाई मृतक सुत, तबहि गुरु महिमा पहचानी ।^३

- (ग) गुरु गोविन्द एक सपान ।
वैद पुरान कहत भागवत, ते जु वचन परमान ।^४

१- भक्त कवि व्यास जी (द्वि०ख० वाणो संकलन, श्री वासुदेव गोस्वामी) पृ० १८२

२- वही, पृ० १६६

३- वही, पृ० १६१

४- वही, पृ० १६१

वैराग्य -

व्यास जी ने भागवत का अनुसरण करते हुए मनुष्य को सांसारिक विषयों को और से वैराग्य तथा भक्ति के लिए प्रेरित किया है ।

जो पै हरि को भक्ति न साजो ।
जोवत हू ते मृतक भये, अपराधा जननी लाखो ।
जोग, जज्ञ, तीरथ, व्रत, जप, तप, सब स्वारथ की बाजो ।
पोड़ित घर घर भटकत डोलत, पंडित मुंडित काजो ।
पत्र कलत्र सजन को देही, गीघ स्वान की खाजो ।
बोत गर तीनों पन कपटो, तू न तुम्हना भाजो ।
काउ निरास भयो जाही ते कृष्ण भवन इति राजी ।^३

विशिष्ट तत्व -

भागवत की माधुर्य लीला का गान करने के लिए व्यास जी ने रास पंचाध्यायो का पृथक् रूप से वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त अष्टकापी कवियों की भांति कृष्ण बाल लीला का उन्होंने भी बड़ी सुन्दरता से वर्णन किया है । कृष्ण के उपकरणों में इन्होंने मथुरा, बँदावन, यमुना, मुरली, आदि का महत्व प्रतिपादन किया है जिनके कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं ।

१- लीला गान -

ग्वाल चबैनी ग्वाल चबात ।
मोठी लागत मोहन के संग घर की छाक नखात ।
तोरि पतीवा जोरि पकोखी, पय पीवत न अघात ।
मधुर दही के स्वाद निबैरत, फूलें अंग न समात ।
कबहुँ जमुना जल में तैरत, मोहन मारत लात ।
बूडक ले उठरत कुलबल सौं, स्याम गात लपटाव ।

१- भक्त कवि व्यास जी (द्वि० श० वाणी) स'कल, श्री वासुदेव गोस्वामी, पृ० २२६
२- वही, पृ० ४००-४०७

कबक हुक लामृग भाषा बोलत, बन सिधं न डरात ।
अद्भुत लीला देखि देखि कै, व्यासदास बलि जात ।^१

रास लीला -

नाचत नागर नटवर वैष्ण धरि, सुख सागरहि बढ़ावित ।
सरद सुखद निसि ससिगौरंजित, वृन्दावन क्वि रुचि उपजावति ।
ताल लै गौपाल लाल संग, ललिता ललित मृदंग बजावति ।
० ० ० ० ० ० ०
मिश्रित धुनि, सुनि खग मृग मोहित जमुना बल न बहावति ।
० ० ० ० ० ० ०
जय जय साधु करत हरि संहार, व्यास चिराक दिखावति ।^२

मथुरा माहात्म्य -

धनि धनि मथुरा धनि धनि मथुरा, धनि मथुरा वासी हौ ।
जीवन मुक्त सबै विहरत है के सोराई उपासो हौ ।^३

राधावल्लभ सम्प्रदाय के अन्य कवि -

आर हम सम्प्रदाय के प्रवर्तक हितहरिवंश तथा कुल और प्रतिनिधि कवियों का उल्लेख कर आर हैं । इनके अतिरिक्त भी अनेक कवि हुए, इतना विस्तार में हम नहीं जायेंगे, केवल कुल और कवियों का संक्षिप्त में विवरण दे रहे हैं जिनपर भागवत का प्रभाव परिलक्षित होता है । सम्प्रदायकी परम्परा तो महाकवि विश्वारी को भी इसी सम्प्रदाय से सम्बद्ध करती है ।^४

१- भक्त कवि व्यास जी (द्विण्शोवर्षी संकलन-श्री वासुदेव गौस्वामी) पृ० ३८६

२- वही, पृ० ३६०

दृष्टे ३- वही, पृ० २०६

४- ब्रज माधुरी सार

(१८) चतुर्भुज दास -(सं० १५८५)

हिन्दो साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में अष्टछापके चतुर्भुज दास को अनेक बार भ्रमवश राधावल्लभ सं० के इन चतुर्भुज के रूप में उल्लिखित किया गया है। डा० दोन दयाल गुप्त ने अपने प्रबन्ध में सर्व प्रथम शोधपरक दृष्टि-कोणसे विचार कर इस भ्रम को सदा के लिए समाप्त कर दी है^१। चतुर्भुज ने भागवत भक्ति को अपना कर उसका समस्त देश में प्रचार भी किया और 'भक्ति प्रकाश यज्ञ' नामक परम भक्ति परक ग्रन्थ की रचना की। भक्तमाल के टीकाकार श्री प्रियादास ने चतुर्भुजदास द्वारा भागवत कहलै और दिखाने का वर्णन किया है, देखिए उदाहरण -

भोग ले लगारै नाना सन्तनि लडावै, कथा भागवत गावै भावभक्ति
विस्तार ।

भज्यो धन से के कोई धानि पाके परयो सोऊ आनि के दबायो
बैठि रह्यो न निहारयै ।

निकसा पुरान बात, करै नयो गात दीक्षा शिखा सुनि शिष्य
भयो गह्यो यो पुकारिए ।

कहे या जनम मैं न लियो कहु दियो कहु फारो हाथ से उचारयो^२
प्रभु रीति लागी प्यारिए ।

इनके ग्रन्थों का संग्रह 'आदर्श' है जहाँ १२ छोटे २ ग्रन्थ हैं। इनमें से भक्ति 'प्रकाश यज्ञ' तथा हितजु कीर्तन काफ़ी प्रसिद्ध हैं। इस ग्रन्थ में विशेषकर भागवत भक्ति और धर्म मत का निरूपण मिलता है। भक्ति का पापनाशिनी

१- डा० दोन दयाल गुप्त, अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० २७८-२८०

२- भक्तमाल (भक्ति सुधा स्वा तिलक) पृ० ४१

शक्ति, भक्ति का सर्व श्रेष्ठत्व, विषय निन्दा संसार का मिथ्यात्व निरूपण, स्त्री पुत्र धन आदि का बन्धनकारी रूप, वणाश्रम धर्म निरूपण, नवधा भक्ति, सत्संग महिमा, भक्त जन महिमा, गुरु महिमा, श्रीकृष्ण का परम कासणिकत्व, माया की प्रबलता और अन्य प्रेम लक्षणाभक्ति आदि जो विषय भागवतमें वर्णित हैं उन सबका निरूपण चतुर्भुज ने अपने ग्रन्थ द्वादशयश में किया है।

(१६) श्री ध्रुव दास (सं० १६३०-१७००)

अपनी भक्तिपरक रचनाओं के कारण कृष्ण भक्ति साहित्य में श्री ध्रुवदास का स्थान भी कम ऊँचा नहीं है। डॉ० वियेन्द्र स्नातक ने इन्हें राधावल्लभ के भक्ति सिद्धान्तों का व्याख्याता और भाष्यकार कहा है^१ जो सर्वथा उचित है। इन्होंने वेद, पुराण, स्मृति शास्त्रों का सार ग्रहण कर ४२ ग्रन्थों की रचना की जो 'व्यालोस लीला' नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त कुछ स्फुट पद भी मिलते हैं। नाभादास के भक्तिमाल की तरह इन्होंने भक्त वक्ता नामावली लिखी है। इन्होंने अधिक प्रेम लक्षणा तथा मधुराभक्ति का प्रतिपादन किया है। इनमें भागवत का पूर्ण प्रभाव है।

गोपी प्रेम -

नारदादि सु जनकादि, ध्रुव उद्धव अरु ब्रह्मादि ।

गोपिन की सुख देखि किए, भजन आपुनी बादि ।

श्री ध्रुवदास जो को समस्त भागवतोय भक्ति का सारांश निम्नलिखित सवैये में नज़ों सुन्दरता से दर्शाया है -

१- राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ४२६

२- ब्रज भाधुरी शार - ध्रुवदास, पृ० १६६

ऐसो करी नन्दलाल को रंगोले जु, चित न और कहु ललवाई ।
 जे सुख दुःख रह लागि देह सों, ते मिटि नाहि अरु लोक बड़ाई ।
 संगति साधु वृन्दावन कानन, तो गुन गाननि माँझ बिहाई ।
 कंज पगो में तिहारे बसै, बस देहु यह धूँ कों धुताई ।

राधावल्लभ सम्प्रदायके अन्य उल्लेखनीय कवियों ने ही नागरीदास (सं० १५६०) , कल्याण पुजारी (सं० १६०० वि०) श्री अनन्य अली (सं० १७४०) हमारे आलोच्य काल के अन्तर्गत है। वे ही नागरीदास जी के संबंध में तो यह किंवदन्ति है श्री वे श्री भागवत के भी उन प्रसंगों में रुचि रखते थे, जिनमें कृष्ण की मधुर लीला का वर्णन नहीं है। यह अहर्निश राधा कृष्ण को मधुर रासलीलाके ध्यान में ही मग्न रहते हैं।

(२०) स्वामी हरिदासी के सखी सम्प्रदाय के अनुयायी कवि

स्वामी हरिदासी (सं० १५३७-१६३२)

निम्बार्की सम्प्रदायके अनुयायी संगीत कला में निपुण मधुरा भक्ति प्रधान अपना पृथक् इसी सम्प्रदाय चलाया था। जिसकी साधना पद्धति का निम्बार्की सम्प्रदाय से मौलिक भेद है। इस सम्प्रदाय में उपासक इसी भाव धारण करता है स्वामी हरिदास वृन्दावन टट्टा संस्थान के संस्थापक थे। इनका जन्म अलीगढ़ जिले की कोल तासील में बताया जाता है। जहाँ अब हरिदासपुर नामक गाँव है। इनका सम्प्रदाय रसोपासना का अनुयायी था, इस दृष्टि से वल्लभ सम्प्रदाय से इसका मतभेद रहा। हरिदास जी कृष्ण जी का युगल लीला का नुहा ममैस्पर्श वर्णन किया है। इस सम्प्रदाय में वैराग्य पर अधिक जोर दिया गया है। इनका वाणी के कतिपय उदाहरण देखिए -

१- ब्रजमाधुरी सार। पृ० १६४

अनन्य शरणागति (आत्मनि वैदभक्ति)

काहू को जस नाहि तुम्हारी कृपा ते सब हैई विहारी किंकि
बिहरिनि ।

औरमिथ्या प्रपंच काहे को भाषिअ सु तो है हारनि ।
जाहि तुम्हारी हित ताहि तुम हित करौ सब सुख कारनि ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज विहरि प्राननि के आधारनि ।^१

वैराग्य -

ज्यों ली जीवें तौ ली हरि भुज रे मन और बात सब बादि ।
दिवस चारि को हला मल्ल तू कहा लहगी लादि ।
पाया मद गुन मद जीवन मद, भूत्यो नगर विवदि ।
कहि हरिदास लोभ चरपट भयोकाहे की लागे फिराद ।^२

लीला गान (रास लीला)

भद्रभुत गति उपजति अति नाचत, दोऊ मंडल कुंवर क्सोरो ।
सकल सुगंध अं भरि कोरी, पिय नृत्यति मुसुकति मुख मोरी ।
ताल धरे बनिता नृदंग, चन्द्रागति घात बजे थोरा थोरी ।
मधुर भाव भाषा विचित्र, अति ललित गीत गावै चित मोरो ।
श्री वृन्दावन फूल फूली पुरन ससि समरि गति थोरो ।

० ० ० ० ० ० ० ० ० ०

श्री हरिदासो के स्वामी स्यामा कुंज विहारो जु को रस रसना कहै
कोरी ।^३

१- ब्रज माधुरो सार , पृ० ६६

२- वही, पृ० ६८

३- हरिवंशानुचरित (पद अंकलियिता एवं चरित लेखक चौबे नवनीत कवि) पृ० २५

(२१) श्री विट्ठल विपुल - (सं० १५५०-१६३२)

ऐसा कहा जाता है कि ये हरिदास जी के मामा तथा प्रधान शिष्य थे। इन्होंने भी राधाकृष्ण रहस्यात्मक निकुंज लीला के पद लिखे हैं। रास लीला का भी वर्णन किया है। छिडोरे के पद लगभग सभी साम्प्रदायिक कवियों ने लिखे हैं। इनके वर्णनों में वही भागवत को अमिट छाप विद्यमान है-

सजनी नव निकुंज भ्रम फूले ।

अलि कुल संकुल करत कुलहल, सौरभ मन्मथ भूले ।

हरनखि छिडोरे रसिक रासवर, जुगल परस्पर भूले ।

श्री विट्ठल विपुल विनोद देखि नम देव विमानन भूले ।^२

इस पद में कवि निकुंज बने डले हुए छिडोले का वर्णन किया है। जिस पर राधाकृष्ण दोनों बैठकर झूल रहे हैं। पूरा वन मानों प्रसन्नता से झूम रहा है और देवगण नम से पुष्प वृष्टि कर रहे हैं। नीचे दूसरे पद में शरद ऋतु का वर्णन है - देखिए -

नवल शरद को जीन्ह जामगी ।

नव सत्साज सकल अंग सुन्दरि नवल वदन पर अलक सगवगी ।

श्री विट्ठल विपुल विहारो के अंग लाडिलो सहज उर लगी ।^३

(२२) बिहारिन दास (सं० १५६१-१६५६ वि०)

अखी साम्प्रदाय के प्रमुख कवियों में इनको भी गणना होता है। इन्होंने भी कृष्ण के निकुंज लीला के अरिरीक्षत मानव जीवन के सबसे सामान्य आधार पर काविचार और भगवद् भक्ति का माहात्म्य गान किया है।

१- ब्रजभाषुरां सार। पृ० ६४

२- हरिदास वंशानुचरित, पृ० ६४

३- वही, पृ० ३६

इन्होंने भागवत कथा के श्रवण को बहुत अनिवार्य बताया है। इनके विचारानुसार भागवत का कथा सुने बिना सच्ची भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।
देखिए -

भक्तिबिना भागवत कहै, कंठ सोखे काया दहै ।
मर्म न जाने कर्म न कहै, निगुसा यो सब काहू डरै ।^१

भागवत के मूलमंत्र अनन्य भक्ति का अवलम्बन लिए बिना जोव का उद्धार संभव नहीं ।

बिना अनन्य न मर्म न जाने, जार जात गुन पिता पहिचाने ।^२
भक्त सकाम बनिक हठ ठाने, जो लीं बोजु निज वैद बखाने ।^२

नवधा भक्ति -

भगवान की अनन्य प्रेमाभक्ति प्राप्त करने के लिए भागवतोक्त श्रवण कीर्तनादि नवधा भक्ति द्वारा विषय विकार का नाश आवश्यक है -

यह उपाय सुन्यो सन्तन पै हरि सेवत सुख जोजे ।
श्रवण कीर्तन भक्ति भागवत तो प्रकार रति कीजे ।
विषय विकार विरचि रचि मन क्रम, वचन रचन चित दीजे ।^३
श्री बिहारिनदास प्रभु सदा, सजोवन वदन कमल रस पोजे ।

नाम महिमा -

नाम को अमोघ शक्ति का उल्लेख भागवत के अजामिलोपाख्यान

१- हरिदास वंशानुचरित, पृ० ३६

२- वही पृ० ६५

३- वही पृ० ३५

४- वही पृ० ५६-५७

के नाम निर्देश पूर्वक इन्होंने किया है -

हरिजस गावत अब उधरे ।
 नोच अधम अकुलोन विमुख खल केते गनीं बुरे ।
 नारु छीपा जाट जुलाहा सम्मखा जाय बुरे ।
 ० ० ० ० ० ०
 विश असावधान सुत के हित रहे आवरा उचरे ।
 श्री बिहारीदास काटि अजामिल के पतित पवित्र करे^१

वैराग्य -

मनुष्य की गृहासक्ति और भगवद विमुखता को निंदा करते हुए
 कहते हैं -

बहुत कुटुम्ब बड़ा गृह गैही, सब सूना दिन श्याम सनैही ।
 छठ मृतक समान बिनु प्राणी, तिहि सिंगार भयी अभिमानी ।^२

लीला गान -

इन्होंने कृष्णकी निकुंज लीला को ही अपनी काव्य साधना को मूल
 ध्येय ठहराया । और वृन्दावन को माधुर्य लीला का गान किया -

नवल बसंत नवल वृन्दावन नव परियल अलि लब्धा तरुन जमन,
 नव पराग अतराग मगन मन, नव बिहार बलि दास रसक जन ।^३

श्री हरिदासी सम्प्रदाय के अन्य कवि -

माधुरीपासना को आगे बढ़ाने वाले कवि इस सम्प्रदाय और भी

१- हरिदास वंशानुचरित , पृ० ५७

२- वही, पृ० ६२

३- वही, पृ० ४७

अनेकों हुए जिनमें नारीदास (जन्म सं० १६०० वि०), सरसदेव (सं० १६३१ वि०) नरहरेदव (सं० १६४० वि०), रसिक देव (सं० १७४१ वि०), तथा ललितकिशोरी देव (सं० १६४० वि०) आदिक उल्लेखनीय हैं। उन्होंने मार्घी भक्ति के साथ सामान्य भक्ति सिद्धान्तों का भी निरूपण किया है।

(२३) चैतन्य सम्प्रदाय के कृष्ण भक्त हिन्दी कवि -

श्री गंदाधर भट्ट (१६ वि० का उत्तराद्ध)

चैतन्य के समकालीन और उनके सम्प्रदायमें दो द्वािता हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों गंदाधर भट्ट का नाम प्रथम श्रेणी में आता है। इस सम्प्रदाय के उनके भक्तों ने संस्कृत में रचना की। भट्ट जी श्री संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। इनकी हिन्दीरचना भी तत्सम संस्कृत पदावली मुक्त समस्त शैली में हुआ करती थी। एक उदाहरण देखिए -

नमो नमो जय श्रीगोविन्द।

आनंदमय वृज-सरस-सरोवर प्रकटित विमल नील अरविन्द ।

जसुमांत नीरस्नेह नित पोषित, नव नव ललित लाड सुख कंद ।^२

दादाणात्य ब्राह्मण होने पर भी अपने आराध्य को जन्मभूमि की भाषा (ब्रजभाषा) से बड़ा लाव था।

कहा जाता है कि ये श्री चैतन्य की ?ष्मदभागवत की कथा सुनाते थे। आचार्य शुक्ल ने निम्नलिखित छप्पय के आधार पर इस बात का समर्थन किया है -

सज्जन सुहृद सुसौल वचन आरज प्रतिपाल ।

निरमत्सर निष्काम कृपा करुणा कोकिल ।

१- हरिदासवैशानुचरित, पृ० ६६-८८ तथा ललितप्रकाश (रचयिता जहदरो शरणदेव) द्वितीय उल्लास, पृ० १२-१०४

२- ब्रज माधुरी तार, पृ० ८०-८१

३- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८२

अनन्य भजन दृढ़ करन धरयो वपु भक्तन काजि ।

परम धरम सैतु विदित वृन्दान गाजि।

० ० ० ० ० ० ०

गुण निकर गदाधर भट्ट अति सबहिन को लागै सुखद ।^१

इस प्रकार स्पष्ट है कि गदाधर जी भक्ति परक रचनाओं पर भागवत की भक्ति का प्रभाव पड़ा है । चैतन्य सम्प्रदाय में हरिनाम संकीर्तन के विधान का आधार भी भागवत है अतः इन्होंने भी नाम महिमा का गान किया है ।

नाम महिमा -

हरि हरि हरि हरि रटरसना मम ।

पीवत खाति रहति निधरक भई^{होत} कहा तो भ्रम ।

तै तौ सुनि कथा नहि मो से उधरै अपित महाधम ।

ग्यान ध्यान जप तप तीरथ वृत्त जोग जाग बिनु संजम ।

० ० ० ० ० ० ० ०

इहि कलि काल कराल व्याल विषा, ज्वाल विषाम भीये हम ।

बिनु इहि मंत्र गदाधर की व्योमिहि है मोह महातम ।^२

इस उद्धरण से नाम की पापनाशिनो शक्ति की और उक्तेत किया गया है, दूसरा और भागवत के मुचुकन्द और अजामिल के उपाख्यानो के उक्तेत द्वारा भी हरि से भी श्रेष्ठ इनका नाम बताया है ।

ला ला गान -

भागवत में अनेक पात्रों द्वारा लोलागान का वर्णन हुआ है । गोप-

१- भक्तमाल (भक्तिसुधा स्वादातिष्क) पृ० ७८६

२- ब्रजमाधुरी सार , पृ० १८१

गोपिकां अक्सर पाते ही ओकृष्ण का गुण गान करते रहते हैं^१ । मकता यशोदा भी दधि करते समय ही स्नेह के वशीभूत हो कुछ न कुछ गा उठती है, देखिए भागवत का कितना प्यारा चित्र है -

यानि यानीह गोतानि तदबाल्वरितानि च दोधै मथन कारे
स्मरन्ती तान्यगायत द्वाभं वासः पृथुकटितटे विभूति सूत्रनधम्
पुत्र स्नेहसुत कुल युगलं जातकर्म्यं च सुभुः रज्जककणी श्रमभुजवस्त
कंकणा कुंडले च, स्वत्रं वस्त्रं कबरविगलन्मालतो निर्ममन्थ ।

श्री गदाधर भट्ट द्वारा चित्रित यशोदा के रूप का भांकी उपरोक्त चित्र से ही मिलता जुलता है -

दधि मथत नंद नरिंद रानी करति सुत गुनगान,
नील नारद अंगदिव्य टुकूल वर परिधान ।
कैस कुसुमनि किरनि मनि ताटक कलकत कान,
स्वेद कन गन वदन बिधु पर सुधा त्रिनु उमान ।
भेषा करषात चरषा वरषात्वल्प किंकिनि दवान,
पयपयोधर स्त्रपत वातक कृष्णा पिवत निदान ।
सहस आनन कहि सै नहि जासु भाग्य खान,
जगत बन्ध गौविन्द माता गदाधर करि ध्यान ।^३

बाल-लीला -

----- कृष्ण की भागवतोय बाल लोला का वर्णन भा भट्ट जी ने किया है -

~~अनं० अरुण अरुण मोहन स्त्री राम रत्न मंडलो ।~~

~~उदित पुरन निरुनिपथ निर्मलविद्या, देखि दिक्कर सुता सुभा~~

~~पुतिन थली ।~~

१- श्रीमद्भागवत, पृ १०, ४४, १५

२- वही, १०।६, २, ३

३- वही, ब्रजमाधुरा सार, पृ० ८४

बारें तैं गोकुल गीपिन के सूने घर तुम डाटे हो ।
 पठै तहाँ निरसक एक ली दधि के भाजन चाटे हो ।
 आय कलाई धना की डेटो भक्त कृपन ली मांग्या हो ।^१

रास लीला -

छाउछ भागवत के अनुसार हो इन्होंने कृष्ण के शरद रास का वर्णन किया है -

आजु मोहन रचो रास मंडली ।
 उदित पूरन निसामनाथ निर्मलदिसा, देखि बिनकर सुता
 सुभा पुलिन स्थली ।
 बाँच हरि नीच हरिनाच्छ-माला नीची तरुनतापिच्छ जु-
 रली
 कनक कदला देखे ।

० ० ० ० ० ० ०

चरन विन्यास कपूर कुंकुम धरि, पूरि रहि चारि दिसि
 कुंज बन की गली ।

० ० ० ० ० ० ० ०

गान रस तान के बान वैध्या विस्व जन अभिमान
 मुनि ध्यान रति दत्तमलो ।^३

यमुना महिमा -

जमुना देवी को न भलाई ।
 नाम रूप गुन से हरि ज की, न्यारी अपनी चाल चलाई ।
 ऊपबस देख कियो भ्राताकी , उनहि परसि कौउ तहाँ न गाई ।
 जे तन तजत तीर तुम्हरे ते, तात किरन में गैल लाई ।^४

१- श्रीमद्भागवत १० ब्रज माधुरी । पृ० ६१

२- वही, पृ० ८७

३- वही । पृ० ६०

संध्या समय गौचारण से लोटते हुए वेणु वादन करते हुए गौरज
चक्रुरित अलका बलो मंडित, गोप बाल मंडलो से अनुगत, दिव्य पांताम्बर
धारी, ऐसे श्यामसुन्दर के इस चित्र के लिए मूक जो भागवत के कृष्ण हैं थ

आजु ब्रजराज की कुंवर बनते बन्यो, देखि, आवत मधुर अघर
रंजित वेनु ।

मधुर कल गान निज नाम सुनि सुवन पुट, परम प्रमुदित वद
फोरे कुंकति धनु ।

मद विधुषित नैन मन्द विहंसनि बैन, कुटिल अलकावलो
ललित गोपद रेनु ।

० ० ० ० ० ० ० ० ०

कहि गदाधर जु इहि न्ययि, ब्रज सुन्दरी, विमल बूनमाल के
बाच चाहतु रेनु ।

विष्णुल इसी तरह का वर्णन भागवत में है, उसे भी देख लोजिए -

वत्सली व्रजगवां मदगंध्रौ वन्दमान चरणाः पथि वृद्धे न
कृतनगोधनमुपोहम बिनान्ते गीतवैणुपुरनुगडित कोर्तिः
उत्सर्वं श्रमरुचापि दृशोनामुन्नयन्सुररञ्जकुरितस्त्रक्
दित्समैति सुहृदाशोषा एषा देव कोजठरमुरुदुराजः
मदविधुषितिलीचन ईषान्मानदः स्वहृदां वनमाली २
बदरपाण्डुवदनो मृगुगंडं मण्डपन्काक दुंदल लम्प्या ।

आ कृष्ण ने अपने मुरली वादन से समस्त जड़ और चेतन को अपने वश में कर
लिया है, मुरली बजते ही यमुना भी अपना प्रवाह उल्टा देता है । समस्त पदों

१- ब्रजमधुरो उतर, पृ० ८६

२- श्रीमद्भागवत, १०, ३५, २२, २३, २४

गण मीन होकर उस मधुर राग का आनंद लेते हैं और गोप गोपियाँ अपना सब काम छोड़कर मुरली सुनने के लिए कृष्ण के चारों ओर लेता हैं । श्री भट्ट जो अपने ईष्ट देव को महिमा की वेदातीत बताते हुए यह कह उठते हैं -

बरनी कहा जथामति मेरो, वेद हूँ परर न पावे हो ।
भट्ट गदाधर प्रभु को महिमा गावत हो उर आवे हो ।^१

गोपी प्रेम -

चैतन्य सम्प्रदाय की आधार भूमि ही गोपियों की मधुरभक्ति भावना है, यहाँ हम रूपाभक्ति और तन्मयासक्ति का प्रसिद्ध उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं जिसे सुन कर सम्प्रदाय के आचार्यों श्री गोस्वामी जी मुग्ध हो गए थे -

सखा हो स्याम रंग रंगी ।
देखा बिकाय गई वह मूरति, सूरति माहि पगो ।
रंग हुतो अपनी सखसखेण सपनी सो, सोई रहो रस खोई ।
जागहुँ आगे दृष्टि पर सखो, नेकु न न्यारो होई ।
रक जु मेरो अखिन में निशि, द्योत रह्यो करि भौन ।
गाई चरावत गात जुन्यो सखा, सो धी कस्या कौन ।
कासो कही कौन पतिपावे की करे लकवाद ।
कैसे के कहि जात गदाधर गूंगे को गुर स्वाद ।^३

इस प्रकार हमने देखा कि भागवत केनित्य स्वाध्यायी और वक्ता पंडित श्री गदाधर भट्ट की रचनाओं के अन्तराल में भागवत का भाव-राशि निन्तर मुखर हो रही है ।

१- ब्रज माधुरा सार , पृ० ८२

२- वहाँ, पृ० ७८

३- वही, पृ ० ७७, ७८

(२४) श्री सूरदास मदन मोहन - रचना काल (सं० १५६०-१६००)

चैतन्य सम्प्रदाय के द्वितीय कृष्ण भक्त कवि श्री सूरदास मदनमोहन जो अत्यन्त प्रसिद्ध तथा उल्लेखनीय हैं। ये जाति के ब्रह्महमण तथा अकबर के शासन काल में संडाले के अमोन थे। ये माधुर्यभक्ति के पथिक थे। लड़ी अनन्यता तथा तन्मयता से कविता किया करते थे। प्रभवश इनके अनेको पद सूरसागर में मिल गये हैं। सूरदास का भांति इनके भो ईष्ट देव श्रीकृष्ण थे। अपने नाम के वक्ष साथ उन्होंने अपने इष्टदेव का नाम इतना सलग्न कर लिया था कि ये सूरदास मदनमोहन के नाम से हो प्रख्यात हो गए। इस मत का समर्थन नाभादास जी के इस श्लेष्य में मिलता है -

गान काव्य गुन रासि सुहृद सहचरो अवतार ते ।
 राधाकृष्णन उपासि रहस सुख के अधिकारी ।
 नव रस मुख्य सिंगार विविध भांतिन करि गायो ।।
 वदन उच्चरत बैर उहस पायन वहै घायो ।
 अंगिकारहि को अवधि जो आख्या प्राता जयल ।
 श्री मदन मोहन सूरदास को नाम श्रृंगार जुरो अटल ।^१

उक्त श्लेष्यमें सूरदासमदनमोहन का उपासना पद्धति पर भो प्रकाश पड़ता है। इस सम्प्रदायमें श्रृंगार रस को उज्ज्वल रस के नाम माधुर्य भक्ति में उसका प्रयोग किया गया है। इसी कारण कवि नर भागवत के इस दिव्य रस का विविध प्रकार से गान किया है।

अनन्य शरणागति -

मेरा गति तुमरो अनेक तोषा पालऊं, चरा कमल नखमनि पर
 विषी सुख बहाऊं ।
 तुमरो कन्हाय कहो कौन को कहाऊं, तुमसे प्रभु क्हांडि कहा
 दीनन को धाऊं ।^२

लो ला-गान - (बाल लो ला)

खलि आंगन दृगन मगन कोजिर बख बल्ला, कीकै ते सारी
दधि ऊपरसे कढ़ि धरो ।

पहिरि लऊं कंगुलो फँटा बांधि लठ भवा, ग्वालन संग
लेल जाहु खल बिसभूषन त्याहूँ ।

सूरदास मदन मोहन घर में हा सेली प्यारे सललन, भँवरा चकडोर
पैही हँस चकोर परैवा ।^१

रूप माधुरी का वर्णन तो प्रत्येक कृष्ण भक्त कवि ने किया है ।
जिसमें कृष्ण की वैष्ण भूषा सुन्दरता का वर्णन होता है जो अब बहुत प्रचलित
सा हो गया है।

वैष्णुमाधुरी -

इनके प्रत्येक संकेत में तथा घटनाओं में भागवत का प्रभाव परिलक्षित
होता है । देखिए- कितना सुन्दर कवि ने खोचा है -

चकौरी मुरली सुनिए का न्ह बजाई जमुना तीर,
तजि लोक लाज कुल की कानि गुरु जन की भीर ।
जमुना जल थकित भयो बखान पोवै क्षीर,
सुर विमान थकित भये थकित कोकिल कीर ।
देह की सुधि विसरि गई बिसरी तन को चीर,
मात तात बिसरि गए विसरे बालक बीर ।
मुरली धुनि बाजे कैसे कै धरो धीर,
सूरदास मदन मोहन जानत ही पर पीर ।

१- भक्तमाल (-भक्ति-सुधमस्वनर्दितक) ब्रज माधुरा उार, पृ० १०८

वृन्दावन लीला -

श्रीकृष्ण को प्रेम लीला के इस पद में मुरली स्फरोदय का कार्य कर रही है -

गौर गोविन्द नवल किसैर सखी चित चोर ।

ठाढे है तुम को कृष्णियां

ऊधर धी मुरली ऊँचे सुर लिख सुनि कौहि गुलावत है ।

माई री तू कत कहति नहिंयां ।

चैतन्य सम्प्रदाय में 'सक अनन्यमाल' के रचयिता श्री भगवतमुदित नागरोदास आदि कवि हुए । १६ वीं शती के उल्लेखनीय कवि श्री गुण-मंजरादास हैं। यहाँ दो ही प्रमुख कवियों का परिचय दिया है । १६वीं शता के कवियों का परिचय हमारे विषय से बाहर है ।

सम्प्रदाय मुक्त कृष्ण भक्त हिन्दा कवि -

मध्यकाल में रामानन्द के उपरान्त रामभक्ति का प्रचारक कोई इतना समर्थ न हुआ कि यह शाखा कृष्ण भक्ति के समान उन्नत हो पाती । जबकि कृष्णभक्ति शाखा में वल्लभाचार्य चैतन्य महाप्रभु, हितहरिवंश ने अपनी शाखा की उन्नति के लिए अमूल्य कार्य किया । सूरदास आदि अष्टदासी कवियों को जो कृष्ण भक्ति का धारा बहुत समय तक चलती रही, वे जो तुलसीदास आदि को रामभक्ति धारा नहीं चल पाई। इसका महान कारण था उस समय वातावरण तथा वायुमंडल में कृष्णभक्ति से परिपूर्ण श्रीमद्भागवत पूर्ण रूप गुंज रहा था । आसितु हिमाचल, असम, से उत्तर तक समस्त प्रादेशिक भाषाओं में भागवतनुमोदित कृष्णभक्ति साहित्य रचा जा रहा था । प्रत्येक कृष्णभक्त कवि चाहे छोटा हो या बड़ा उसमें श्रीमद्भागवत का थोड़ा बहुत अंकुर मीजुद था । सम्प्रदाय मुक्तकवियों ने भी भागवत के सामान्य धर्म, मत, ज्ञान, वैराग्य और प्रेम तत्त्व को अपनाया । स्फुट वृत्तों में रासपंचाध्यायी रुक्मिणी मंगल, प्रह्लाद चरित, उदामा चरित, धूम चरित, गजेन्द्र मोक्षा, अजामिलीपाख्यान उल्लेखनीय हैं । मीरा रसखान आदि कवियों में गोपी प्रेम

को गम्भीरता स्पष्ट रूप से अनुभव की जा सकती है ।

पंचम अध्याय

१६वीं - १७वीं शताब्दी के
कृष्णभक्त कवियों में सेवा भावना
की अभिव्यक्ति

पंचम अध्याय

१६वीं - १७वीं शताब्दी के कृष्ण भक्त
कवियों में सेवा भावना की अभिव्यक्ति

अष्टछाप के कृष्ण भक्त कवियों में सर्व शिरोमणि सूर एक प्रकार से कृष्ण भक्ति का शाखा के कवियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतः उनका साहित्य हिन्दी के कृष्ण भक्ति का काव्य का प्रतिनिधि साहित्य है। सबसे पहले उन्हीं के साहित्य में पुष्टिमागीय सेवा भावना की अभिव्यक्ति का अन्वेषण करना सर्वा समीचीन और तर्क संगत होगा।

कृष्ण भक्त कवियों से पूर्व की परिस्थितियाँ -

कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परामता ।

चेतस्तत्प्रवर्णं सेवा तत्सिद्धये तनुवित्तजा । (सि० मुक्तावली)

मध्यकाल में सम्पूर्ण उत्तरी भारत सरस भक्ति धारा में अभिसिंचित होकर नव पल्लवित हो रहा था। इससे पूर्व का काल धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, सामाजिक, प्रत्येक दृष्टिकोण से संघर्षों का युग था। भारत में अनेकों आक्रमणकारियों ने आक्रमण किए परन्तु इनका लक्ष्य मुसलमानों की भांति अपना धर्म प्रचार करना और भारत के धर्मों को तत्कार की नीक के बल पर कुचलना नहीं था। इनका लक्ष्य तो हमारी सम्पत्ति ही लूटना था। इसके अतिरिक्त मुसलमान अपने धर्म को विश्व धर्म बनाना तथा सम्पूर्ण भारत पर अपना स्थायी साम्राज्य स्थापित करना था। इसके लिए उन्होंने भारतीयों को बाधक बनाया और अपनी लाठी या तलवार के बल पर

उनको अपना धर्म मानने को बाध्य किया। मंदिरों और मूर्तियों को तोड़ दिया तथा विभिन्न प्रकार के अत्याचार भारतीयों पर किए। देश उस समय हुकड़ों में विभक्त था, कोई केन्द्रिय सत्ता नहीं थी। इसलिए विधर्मियों के अत्याचार और अधिक होते रहे।

इतना सब होने पर भी दक्षिण भारत पूर्ण शान्त था। हमारी धार्मिक भावनाओं तथा संस्कृति को पूर्ण विकसित होने का अवसर मिल रहा था। ऐसे शान्त वातावरण में वैष्णव भक्ति का कल्पवृक्ष गुरुत मानव जनता को आश्रय तथा अभय प्रदान करने के लिए पल्लवित पुष्पित हो रहा था। भारतीय धार्मिक इतिहास में वैष्णव धर्मोदय का विकास भारतीय धार्मिक विचार धारा की एक महत्वपूर्ण क्रान्ति मानी जाती है। जब पृथ्वी पर अवतारवाद साक्षात्कार हुआ तब राम, कृष्ण, नारायण, बुद्ध वसुदेव आदि नामों का विष्णु का अवतारत्व आरोपित किया था। इन्हीं को सर्वोपरि मानकर इनकी अर्चना आदि का प्रचलन हुआ। भक्ति साहित्य भी इन्हीं देवों को केन्द्र बना कर रचने लगा। बौद्धिक काल से बौद्ध धर्म तक वैष्णव धर्म का अनेक नामों से उत्थान और पतन हो हीता रहा। धीरे धीरे यह धारा मध्य भारत से होकर सुदूर दक्षिण तक फैल गई। जैन धर्म ने वैष्णव धर्म के निबन्ध प्रवाह में महान अवरोध बनकर आघात पहुंचा रहे थे। अतः बौद्ध धर्म पूर्णतः शिथिल हो गया परन्तु दक्षिण में जैन तथा बौद्ध धर्म के आघातों को सहन करता हुआ अपनी शोभा को बनाए रखे था। बौद्धों के शून्यवाद पर शंकराचार्य ने अपने अद्वैतवाद के दर्शन के माध्यम से विफट प्रहार किया परन्तु भक्तिधारा के अजस्र प्रवाह के विकास में बाधक बन गया क्योंकि भक्ति भावना में सगुण साकार प्रभु एवं भक्त अज्ञात जीव इन दो तत्त्वों की स्थिति अनिवार्य होती है। जबकि 'अहं ब्रह्मास्मि' 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' ही अद्वैत दर्शन का मूल है। मनुष्य समाज में इनकी रचनाओं तथा भक्तों का बड़ा आदर था। इन्हीं आत्मार भक्तों की परम्परा में प्रथम वैष्णवाचार्य श्री इवण रामानुज का प्रादुर्भाव हुआ।

१२वीं शताब्दी में दक्षिण में आचार्य शंकर का विरोध बारंभ हो गया और भागवत धर्म ने नवीन रूप धारणा किया। शंकर ने मायावाद के विरोध में चार प्रबल भागवत सम्प्रदाय आविर्भूत हुए। इन सम्प्रदायों के आचार्य उत्कृष्ट कौटि के विद्वान भक्ति भावना से पूर्ण तथा अलौकिक शक्ति से मुक्त थे आचार्य अपने दार्शनिक सिद्धान्तों द्वारा जनता पर अपना प्रभाव जमाने की चेष्टा में सलग्न हो गये। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि 'भागवत पुराण में कृष्णोपासक भक्तों के प्रेम लक्षणा भक्ति योग का प्रधान ग्रन्थ हुआ और उसमें प्रकटित श्रीकृष्ण का रूप प्रेम या भक्ति का आलम्बन है'। भागवत पुराण में श्रीकृष्ण को सरल लीलाओं से पूर्ण माधुर्य विभूति से सर्वोत्तम मनीषारी स्वर्ग भव्य प्रासाद का चित्रण किया गया है। भागवत में कृष्ण का वह सुन्दर मूर्ति रूप हमें दिया जो प्यार करने योग्य हुई, ऐसे प्रेम की प्रेरणा से माता पिता अपने बच्चों को पुचकारते, दुलारते हैं, क दूसरे उस ढंग का प्यार किया जिस प्यार की उमंगमें प्रेमिका अपने प्रियतम का ललक कर बालिंगन करती है। तात्पर्य यह है कि भागवत ने कृष्ण की प्यार हेतु भक्तों के मध्य खड़ा कर दिया, यही प्रेम भावना पुष्टिमागीय सेवा का मूल तत्त्व है।

१४वीं शताब्दी के आसपास भागवत धर्म (भक्ति भावना) का आलीक उत्तर भारत में भी व्याप्त होता जा रहा था। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस आध्यात्मिक चेतना के उत्तर भारत में व्याप्त होने से संबंधित इन निराधार धारणाओं का सप्रमाण खंडन किया है। हिन्दी साहित्य की भूमिका में उनका कथन है कि डा० ग्रियरसन का अनुमान है कि वह ईसाइयत की देन है पर यह सब बात उपहासप्रद है और कहना भी गलत है कि जब मुस्लिम मंदिरों को नष्ट करने लगे तो निराश होकर हिन्दू लोग भजन भाव में जुट गए। डा० ग्रियरसन का मत है कि बिजली की चमक के समान अज्ञानक इन धार्मिक मतों के अंधकार के ऊपर एक नयी बात दिखाई दी। इस मत विरो में द्विवेदी जी कहते हैं जिस बात को ग्रियरसन ने अज्ञानक बिजली की चमक के समान

फँल जाना लिखा है वह वैसा नहीं है । उसके लिए कितने ही वर्षों से भय संढ़
 एकत्र हो रहे थे किन्तु प्रादुर्भाव तो एकाएक ही हो गया । इसका कारण
 शास्त्रसिद्ध आचार्यों एवं पौराणिक ठास कल्पनाओं से ~~हक~~ इनका योग होना
 ये शास्त्र पूर्ण पुरुषोत्तम का अवतार श्री कृष्ण को बताया । श्री वल्लभ का
 भी यही मतानुसार (परब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानंदकम् बृहत्) आचार्य
 वल्लभ के मतानुसार प्रभु की एक मात्र प्रेक्ष के माध्यम से ही प्राप्त किया जा
 सकता है । गोपिका तथा ग्वालों के प्रेम को आदर्श प्रेम की संज्ञा देते हुए
 उसी प्रेम द्वारा प्रभु की भक्ति को वास्त्वसवक भक्ति बताया है । दर्शन क्षेत्र
 में शुद्धादित तथा भक्ति क्षेत्र में उन्होंने पुष्टि भक्ति का उपदेश दिया है । सेवा
 क्षेत्र में एक मात्र कृष्ण सेवा को पूर्ण रूप से अपनाया । सेवा के विभिन्न
 स्वरूप स्थापित किए । वल्लभ जी के द्वितीय पुत्र श्री विट्ठलदास जी अपनी
 साधना तथा प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व आचार्य जी द्वारा बीजारोपित पुष्टिमागीय
 वैभव का पूर्ण विकास (तथा) प्रसार किया । अत्यंत अल्पायु में ही सम्प्रदाय का
 कार्यभार समालोक के कारण उनकी प्रवृत्तियाँ अन्तर्मुख हो गयी । अपन समस्त समय
 साम्प्रदायिक गैरियों के अध्ययन मनन एवं चिंतन में लगाने ली । इनकी ऐसी
 प्रवृत्ति होने से गिरिराज पर श्रीनाथ जी की सेवा में वल्लभ द्वारा नियुक्त
 बंगाली वैष्णवों का प्रभाव (बढ़ने) लगा । सं० १५६६ से सं० १६०७ के मध्य का
 काल बंगालियों से संघर्ष एवं गृह कलह स्वरूप अत्यंत अशान्त वक्तावातावरण में
 समाप्त हो गया । १६०७ में गौस्वामी विट्ठलदास जी पुष्टि सम्प्रदाय के
 नितकंठक आचार्य बन चुके थे । तत्कालीन समाज पुष्टिमार्ग की सेवा पद्धति से
 अत्यंत प्रभावित हुआ अतः सेवा पद्धति का क्रियात्मक विस्तार करते पर गौ-
 स्वामी जी ने ध्यान देना शुरुआत कर दिया । क्योंकि सैदान्तिक पदा कोती
 वल्लभ पूर्ण स्पष्ट कर गये थे । मूल सूत्र गौस्वामीजी ने वही रखे जो वल्लभ जी
 के थे । वल्लभ जी ने रामदास हरसानी, को श्री नाथ जी की सेवा की आज्ञा
 दी और सेवा करने का पूर्ण ढंग बताया । 'पहले श्री आचार्य जी ने भार
 की चन्द्रकान को मुकुट सिद्ध करवयया और गले में गुजाफल की माला सिद्ध करी।

श्रीनाथ जी की सेवा श्रृंगार करके रामदास जी को बताओ और कह्यो तुम नित्य सकारे गोविन्द कुंड जायेंगे स्नान करके? जल को पात्र भर लाया और श्रीनाथ जी को स्नान करके कराकर जै ह्रीं किया है तै ही करियो

और गुंजा चन्द्रकान्ती धारणा नित्य करे जो कुछ भावदेच्छा से प्राप्त हो जायसी सिद्ध करके श्री ठकुर जी को भोग समर्पियो । वल्लभ जी के समयमें पूजा बहुत सामान विधि से हो रही थी । इसी प्राकट्य वक्तव्य में उल्लेख मिलता है कि फौरन ठ गुसाई जी ने श्रीनाथ जी के स्नान के प्रमाण बाध्या सा, वर्षा दिन के एक लक्ष रुपये में सब ठौर लहुआ और सामग्री आदि

आरोगने ली । और सब उत्सव सब प्रकार बांध दिए । ब्रजवासियों के घर से जो दूध दही आवे सो दूध दही सब घर की सब गायन को आरोगे ।

प्राकट्य वार्ता के पृ० ४४ पर कथन है ' गुसाई जी आप विचारें आज कल ग्रीष्म काल है तासू आपकू दही भातप्रिय है सो नित्य राज भोग में करने ली ।

ऐसे सब भोगन में सब नेग जीग बांधि, श्री जी की इच्छा से कृत कृत और समय-समय के नेग जो गर्बध गय । यहाँ यह स्पष्ट शब्दों में बताया गया है कि गोस्वामी विठ्ठलदासजी ने कृत एवं समयानुसार सेवा पद्धति को सुव्यवस्थित किया । इस सेवा पद्धति में उन्होंने कीर्तन सेवा की और उतना ही ध्यान दिया जितना ही उन्होंने श्रृंगार भोग के पारितकार की और दिया था । कीर्तन में संगीत का पूर्ण समावेश होता है । संगीत में ऐसी ही अलौकिक शक्ति निहित है कि जीव मात्र को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है । स्वयं भगवान का कहना है कि ' (नाहं वसामि वंछु योगिनाम हृदये न च)

मदभक्ता यत्र गायन्ती तत्र निष्ठन्ति भारतः ' । श्री वल्लभ जी के कथनानुसार निरोध लक्षणों में कीर्तन सेवा का महत्व प्रतिपादित किया है, ' ब्रज पूज्य गुरुजनों की कृपा से सब भगवान अनुग्रह करेंगे तब अपने सुख के लिए भगवान का कीर्तन करना आवश्यक है । भगवान का गुणगान करने से सच्चिदानन्द की सिद्धि होती है वह । श्री गिरिराज पर श्री नाथ जी की सेवाका प्रारंभ समय

वाचार्थ जी ने कुंभन दास को उनका कीर्तन पदों का नियुक्त किया। सूरदास तथा परमानंद दास जिन्होंने लक्षा विधि द्वारा श्रीनाथ जी की सेवा सम्पन्न की थी, श्री वल्लभाचार्य जीद्वारा ही श्रीनाथ जी की कीर्तन सेवा के लिए नियुक्त किए थे। कीर्तन सेवा में वाद्य यंत्रों, कृतु तथा सम्यानुसार राग रागयिनों का समावेश का सतत् कि सफल प्रयत्न गोस्वामी विट्ठलनाथ ने ही सम्पन्न किया। तथा कीर्तन तथा सेवा का समय निर्धारित किया। पुष्टिमागीय सेवा स्थलों में यही क्रम अब्याविधि प्रचलित है।

श्री नाथ जी की सेवाकी विधि पूर्वक शोभायमान रूप से सम्पन्न करने के लिए श्री विट्ठलनाथ जी ने सं० १६९२में ही अष्टछाप की स्थापना की। अष्टछापके के कवि उस समय के सर्वोत्कृष्ट गायक, संगीतज्ञ तथा साहित्य के प्रणेता थे। इन अष्टछापके कवियों में चार वल्लभ जी द्वारा नियुक्त किए हुए कीर्तनकार थे, शेष चार गोस्वामी विट्ठलनाथ जी द्वारा नियुक्त हुए। इनमें सर्वोत्तम स्थान सूरदास का था। वाचार्थ रामचन्द्र शुक्ल के कथनानुसार, 'वाचार्थ की छाप लगी हुई बाठ वीणारं श्रीकृष्ण की प्रेम लीला का कीर्तन करने उठीं। जिनमें सबसे ऊंची सुरीली और मधुर मनकार अन्ध कवि सूरदास की वीणा की थी'। यथार्थ में कृष्ण भक्ति का जितना मधुर मार्मिक और सरस चित्रण सूर ने कियाउतना हिन्दी साहित्य का कोईभी कवि श्रीकृष्ण लीला वर्णन के उच्च स्तर का स्पर्श भी नहीं कर पाया। वाचार्थ नन्द दुलारे वाजपेयी के शब्दों में, 'इन बाठों कवियों में सूर दास का स्थान सर्व श्रेष्ठ तथा सर्वोच्च था। वाज हर्ष राधा कृष्ण का जो भी चित्रण हिन्दी काव्य प्राप्त है, उसमें अष्टछाप सर्वाधिक सरस, प्रभावशाली, भक्ति से परिपूर्ण एवं चिर स्थायी है। तथा उसमें सूरका सूर सागर सर्व श्रेष्ठ है।'

१- सूरदास, पृ० १४६ (वाचार्थ रामचन्द्रशुक्ल)

२- महाकवि सूरदास - नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० ७७

सूरदास जी के बाह्य चक्षु नहीं थे परन्तु ईश्वरकृपा से उनके ज्ञान चक्षुओं द्वारा भावान की सेवा में किए गये विविध श्रंगारों का अन्तर प्रवृत्ति हो जाता था । नित्य सेवा में बाँटों समय नवीन वर्दों द्वारा प्रभु के समक्ष कीर्तन किया करते थे । भक्ति कालीन कवियों का एक मात्र लक्ष्य अपने प्रभु के चरणों में मनसा, वाचा, कर्मणा द्वारा स्वयं समर्पित कर देना था । सर्वस्व समर्पण में अहंता ममता का पूर्ण लीप हो जाता है । भक्ति काल के कवि केवल कवि नहीं थे , वे अपने प्रभु के एक मात्र प्रेमी भक्त थे । उनकी प्रभुभक्ति उच्च कोटि की थी । अपने विषयमें कभी भी कुछ कहने का आकाश भी नहीं मिला ।

वल्लभ सम्प्रदाय के वाता साहित्य को सब विद्वान प्रमाणिक एवं महत्वपूर्ण मानते हैं । आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी डा० दीनदयाल गुप्त , द्वारिक दास पारिख, प्रभु दयाल मित्तल, डा० हरवंशलाल शर्मा, डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल आदि विद्वानों ने वाता साहित्य को पूर्ण प्रमाणित माना है । महाकवि सूरदास वल्लभ जी की शरण में सं० १५६७ वि० में आये । सूरदास की वाता में सूरदास संबंध में लिखा है, ' जो गरु घाट ऊपरसूर रहते तब कितेक दिन पाछे श्री आचार्य जी अडैल से ब्रज अठ पधारते हते ता समय एक सेवक सूर दास के यहां आयो । सो वान जायेके सूरदास को खबर करी सूरदास जी आज यहां वल्लभ जी पधारे हैं, सो काशी में तथा दक्षिण में मायावाद खंडन किया है और भक्ति मार्ग स्थापित किया है तब यह सुनके सूर ने अनि सेवक सो कहा जब वल्लभ जी भोजनोपरान्त निश्चिन्त हो गदी तकियान पर बिराजे ता समय तू स्मरूं अ खबर करियो । मैं वल्लभचार्य के दर्शन के लिय चलीया । सूरदास वाही समझ अपने संग सबी सेवकन को लैके वल्लभ जी के दर्शन हेतु जाये ता पाछे सूर ने यह पद गाकर सुनया - (होइ हरि सब पतितन को नायक और प्रभु ही सब पतितन को टीको) ये सुनिके आचार्य जी ने सूरदास के कहा, ' सूर लैके ऐसी धिधियात काहे को है ?)इस कथन पर सूर ने आचार्य जी से कहा, महाराज मुझे

भगवत लीलाओं का ज्ञान नहीं है तब आचार्य जी ने सूर से कहा, हम तुमको भगवद लीलाओं का ज्ञान करायेंगे । उसके बाद वल्लभ के आदेशानुसार सूरदास यमुना में स्नान करके आये तब वल्लभ जी ने आग्रह पूर्वक उन्हें सम्प्रदायिक पद्धति के अनुसार अष्टछाप मंत्र की प्रारंभिक दीक्षा प्रदान करके ब्रह्म संबंध दीक्षा से दीक्षित कर उनके समर्पण कराया । तब आचार्य जी ने ध्रुमपूर्वक उन्हें श्रीकृष्ण लीलाओं के अष्टाय मंडार श्रीमदभागवत गीता के दशम स्कंध की स्वरचित अनुक्रमणिका सुनाई । इससे सूर के हृदयमें लीलाओं का स्मरण हुआ - सुबोधिनी के मंगलाचरण की वह कारिका देखिए-

नमामि हृदये श्रेष्ठी लीलादिगिरिष्वि शायिनाम्

लक्ष्मीसशस्त्र लीलाभिः सेव्यमामः कलानिधिम्

इसे सुनकर सूर तुन्त पद गाकर सुनाया -

चकई री बलि चरन सरौवर जहं न प्रेम वियोग

इस पद का सुनकर आचार्य जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले - कोई कि नन्दालय की कोई लीला गाओ । तब सूर ने श्रीकृष्ण जन्म पर नन्द बाबा के हाथ वाले महीत्सव का वर्णन किया -

‘ब्रज भयीं महरिके पूत जब जब यह बात सुनी’

इसे सुनकर वल्लभ जी काएसा अनुभव हुआ मानी वे स्वयं नन्दालय के निकट लड़े हैं । जब तत्पश्चात् अत्यधिक प्रसन्न होकर भागवत के दशम स्कंध से द्वादश स्कंध तक की लीलाओं का , जिसमें, दानलाल, मानलीला आदि प्रसंग भी शामिल थे वर्णन किया । सूरवाता के अनुसार सूर अपने सेवकोंसहित तीन दिन रहे इस बीच में आचार्य उन सभी सेवकों को पुष्टिमार्ग में दीक्षित कर दिया । सूर की साथ लेकर आचार्य जी ब्रज पधारे । श्री नवनीत प्रिय जी की गोकुल की बाल लीला का वर्णन किया । सूर ने तब बाल लीलाओं के भी अनेकों पद आचार्य जी को सुनाये । (शोधित कर नवनीत लिए)

मेया कबहि बढीगी चौटी, आदि पद सुनाये । इस प्रकार उनकी काव्य प्रतिभा से प्रभावित होकर अष्टस्र आचार्य जी ने उन्हें श्रीनाथ जी की सेवा में नियुक्त कर दिया । तत्पश्चात् महाकवि ने श्रीनाथ जी की जानने से शयन पर्यन्त तक के अनकों पदों की रचना की । इस प्रकार सेवा करते हुए उन्होंने अपना जीवन गवधन के निकट पारसौली में व्यतीत किया । सूर से पूर्व कुंभ दास से नाथ जी की सेवा में नियुक्त थे । फिर सूर के बाद परमानंददास जी ने कार्य भार संभाला । डा० गोवधननाथ शुक्ल के मतानुसार परमानंददासने १५७७ सन् में महाप्रभु से ब्रह्मसंघी दीक्षा की ग्रहण की । और आचार्य जी के साथ अडैल में ही रहने लगे । उनके साथ कृष्णव्रता को गये^१ । श्रीनाथ जी के मंदिर पहुँचने पर आचार्य जी ने उन्हें श्रीनाथ जी की सेवा में नियुक्त करलिया । अक्सर मिलने पर वे नवनीत जी के दर्शनार्थ भी जाया करते थे । श्रृणागति काल से (सं० १५७७ वि० से) लेकर देहावसान समय तक (१६४० सं०) तक ये महककवि श्रीनाथ जी की सेवा में रत रहे । वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पश्चात् सूरदास जी की काव्य प्रतिभा को अत्यन्त उन्नति होने का स्वर्णिम अक्सर प्राप्त हुआ । प्रथम तो महाकवि को अपने नूतन पदों की रचनाओं के लिए दिशा प्राप्त हो गई और अपने भावों में श्रीमदभागवत के भावों का सार भी ग्रहण किया । सूर सागर में अनेक पदों का संकलन भागवत के स्कंधों एवं घटनाक्रम के अनुसार ही किया गया है । एक शंका उपस्थित होती है कि पुष्टिमागीय सेवा के बाठों समय भागवत पुराण की घटनाओं से सीधा संबंध नहीं है अर्थात् मंगला, श्रृंगार ग्वाल, राजभोगादि के समयोंमें केवल भागवत पुराण की घटनाओं के आधार पर ही पद रचनाकार के नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि कीर्तनकार को अपने पदमें जिस समय की दर्शनही रहे हों, उस समय के भावों को एवं अपने प्रभु को दिए गये श्रृंगार का चित्रण कवि को अपने पद में करना पड़ता था । पुष्टिमागीय सेवाक्रम के अनुसार राजभोग के उपरान्त वल्लभ सम्प्रदायमें अक्सर अथवा अक्सर होता है । इस समय प्रभु की लीलारं निकुंजान्तरगत होने के कारण

१- कविवर परमानंददास और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ६०

२- अष्टस्रान की वाता, पृ० १६

व्यक्ति रहस्यमय और गुप्त समझी जाती है । इसलिए इस समय के प्रभु के दर्शन बन्द रहते हैं । यह समय सेवक भावस सत्संग या भावद ग्रन्थ अध्यायन में व्यतीत करता है ।

यह सर्व सम्मत तथा सर्व विदित है कि सम्प्रदाय दीक्षा लेने से पूर्व सूर की काव्य व्याप्ति समस्त ब्रज मंडल तथा आस पास भी फैल चुकी थी । परन्तु यह रचनाएं प्रसंग स्तर की हैं । इनके पद भाव प्रवणता, भाषा बन्द अलंकारादि अर्थात् कलात्मक और भावात्मक कष्ट से अत्यन्त उच्च कैटि की है पुष्टिमार्ग में सेवा का मूलधार बाल भाव एवं निकुंज भाव अर्थात् श्रृंगार भाव ही है । वाता प्रसंगों से ज्ञात होता है कि सूर की विशेषासक्ति नवनीत प्रिय (बालकृष्ण) पर थी । वे इनके दर्शनार्थ भी जाया करती थी । यही कारण है कि इनके पदों में बाललीलाओं का अतिरिक्त सूक्ष्म चित्रण है । बालकृष्ण की सेवा इस सम्प्रदाय में नन्दालय की भावना से की जाती है । अष्टयामी सेवा की मृदुलता वैष्णव का हर समय सलग्न रहती है । सूर दास के समय में भारत तथा एक एक कण भक्ति परिपूर्ण था । फिर सूर को बुद्धादित के प्रणेत आचार्य वल्लभाचार्य तथा सेवा वैभव को द्विगुणित करने वाले गोस्वामी विदेठलनाथ जी का सानिध्य प्राप्त था । ब्रह्म स संबंध के पश्चात् भक्त का जीवन कृष्ण भक्ति से परिपूर्ण हो जाता है । इनका जीवन प्रारंभ से विरक्त ही चुका था । चरम चढुओं के अवस्था में सांसारिक भोगोंसे वे प्रकृति द्वारा पृथक करदिए गये थे । आचार्य जी तथा गोस्वामी जी का तत्कालीन समाज पर ही नहीं उस समय राजा उत्कृष्ट कोटि का मक्ते का संगीतज्ञों पर विशेष प्रभाव था । प्रभु के प्रति प्रेम का अभाव शनः शनः परिवर्तित होकर व्यसन भाव से परिणित हो जाता है । जीव का यह व्यसन भाव ही मानसी सेवा है । सूर को भी उस भाव की प्राप्ति ही गयी थी । सूर का काव्य प्रतिभा से प्रभावित होकर ही आचार्य जी उन्हें सागर कहा करते थे और गोस्वामी जी उन्हें पुष्टिमार्ग का जहाज कहा है । इस सेवा भावना में ही महाकवि का जीवन एक रस ही चुका था । पुष्टिमार्गीय जहाज

में पुष्टिमागीय सिद्धान्तरूपी समूल्य मौती भरे पड़े थे । नाथद्वारे की प्रमुख मंदिर तथा पुष्टिमागीय मंदिरों में सूर का जन्मात्सव बड़े धूम धाम से मनाया जाता है । पुष्टिमागी के सेव्य ग्रहों को प्रणाली में कुछ अन्तर पढ़ाया जाता है परन्तु सभी प्रणालियों में महाकवि के पद सबसे बड़ी संख्या में पाये जाते हैं । सूरदास की सागर कहे का तात्पर्य यह है कि उनके हृदय में दशविध लीलाओं की स्थिति ही चुकी थी । उन्हीं लीलाओं का अभाव तरंगों को सूर ने अपने अस्तित्व पदों में व्यक्त किया है । ये पद संतप्त जीवों की सदैव शान्ति देने वाले हैं । अष्टछाप के बाठों कवियों को श्रीनाथ का बाललीलाओं अष्टसखा एवं निकुंज लीलाओं इन कवियों को अष्टसखियों का बताया गया है । रहस्य भावना में श्रीकृष्णकुल नाथ जी का कथन है, श्री गिरिराज के बाठ द्वार हैं, तहां अष्ट सखा सखी हीय एक ही रूप लीला के साधक है जो बाठी प्रहर रहते हैं, सो अष्टछाप पुष्टिमागी में भवदीय है सो सागरी लीला सारस्वत कल्प के श्रीपूर्ण पुरुषोत्तम के अनुभाव को गान किए है सो चारो युथ पति मुख्य श्री स्वामिनी, श्री यमुनाजी, श्रीचन्द्रवली, श्री राधा सहचरी, इनकी भाव लीला बुद्धि अनुसार करत है । अष्टसखाओं के साथ श्रीनाथ जी खेलते थे और अपने सबको सखाओं को प्रभु के लीलाओं का प्रवृत्त अनुभव कराते थे । श्री गिरिधर लाल जी की १२० वचनानुमूर्ति में श्री गिरिधर लाल जी का कथन है, 'जो अष्टछाप है वे तो अष्टसखा है, जो अजुन सुबल, सुबल तर्क, श्रीदामादि लीला से संबधी हते । इनके पदों में को अक्षर उल्टो हीय तोउ आप सुधी मनन लेत है क्यों कि जीस्य भक्ति का दाम है । जो हो सो करे सोउ सहाय तकी रीस नहीं' । महाकवि अकबर को उनके सहज करने के स्थान पर यह पद सुनकर उसे अपनी स्थिति का मान करा दिया ।

नाहि न रहो मन में ठौर

नन्दनन्दन अथ वे आनिर उर और

स्यामगात, सरीज आनन ललित अति मृदु हास

सूर ऐसे रूप कारण, मरत लीचन प्यस (सूर सागर)

१- श्रीगिरिधर लाल जी महाराज के १२० वचनानुमृत पृ० १६

२- सूर सागर, पद

महाकवि को अपने प्रभु को दिए गये श्रृंगारादि का अंतर चक्षुओं से ज्ञान हो जाता है। इस विषय में अष्टसलान का एक अत्यधिक पुष्ट प्रमाण प्राप्त होता है। एक बार सूरदास श्रीनाथ जी की सेवा से कसर पाकर नव-नीत प्रिय जी के दर्शनार्थ गोकुल जाते थे और ऐसा भी श्रृंगार होता था उसका वैसा वर्णन अपने पदों वर्णन कर देते थे। एक बार गोस्वामी जी के पुत्रों ने उनकी परीक्षा लेनी चाही और श्रृंगार में उन्हें प्रतिमा को वस्त्र धारण न कराकर केवल मोतियों के बाणूषाणों से श्रृंगार कर दिया। सूर ने इसे अपने वान्तर मन के चक्षुओं से देख लिया और वर्णन किया -

देख री हरि नंग नंगा

जल सुत भूषण आ विराजति वसन हीन हवि उठति तरंगा ।

पुष्टिमागीय सेवा में सेव्य की सेवा के दो रूप हैं (१) नाम सेवा
(२) स्वरूप सेवा -

स्वरूप सेवा तीन प्रकार से सम्पन्न होती है - (१) तनुजा, (२) वित्तजा और (३) मानसी। इस मार्ग में जीव की प्रमुख तीन कौटियां बताई गयीं हैं - (१) पुष्टि, (२) प्रवाह और (३) मयादा। पुष्टि जीव पुनः तीन प्रकार के होते हैं - (१) प्रवाह पुष्टि जीव (२) मयादा पुष्टि जीव और (३) शुद्ध पुष्टि जीव। प्रवाह पुष्टि जीव सांसारिक क्रियाकलापों में लिप्त रह कर प्रभु सेवा की और प्रवृत्त रहता है। मयादा पुष्टि जीव संसार में तो आसक्त रहता है पर भावत्सेवा में श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि मयादा भक्ति के आंगों का आश्रय ग्रहण करता है। शुद्ध पुष्टि जीव निःसाधक होकर एक मात्र प्रभु से प्रेम करता है। श्री सेव्य स्वरूप की सेवा में सेवक की व्यसन होजानता है, इस दृष्टि से मानसी सेवा दो प्रकार की होती है - (१) मयादा मानसी (२) पुष्टि मानसी। पुष्टि प्रवाह मयादा भेदः ग्रन्थ आचार्य वल्लभ ने इसका विवेचन किया है। पुष्टि सेवा के भी दो रूप हैं - (१) नित्य सेवा (२) वर्णात्सवी सेवा।

नित्य सेवा कृतु के अनुसार होती है। इस सेवा के भी तीन अंग हैं -

(१) राग (कीर्तन कीर्तन), (२) भोग (व्यंजनादि) और (३) श्रंगार। कीर्तन इनमें बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। दर्शन खुलने से पूर्व कीर्तनिकां गली (जिह्वा) भावना के संबंध में लिखा है, 'गिरि कन्दरा में श्याम मंदिर तहां अष्टसखा सावी सम्यानुसार कीर्तन करता है, ताही भाव सो ये गुफा आकार में गली निमाणि मयी। यह लीला जो को निकुंज है) भविविध वाद्य यंत्रों से के साथ कीर्तन करते हैं। कीर्तन इस समय की सेवा का पूर्ण चित्रण होता है। अष्ट-रूप केवियों में सूरदास तथा आचार्य वल्लभ तथा गो० विट्ठलदास जी का सर्वोच्च सर्वाधिक सानिद प्राम्त हुआ है। महाकवि दोनों ही महानुभावों की अनुकम्पा थी।

पुष्टिमागीय सेवा एवं कीर्तन प्रणालियों में प्रथम नित्य सेवा विधि कीर्तनों को प्रस्तुत किया जाता है। नित्य सेवा में प्रथम मंगला का स्थान है। अष्ट ग्रह प्रणाली में मंगला के विषय में लिखा है - प्रातः काल सूर्योदय से पूर्व जागि के प्रभुचित्र का दर्शन करी, अपने कंठ में पड़ी तुलसी माला दर्शन करि - श्री प्रभु को आचार्य जी श्री यमुना जी की और श्री गौसाई जी की स्मरण करि शीघ्र जय दातुन करि खासा जल व्याह केवरणामृत ले तिलक करि श्री यमुनाष्टक श्रीसर्वोत्तम जी को पाठ आवत होय सो पाठमथावकाश करि। मंदिर में जाय ताला मंगल सोलि दंडवति करि श्या रात्रि को साम माला बीड़ा, की थाली, बंटा, झारी सब सक्य झारी, उलाप, शंगार को धरनी। बंटा खाली करि खासा करि के धरने माला बीड़ा की थाली मो खाली करनी। अनसख जी को बंटा लाय खासा करि धरनी, सिंहासन की तबकड़ी, खासा करिके कोरीकरिके ख धरनी। साज पलटने वाला होय तो पलटो। निज मंदिर में सोहनी मन्दिर वस्त्र करनी। पाठे हाथा खासा करि और हुं सेवा पहाँचवे की होय सो पहुँचनी। मंगल भोग की तैयारी करनी। फिर प्रभु को जगाया जाता है - उदाहरणार्थ -

जागिए, ब्रजराज कुंवर, कमल कुसुम फूलै ।
 कुमुद वृन्द संकुचित भये, भृंगलता झूलै ।
 तमचुर लग रोर सुनहु, बोलत बनराई ।
 संमति जो खरिकनि में, बकरा हित धाई ।
 विधु मलीन रवि प्रकास, गावत नर नारी ।
 सूर स्याम प्रात उठा, अम्बुज कर धारी ।

कितना स्वाभाविक तथा प्राकृतिक चित्रण है । सभी बच्चे प्रातः सोने सुख अनुभव करते हैं । माता उन्हें जानने के तरह तरह के उपाय करती है । बच्चों में प्रति स्पर्धा का भाव अधिक मात्रा में होता है वे काम से आगे रहना चाहते हैं । इसीलिए मां का कहना है कि पशु पक्षी सभी जाग गए हैं अब तुम्हारा खेल सोते रहता ठीक नहीं है । धीरे श्रीकृष्ण दर्शनार्थ ब्रज वासियों की भीड़ लग जाती है -

अति अनंदित हीति जसुमति, देखि दुति नई
 जौ जंगम जीव पसु लग लग, और ब्रज सवहि
 सूर को दरसन दीजे, असन किरन छई ।

मां बेटे को जानना भी चाहती है पर दुःखिधा में पड़ जाती है क्योंकि खेलों सोते हुए लाल मुख को देख कर स्वयं आनंदित भी होती है । बालकृष्ण को जानने के लिए आई हुई वृज्वनिता को संबोधित करके माता यशोदा आनंदित होकर कहती है -

लासे नाहि जाय सकत सुन सौ बात सजनी ।
 अपने जान अजहुं कान्ह, मानत सुख रजनी ।
 जब जब हौं निकट जाऊं, रहत लग सोया ।
 तन की सुधि बिसार जत देखत मुख - सोभा ।

मां के हृदय में पुत्र के प्रति प्रगाढ़ वात्सल्य का भाव है । सखी से कहती है -

ऐसा लगत है कि कन्हैया सोच रहे हैं कि अभी रात्रि ही है इसीलिए वैज्य तक सार है । काफी उपाय करने पर भी जब बेटा नहीं जागता तोवै कह उठती है -

कोन परी मरे लालहि बानि
 प्रात समय जागन की बिरिया सोवत है पीताम्बर तानि ।
 संग सखा वृज बाल खै सब , मधुवन धनु चरावन जान ।
 मातु जसोदा कब की ठाढ़ी दधि-जोदन भोजन लिए पान ।

इसी समय माता की जानने का एक उपाय सूझता है जिससे कृष्ण एक दम उठ बैठे देखिए कैसा मनोवैज्ञानिक चित्रण है -

तुम मोहन जीवन धन मेरे - मुरली नेकुं सुनावहु कान ।
 यह सुनि स्त्रवन उठे नन्द नन्दन, वंसी निज मांग्यो मृदुबानि ।

इस प्रकार के पद लाभ सभी सेव्य ग्रहों में सेवा ठाकुर को जाननेके लिए गार जाते हैं -

जागो ही तुम नंद कुमार ।
 जागहु ही वृज राज हरि ।
 जागिए गोपाल लाल, वानंदानिधि नन्द बाल ।
 उठै नन्दलाल भयो भिनुसार, जावति नन्द की रानी ।
 तुम जायो मेरे लाडिले, गोकुल सुखदायी ।

पुत्र के जानने पर मां उससे कल्ला करने को कहती है - प्रायः भगल भोग में नागरी में दूध दही माखन मिश्री मलाई उष्ण काल होय तो वाय और शीतकाल होय तो सोभाग्य सूंठी हूं बावै है । जसखडी में ठार अखा जो बाराकी सामग्री करि होय सो दूसरी थारी में साजनी । माता पुत्र के जागते ही भ्रम पूर्वक कल्ला करने का वाग्रह करती है -

कमल नयन हरि करी कलैवा ।

माखन, रौटी, सद्य जम्पीदधि, भांति भांति के भवा ।

खारिक, दास, चिराँजी, किसमिस, उज्जवल वल गरी बादाम ।

सफरी, सैव, छुआरे, पिस्ता, तै तरबूजा वल नाम ।

कस भवा बहु भांति भांति के षाटरस के मिष्ठान्न ।

सूरदास प्रभु करत कलैवा, रोम्है स्याम सुजान ।

इसी प्रकार का एक और पद है जिसमें कलैवा की सामग्री का वर्णन किया गया है -

उठिए स्याम कलैवा कीजे, मनमोहन सुख निरखत कीजे ।

खारिक, दास, खीपरा, खीरा, कैरा, आम, अरव रस खीरा ।

श्रीफल मधुर चिराँजी आनी, सफरी चिउरा अरुन सुबानी ।

धवर, फनी औ सुपारी, खीवा साहु बलिहारी ।

रुचि पिराक लाडू दधि आनी, तुमको भावत पूरी संधानाँ ।

तब तमील रुचि तुमहि खवावी, सूरदास पन्वारी पावी ।

इस प्रकार माँझकों प्रकार से कलैवा करने के लिए बच्चे को तैयार करती है।

कलैवा के बाद कृष्ण बन जाने को ज़िद करते हैं तो देखिए किस प्रकार संकित होती है और तरह तरह से उसे रोकने का प्रयास करती है, 'बेटा मैं तेरे लिए चकरी, डोरा, बंगी, हंस, मोर कबूतर, सखी खिलौने घर पर ही एकत्रित किए देती हूँ' । कभी कभी यशोदा ग्रह कार्य में व्यस्त रहने के कारण कमीबालकृष्ण और बलराम को कलैवा देना भूल जा जाती हैं । तब दोनों माई कलैवा का समय माँ से कलैवा मांगते हैं - देखिए कैसा स्वाभाविक चित्रण है -

दोउ भैया मांगत भैया पे दै भैया दधि माखन रौटी ।

सुनि जसुमति यह बात सुतन की, झूठेहि धाम के काम अंगरी ।

बलभद्र गह्यो नासिका की मोती, कान्ह कुंवर गहि छड़ कर चौटी ।

माना हंस मोर भल लीनी, उपमा कहा बल बरनी मति ह्योटी ।

यह देखत नन्दराय अंदै, प्रेम मगन जो करत लौटा पोटी ।

सूरदास प्रभु बल मुदित जसोद, भाग बड़े करमन की मोटी ।

पुष्टिमागी में यद्यपि प्रेम एवं भावना ही प्रबल है, परन्तु आचार्य वल्लभ के अनुसार इस सर्वतोधिक प्रेम-भाव के साथ माहात्म्य ज्ञान भी होना आवश्यक है । वैष्णवों के सैव्य सामान्य बालक न होकर पूर्ण पुरुषोत्तम अवतार श्रीकृष्ण हैं । कलैया मांगति समय वे दधि पथन की तैति पकड़ लेते हैं, उस समय कवि का कहना है कि शेषानाग कांप उठते हैं, सुमेरुपर्वत हिल उठता है एवं समुद्र व्याकुल हो जाता है -

तनक दे री माई माखन तनक दे री माई ।
 तनक कर पर तनक रौटी, मांगत चरन चलाई ।
 कनक भू पर रतन रेखा, नैति पकरयो धाई ।
 कैप्योगिरि अरु शेष सैव्या, उदधि चत्यो कुलाई ।
 तनक मुख की तनक बतियां, बोलत हैं ततुराई ।
 जसोमति के प्रान-जीवन, उर लियो ल्यटाई ।
 मेरे मन केतनक मोहन, लागु मोहि बलाई ।
 श्याम सुन्दर अरु नन्द कुंवर पर, सुरबलि बलि जाई ।

श्या सुन्दर के जाग जाने पर ब्रजवासी श्रीकृष्णके दर्शन हेतु नन्द द्वार पर एकत्रित हुए हैं । प्रातः कलैया करने के उपरान्त माता यशोदा बेटे को गोद में लेकर बैठ जाती है औ वे इस प्रकार भक्तों को दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं । इसी बात को ध्यान में रखकर मंगला भोग के पश्चात् प्रभु को श्या से उठाकर सिंहासन पर विराजमान करके पुष्टिमागीय सेवागृहों में मंगला के दर्शन खुलते हैं । इस समय प्रभु की वासी उतारी जाती है । पुष्टिमागीय आचार्य इस (मंगलं मंगलं ब्रजभुवि मंगलम्) नामक आयी का सस्वर पाठ करते हैं । इसी भाव से संबंधित सूर का पद देखिए -

ब्रज मंगल की मंगल वारति ।
 रतन जटित कनक थार ले, तामधि चित्रकपूर ले बारती ।

लेति बलाई करति न्योछावर, तन, मन, प्राण वारके वारती ।

सूरदास भरी है जसोदा मगन भई तन मन न सवारती ।

आरती के पश्चात् भावत दर्शन खुलने पर प्रभु के सम्मुख कुछ पद गद्य-गद्य गाय जाते हैं, इन पदों यमुना जी के पद भी गाय जाते हैं -

श्री यमुना भैया तिहारो दरश मीय भावे ।

श्री गोकुल के निकट बहत हो लहरन की छवि आवे ।

सुख छ दैनी दुःख छणी श्री यमुना कौ जो जन प्रात उठ नखवे ।

मदन मोहन जी के सरी हो प्यारी पटरानी जु कहावे ।

विन्द्रजन में रास रच्या है मोहन मुरली बजावे ।

सूरदास तुम्हें प्रभु तुम्हारे मिलन की वैद विमल्यश गावे ।

पुष्टिमागीय सेवा में यमुना जी के महत्त्व का संकेत श्री वल्लभाचार्यकृत 'यमुनाष्टक' से मिलता है । उन्होंने यमुना व्रार्थना करते हुए उसे यम त्रास की निवारक शक्ति से सम्पन्न बता या है -

श्री परमानंद दास की बाल लीला का वर्णन में बहुत मन मोहक है । कृष्ण धीरे पैदल चलना सीख जाते हैं और डगमगाकर रखते मां का हृदय बल्लियाँ उछलता है -

मैं वारी मेरे लालन पग धरी छतियां ।

कमल नैन बलि जाऊँ वदन पर ।

सोभित न्हानी न्हानी दै दूध की दतियां ।

यह मेरी, यह तेरी, यह बाबा नन्द की ।

यह ताकी जी झुलावे तेरा पलना ।

यहां ते चली सर-सात पीवत जल ।

परिहरी कदन, हंसि मेरे ललना ।

रुन भून बाजे पांय वैजनियां ।
 अलबल अल कल मृतु बनियां ।
 परमानंद प्रभु त्रिभुवन ठाकुर ।
 ताहि मुलावत नंद जु की रनियां ।

अष्टछाप के ही श्रीकृष्ण दास की श्रीकृष्ण बाल लीला की एक झलक देखिए-

हरिमोहन की मोहन बानी ।
 मोहन रूप मनोहर भूरति, मोहन मोह अवानक ।
 मोहन क बकहाचंद सिर भूषान, मोहन तैन सलौख
 मोहन तिलक माल मनमोहन, मोहन चारु कपील ।
 मोहन श्रवन मनोहर कुंडल मृतु मोहन के बोल ।
 कृष्णदास गिरिधरन मनाहर, नख-सिख प्रेम कपील ।

इसी प्रकार बाल लीला के पद तो लगभग सभी कृष्ण भक्त कवियों ने रचे हैं ।

चीर हरण लीला का श्रीमद्भागवत में विस्तार से वर्णन हुआ है ।
 चीर हरण लीला का प्रसंग श्री श्रुति रूपा ब्रजवालाओं के कृष्ण के पति रूप में
 प्राप्त करने हेतु कात्यायनी व्रत करने के प्रसंग में आता है। इस व्रतानुसार प्रातः
 काल ब्रजवालाएं यमुना स्नान करके सूर्य देव की उपासना करती थीं । एक दि-न
 भगवान् गापियों के सभी वस्त्र छेड़कर कदम्ब वृक्ष पर चढ़ जाते हैं और वस्त्र
 उन्हें तभी वापिस देते हैं जब वे निर्वसन होकर बाहर वस्त्रों हेतु याचना करती
 हैं । श्री आचार्य ने इस लीला का रहस्य स्पष्ट करते हुए कहा है कि कृष्ण का
 यह कार्य ब्रजवालाओं रूपी आत्माओं से वस्त्र रूपी मायाका आवरण हटाने के
 तुल्य है - अर्थात् प्रभु से आत्मा का तभी ही सकता है जब यह माया के आवरण
 को दूर कर देती है । इस लीला संबंधित पदों को मंगला की लीला में गणा
 जाता है । ऐसे कोतनने की राग की रामकली राग के नाम से पुकारते हैं ।
 एक झंकी देखिए-

हमारे अम्बर देहु मुरारी ।
 लै सब चीर कदंब चढ़ि बैठ, हम जल मांझ उधारी ।
 तट पर बिना वसन क्यों आवैं, लाज लाति है मारी ।
 चौली हार तुमहि की दी न्हा, चीर हमहि बे धौ डारी ।
 तुम यह बात अवम्भै भासत, नांगी आवहु नारी ।
 सूरस्याम कछु मो करी जु, सीत गई तनुमारी ।

इस बात का उत्तर देखिए प्रभु किस ढंग से दैते हैं-

ग्वलित अपन चीरहि लैरी ।
 जलैं निकसि निकासि तट, दौउ कर जोरि सीस दै री ।
 कत हो सीत सहित व्रज सुन्दरि, व्रत पूरन सब मै री ।
 मेरे कहै आखँ पहिरो पट, कस तन ह्य जै री ।
 ही अन्तर जामी जानत सब, अति यह पैज करी री ।
 करि होपूरन काम तुम्हारी, रास सरद निसि ठै री ।
 संतत सूर स्वभाव हमारी कत, मै कम करी री ।
 कीन्हूं भाव मजै कोउ हमको, तिन तनपाप हरै री ।

जहां सेव्य ठाकुर का स्वरूप बाल कृष्ण का न होकर निरुंज विहारो का स्वरूप होता है वहां मंगला के समय खंडिता के पद गाय जाते हैं । खंडिता पद कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा से मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा तक नहीं गाय जाते । इसके अतिरिक्त उस ऋगृह के गौस्वामी कालकों के जन्मदिन पर तथा उत्तर्विंश पर ऐसे पद नहीं गाय जाते । खंडिता पद राधा स्वामिनी प्रभु के अन्य स्थान पर शयन करके एवं रति प्रेम में लिप्त रहने पर व्यंग्य करती है -

कहां जो बसै सारी रात नंद सुत ।
 चार पहर मोहै चार युग बीतै तुम जो आर परभात ।
 लटपटि पाग नींद भरी अँखियाँ काजर लाग्यो न्यारे गात ।

चौली के बंध तुफ़ी रहे तन में कसन भयो सब गात ।
 रही रही वृषाभान नंदिनी सुत यशोदा मात ।
 सूरदास प्रभु तिहार मिलन को रजनी कल्प समवसत ।

ऐसे ७० लंछिता पद निकुंज विहारी युगल स्वरूपों के सम्मुख गाय जाते हैं ।
 बाल स्वरूप के सम्मुख दही मथने के अथवा श्री राधा स्वर्णवर्षि स्वाभिनी के
 ठकुरजी के घर बाल क्रीड़ा होते आने के पद गाय जाते हैं -

आज भीरू राधिका यशुमति गृह आई ।
 महरि मुदित हंसि यो क्यो मथि भान दुहाई ।
 आयसु ते ठाढ़ी भई , करबखो नेति सुहाई ।
 रीती क्हाइ विलीवई, चित चित जहां कन्हवाई ।

दही मथने से संबंधित इन पदों का मंगला भोग लगाने के समय भी कीर्तनकार निज मंदिर से बाहर गायन करते हैं । मंगल-सम्मुख इन पदों में से एक पद गायन के अनन्तर प्रभु की मंगला गायन की आरती-उतारने के कुछ बाद दर्शन रुंद कर दिए जाते हैं । मंगला पश्चात् प्रभु का मंगला श्रृंगार ठबल उतारकर स्नानार्थ चौकी पर बिठाया जाता है। फिर अम्पंग कराया जाता है । कृतु के अनुसार उष्ण या शीतोष्ण जल से स्नान कराया जाता है । अम्पंग शौज नहीं कराया जाता पर जिस दिन भी कराया जाता है उस दिन श्याम स्वरूप की चौवा और गोट स्वरूप की कृतु में अनुकूल रहने वाला चंदन लगाया जाता है । अम्पंग और स्नान के समय कीर्तनकार उसी प्रकार का कीर्तन करते हैं। तत्पश्चात् उत्सवों के अनुसार प्रभु का पूर्ण श्रृंगार किया जाता है। स्नान के समय सूरका यह पद गाया जाता है -

मोहन जाउ तुम्हें अन्हवाऊँ ।
 जमुना ते जल भरि ते आऊँ ततिहर तुरत चढ़ाऊँ ।
 केसरि को उबटनी बनाऊँ, रचि रचि मेल कुड़ाऊँ ।
 सूरकहे कर नैकुं जसोदा, कैसे हुफ करिन पाऊँ ।

अष्टरूप के ही एक सितारे कीतस्वामी भी किसी से कम नहीं हैं। उनकी एक सुन्दर भाँकी देखिए -

मज्जन करत गौपाल चौकी पर ।
 अति ही सुगंध फुलैल उबटनी, विविध भाँति की सौज घर ।
 प्रथम न्हाय फिर कैसर चर्चित, सोभित आँ सुन्दर वर ।
 व्रज गौपी सब मिलि गववत हैं, आँहि उबट परसि कर ।
 एक जु आँ वस्त्र से आई, पोछत है मन अति भर ।
 फिर सिंगार करन को बैठे, चौकी आनि धरी तर ।
 विविध भाँति सिंगार करत है, आपुनि रुची सुधर वर ।
 ल दरपन श्री मुखहि दिखावत, निरखि निरखि हँस हर ।
 भाँति भाँति सामग्री करि करि, ले आई सब घर-घर ।
 कीत स्वामी गिरिघरन, अरोगत अति आनंद प्रफुल्लित सर ।

पुष्टिमार्ग में जिस क्रम से श्रृंगार कराया जाता है उसी क्रमनुसार सूर का पद देखिए -

सुन्दर स्याम कबिलौ रेबालो आबो श्रृंगार धराऊँ
 पगौँ पावडी ऊपर फाँफर माकड़ा कंदौरे लाऊँ
 जरो तास को वागी सिवाऊँ लटवटि पाग धराऊँ
 बैया बाजबंद पौची बीटी कानन कुराडल धराऊँ
 रतन जटिन को काँठली विराजे चौकी लाल जड़ाऊँ
 आँख्यो आजंजु अपने फामके मुख पान चववाऊँ
 दर्पन लैक वदन निहारुं कवि पर कलितहारी जाऊँ
 माखन मिश्री भीष धराऊँ मेवा गौद भराऊँ
 सूरस्याम प्रभु निशि वास चरणन तन मन प्राण लाऊँ॥

कीत स्वामी ने भी श्रृंगार का अमूर्तपूर्ण वर्णन किया है-

आज किशोर कुंवर कान्ह देखि री देखि आवत गावत ।
 भावत नैनन, चैन पावत सकल अंग अंग ।
 मुरली कुनित सुभग वदन, मोहन लील लोचन ।
 मधुप टोलन, मधुर बोलन गूँजत संग संग ।
 चरन नूपुर। भेलल कटि, रति-रस मी स्याम ।
 कनक कपिस अंबर करत भान भंग ।
 कीत स्वामी गिरिधरन हरत तन कैताप-संवाप ।
 विरह-वैदन, छवि सौ जीति अंग ।

वल्लभाचार्य ने मीर मुकुट एवं काकूनी के श्रृंगार करने का आदेश दिया था अतः उसी आदेश का पालन होता है। पुष्टिमागीय सेवा में श्रृंगार का अत्यधिक महत्व है। इतने कलात्मक तथा स्वाभाविक तथा सुन्दर श्रृंगार प्रभु की कराए जाते हैं जिससे दर्शक मन मोहित हो जाता है । श्रृंगार भी कृतु तथा उत्सवों के अनुसार होता है । देखिए सूर के पद में यशोदा माता क्रम से ही बेटे का श्रृंगारकर रहते हैं -

मीर मुकुट कटि काकूनी, जननी पहिरावे ॥
 स्यन्म अंग भूषण सजे, बिंदुका जु बनावे ।
 पग नूपुर कटिकिंकिनी, कर वैष्णु गहावे ।
 मुसकनि में मन हरि लियो सिसुताई जनावे ।
 ब्रज-बनिता आई तहां, दरपन हरसावे ।
 भोग अपि वीरा दिए सुगव सूर बढ़ावे ।

पुष्टि सम्प्रदाय में श्रृंगार का क्रम निम्न प्रकार से आचार्य ने बताया है, उसी के अनुसार आज कल सेव्य स्वरूपों की सेवा होती है ।

पहले धारन करवठो धारव कराते हैं, पाछे अलंकार धारण कराते हैं । पाछे अलंकार वैसे ही साज धारण कराते हैं । पीछे सेपाग बांधे, सब श्रृंगार पश्चात् पाग धारे यह प्राचीन रीति है । आभरण पहले पहिरावे सबसे पाछे

चन्द्रिका धारणकरते हैं । फूलमाला पहनाते हैं । पीछे बन्ध ओले श्रीदात्त विष्णु धराई, आरसी दिखानी चाहिए पाछे श्रृंगार करके चरणास्पर्श करे इस क्रम में एक पंक्ति है - इसी काल हीय तैसा साज धारण कराइये । इसका स्पष्टीकरण यह है नवरात्रि में वागा पहनाया जाता है उत्सवों पर भी वागों का श्रृंगार होता है । उत्सव के दूसरे दिन वागा धारण नहीं कराते । जन्मष्टमी राधाष्टमी, गोपीनाथ जी को उत्सव। दशहरा, पाटात्सव, शरद पूर्णिमा, रामनवमी, आचार्य जीका जन्मीत्सव एवं रथयात्रा आदि । इन कुछ उत्सवों में जरी का काम किया हुआ वागा धारण कराया जाता है परन्तु संध्या आरती उपरान्त वह वागा उतार उसीरंग के मलमल कोमल रंगीन तथा किनारीदार वागा पहनाया जाता है । नव रात्रोंमें शीत होय तो वागा धरावनी चाहिए शीत न होय तो केवल फंगला में ही वागा धारण कराया जाय । शीत में धारण कराया हुआ वागा शयन समय भीरह अन्यथा नहीं । यह क्रम धातीसन तक रहे । डोल पाछे रामनवमी के आले दिन तक शीतानुसार शयन मेंभी वगैर वागा रखनी चाहिए । इसी प्रकार प्रभु के शिरो वस्त्रों का भी क्रम है, जैसे जरी के चोरा, पाग, फँटा गौटीपग आदि शिरोवस्त्र ही अथवा जड़ाऊ पाग फँटा , दुमाला, छिपारा, गौपीपगा, मुकुट, कुलह आदि धारणकरार हो तो संध्या आरती पश्चात् उन्हें उतार कर हल्के वस्त्रों के पाग फँटा आदि धारण करायें जाते हैं । वन्नकुट एवं रथयात्रा से उत्सवों पर शयन में भी कुलह रखे जाते हैं । उस दिन कुलह पर कलंगी भी लगाई जाती है । पूर्ण श्रृंगार के बाद सांगणमांची पर प्रभु को स्थित करके दर्शन करायें जाते हैं । श्रृंगार के समय फकारी, बीड़ा , चौकड़ा आदि रखे जाते हैं । परन्तु दर्शन कराते समय ये सब हटा दिये जाते हैं । रामनवमी से घन तेरस तक श्रृंगार के दर्शन होते हैं परन्तु रूप चतुर्दशीसे रामनवमी तक श्रृंगार दर्शन बंद रहते हैं । जिस दिन प्रभु को पाल्ताभुला कर दर्शन कराते हैं, उस दिन श्रृंगार दर्शन नहीं होता । श्रृंगार दर्शन

१- लींग इलायची, सुपारी, दलखाना, दालचीनी, जायफल आदि का

बर्तन ।

पर सूरदासके तथा अन्य कृष्णभक्त कवियों के पद मिलते हैं। सूरका एक पद देखिए -

देखी री माई सुन्दरता की लख सागर ।
बुधि विवेक बल पार न आवत, मगन होत मन-नागर ।
तनु अति श्याम आगध अम्बु निधि, करि पट पीत तरंग ।
चितवन चलत अधिक रुति उपजत, मंवर परति सब अंग ।
नैन मीन मकराकृति कुन्दल, भुज सरि सुभा भुवंग ।

अष्टहापी गोविन्द स्वामी को देखिए -

कहा कहूँ मोहन मुख देखो सोभा ।
बदन इन्दु, लोचन चको भरे, पिवत किरन रूप रसलोभा ।
अंग अंग उच्छ्लिखित रूप कटा, कोटि मदन उपजत तन गोभा ।
गोविन्द प्रभु देखे विवस भई प्यारी, चपल कटाक्षा लग्यो
हृदय चोभा ।

इस प्रकार अनेकों पद हम प्रत्येक कविके काव्य में दृष्टिगत होंगे। कुछ उदाहरण और देखिए-- देखेंगे। मुस्लिम कवि रसखान की देखिए जिनके पद अत्यन्त लोक प्रियता का स्थान प्राप्त कर चुके हैं। यद्यपि बाल वर्णन है पर उसमें वर्णन श्रृंगार-र की कटाक्ष भी दर्शन हो रहे हैं -

मूर भरे अति सौमित्र स्याम जु ऐसी बनो सिर सुन्दर चोटी ।
खेलत खात फिर आना पग पैजनी बाजति पीर कछोटी ।
वा टवि को रसखान विलोकत वारत कामकला निज कोटी ।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ से ले गयो माखन रोटी ।

इसमें कवि ने कितने सुन्दर भाव को दर्शाया है कि पढ़ते - पढ़ते ही पाठक अचानक अपने बचपन का स्मरण हो आता है यज्ञ अपने छोटे माई बहन के बचपन की स्मृति तीव्र हो जाती है। साधारणबच्चों की भांति श्री कृष्ण हाथ में मक्खन लिए इधर उधर किलकिलते फिरते हैं। चलते समय उनके पैरों की पायल बजती है। कोआ जो बहुत चालाक पक्षियों में गिना जाता

है । माखन रौंटी छीन कर ले जातह है । उस ईश्वर के हाथ से जिनके दर्शन कितने तप करने पर भी दुर्लभ होते हैं । ऐसा ही उदाहरण श्रीकृष्णदास के पद संग्रह में से एक है । श्रीकृष्ण के देखते ही गीयियाँ अपनी सुघ बुध भूल जाती हैं और श्रीकृष्ण से मिलने की उमंग उनकी कुल मयादा का उत्लघन कर देती है-

पिय की मुख देख्यो री नैननि लागी चटपटी ।

भूत्यो है खंडिता भाव, तन कौटि गनी चाव उमंगि

परी मिलन सटपटी ।

कृष्णदास प्रभु गिरिधर प्यारी, तासो मिले करत सटपटी ।

वारी तन मन धान जोवन धन, देखत पाग लटवटी ।

अष्टछापी चतुर्भुजदासके वर्णन उपरोक्त वर्णनों से भी आकर्षक है । इससे पूर्ण श्रृंगार का वर्णन है, देखिए -

आजु को सिंगारु सभा, साँवरे गोपाल की,

कछति न आवै, देखे ही बनि आवै ।

भूषान-वसन भाँति भाँति, अंग अंग अद्भुत छवि,

लटपटी सुदेस चाल, चित्त को चुरावै ।

मकर कुंडल तिलक भाल, कस्तूरी अतिरसाल,

चिवनि लीचन विसाल, कल काम को लजावै ।

कंठ श्री बनमाल, फाँटाकटि अति उताल,

छवि निरखत त्रिभस्वन तिय, धीरज मन न लावै ।

भरी ही संग निहारि, ठाड हरि कुंज द्वार,

हित-चित की बात कहूँ, जो तेरे बिय भावै ।

चतुर्भुज, प्रभु गिरिवर-घर नख-शिख सुन्दर सुघर,

हसाकी बडभागीन , जो जात ही लपटावै ।

निम्नलिखित वर्णन में कविवर नन्ददास ने सुन्दर छवि का वर्णन किया है। साथ उस काल की टीका का (डिठोना) वर्णन है जो आजकल भी मां बच्चों के नजर न लग जाय इस कारण ला देती है। उस डिठोना से कृष्ण की भौली छवि और भी खिल उठी है -

मुख पर वारी सुन्दर टोना ।
 बैनी बारन की मूखु बैना, मृगमद भाल डिठोना ।
 खंजन नैननि अंजन दिये, मोहन लोचन लौना ।
 तिरछी चित्तवनि यों छवि लागे, कंज-दलन बलि होना ।
 जो छवि है-वृषाभान-सुतामें, सों छवि नांहिन सौना ।
 नन्ददास अविभल ये जोरी, राधा-स्याम सलीना ।

इसी प्रकार के अनेकी वर्णन भी पड़े हैं जिनका वर्णन करना भी कठिन है।

इस प्रकार श्रृंगारों का सूक्ष्म चित्रण भी मिलता है। इन समस्त श्रृंगारों का विस्तार गोस्वामी विट्ठलदास जी द्वारा हुआ था तभी सूर के पदों में श्रृंगार सूक्ष्म विवरण भी मिलता है। प्रारंभिक श्रृंगारों के साथ प्रभु के निकुंज द्वार पर खड़े होने का भी उल्लेख इन पदों में मिलता है जो इस मत की पुष्टि करते हैं कि प्रेम भाव से प्रभु की सेवा करने का प्रकार पुष्टि मार्ग को अपनी विशेषता है कि अन्य सम्प्रदायों के प्रभाव से पुष्टि मार्ग में इस भाव का समावेश हुआ है। इस मत को पुष्टि महाकवि के उन पदों से होती है जिनमें श्री स्वामिनी को क नख-शिख का वर्णन मिलता है। पुष्टिमार्गीय सेवा का मूलोपाय अपने स्वामी को सुख प्रदान करना ही है। इसी भाव को ध्यान में रखकर शीतकाल में सौव्य स्वरूप को फल्लु ओढ़ाया जाता है। अधिक सदाँ भी गदर भी ओढ़ाई जाती है। श्रृंगार के बाद दर्शन खुलने पर प्रभु के सम्मुख श्रृंगार के पद गाय जाते हैं।

श्रृंगार के उपरान्त गोप्त्री वल्लभ भोग के समय का क्रम है। जिस

ग्वाल दर्शन कहत है । इस समयके दर्शन से भक्तों के पृथक् पृथक् प्रकार के दर्शनों का सुख मिलता है । उस समय की अनुभूति का साक्षात् चित्रण सूर ने अपने पदों में किया है। शृंगारोपरान्त उनके सखा ग्वाल बाल क्रीड़ाएँ आ पहुँचते हैं । इस समय दर्शन बन्द हो जाते हैं और प्रभु क्रीड़ाएँ चले जाते हैं । इस समय ग्वाल दर्शन कराये जाते हैं । जिसमें समस्त क्रीड़ा सामग्री प्रभु के सम्मुख रख दी जाती है । हाथ में छड़ी रख देते हैं, तब वे माँ से कहते हैं -
पूछते हैं -

खेलन जाहु ग्वाल सब ढेरत ।

यह सुनि का न्ह भये अति आतुर, द्वारे ते फिरि देखो होत
बार बार मातुहि ब्रूफत, कहि चौगान कहाँ है
दधि मथनी के पोछे देखो, ते में धरयो तहाँ है -----

कितना स्वाभाविक वक्तविलाप है वे माँ से गँद और गँद खेलने की लम्ड़ी के बारे में पूछते हैं माँ उत्तर देती दधि मथनी के पोछे रखी है उसे लेकर वे यमुना तट पर क्रीड़ा हेतु भाग जाते हैं । खेल में प्रभु हार जाते हैं और खिसिया कर जाते हैं और क्रोधित हो जाते हैं तब कहते हैं -

खेलत में काको गुसैयां ।

हरि हारे जीते श्रीदाया, वरवस ही कत करत रिसैयां
जात पात हमरे बड़ नाहाँ, ना हम वसत तुम्हारी कैयां
अति अधिकार जनावत यातें जो है अधिक तुम्हारे गैयां -----

प्रभु सबसे छोटे हैं अतः उन्हें क्रोधित देखकर बलदेव आनंदित होते हैं और सबके साथ और अधिक चिढ़ाते हैं जब तब प्रभु माँ से आकर शिकायत करते हैं -

मेया मोहि दाऊ बहुत सिजायाँ ।

मो सों कहत मील को लीन्झीं तू जसमति क्व जायो ।

कहा कहां इहि रिसि के माई खेलन को नहीं जात ।
 पुनि पुनि कहत कीन है माता को है तुम्हरी तात ।
 गौरनन्द यशोदा गौरी तू कत स्यामल गात ।
 चुटकी दे दे हँसै ग्वाल सब सिखै देत बल्कीर ।-----

पुष्टिमागीय वैष्णव अपने सेव्य स्वरूप को साक्षात् श्रीकृष्ण ही समझता है एवं विभिन्न समर्थों में सेवा के विभिन्न उपादानों के माध्यम से वह वैसी ही कल्पना करता है जैसे यदि ग्वाल दर्शन हा रहे हों तो भक्त के मनमें यमुना तट पर कभीखेलते हुए कभी गुस्से भरे तो कभी माता से शिकायत करते हुए श्रीकृष्ण का भावनात्मक चित्र बना रहेगा । मानसी सेवा सिद्ध होने पर तो भक्त प्रभु का अभिन्न अंग बनकर उनका आनंद प्राप्त करता है । अष्टछापों कवियों ने सम्प्रदाय की दृष्टि से प्रभु के अष्टसखाओं की कल्पना की जाती है । साम्प्रदायिक वातां साहित्य में प्रभु का इन सखाओं के साथ क्रीड़ा करने का उल्लेख मिलता है । इसमें अतिशयोक्ति हो सकती है परन्तु बाध्यात्मिक दृष्टि से संगीत लगाने पर लगता है कि कीर्तन-कार्य , कीर्तन सेवा, मानसी सेवा में प्रभु का भावनात्मक सानिध्य एवं इन समस्त लीलाओं की अनुभूति अवश्य होगी । यही कारण है कि जितना स्वाभाविक सूक्ष्म भाव पूर्ण एवं सांगोपांग चित्रण अष्टछाप के कवियों में विशेषकर सूरदास के साहित्यमें उपलब्ध होता है उतना भारत के किसी भी भाषा साहित्य में नहीं है ।

सैत हीसैल भैरव प्रभु अपने साथियों के साथ बहुत दूर नि-कल जाते हैं मां चिन्तित हो जाती है तभी वे भाई के साथ खेलते कूदते आ जलते हैं बाँर शीघ्र तैयार किया हुआ धिया मांगते हैं । धिया शीघ्र दुह दूध को मथकर उतारा गया मक्खन) ।

देरी भियादोहनी, दहिहो में गया ।
 माखन सार बल मया, करी नन्द दहिया ।

कजरी, घौरी, सुन्दरी, घूमरी मेरी गैयां ।

दुहि त्याऊं में तुरत ही, तू करि दे धिया । -----

अर्थात् हे माता मुझे दूध दुहने का वर्तन दे दो, कैंकरा में काली, सफेद, सुन्दरी आदि गायों का दूध दुहकर लाऊंगा । और तू शीघ्र धिया तैयार कर दे ।

कभी कभी कृष्ण मक्खन तथा दूध न पीने का बहाना बनाते हैं तब मां उन्हें तरह तरह के प्रलोभन देती है -

कजरी को पय पिपहु लला तरी चोटी बढ़े ।

कभीकृष्ण पूछते हैं -

धिया कबहि बढ़ेगी चोटी ।

कित्ति बार मोशि दूध पिवत भई यह आजहूं है छोटी ।

तू जो कहत बल को बैनी ज्यों है लांबी मोटी ।

काढ़त गुहत नहावत आहत नागिन सी वह भई लौटी ।

कांचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रौटी ।

सूरदास चिर जीवो दोउ धिया, हरि हलधर की जोटी ।

इसी प्रकार के हमें अनेकों पद मिलते हैं ।

न

ग्वाल के दर्शन एवं ग्वाल भोग में मक्खन मिश्री आदि की कटोरियां प्रभुस सम्मुख रखी जाती हैं । कार्तिक शुक्ला १३ से मार्गशीर्ष कृष्ण ८ तक धिया के पद राग सौहनी, परत्र एवंकालिंगरा में गाये जाते हैं । ग्वाल के बाद शीघ्र ही राजभोग के दर्शन का समय होता है । राजभोग में विभिन्न प्रकार की सामग्री बनाकर प्रभु के सामने रखी जाती है । उत्सवानुसार भी राजभोग में सामग्री रखी जाती है जैसे चैत्र प्रतिपदा से अक्षय तृतीया तक राजभोग में रविवार के दिन खांडकैरीभोग में रखी जाती है । अक्षय तृतीया से रथयात्रा तक चार

रविवार को सिखरन एवं सतुआ भाग में रखे जाते हैं। चार बुधवार को दही भात एवं सतुआ। शनिवारको सतुआ। पुनः चार रविवारआने पर रसरट्टी एवं सतुआ, दो रविवार को अपरस भात आदि। शीतकर्म राजभोग भोजन का होता है और उष्णकाल में ह्वाक का। राज भोग में तुलसी शंखोदक अवश्य रखा जाता है। सुवास हेतु छ भूप दीप बादिभी रखे जाते हैं। राजभोग के समय कीर्तन कार भोजन के पद गाते हैं। जन्म दिवस पर बघाई के पद गाय जाते हैं। भोजन के समय लामा सभी ऋषीमुनियों के ही पद गाय जाते हैं।

जगत नंद कान्हू बूढ़े० इकठोर ।

कछु खात कछु धरनि गिरावत दुह करवाल के-लि रस मोरे ।

बूरा बदन मेचीलिया जब ही भिच दशुन टुक तोरे ।

ती दाणालागे नैन भरि आयै खोजत बाहर दोरे ।

फूक कपोलन दैत रोहिणी, स्थि लाय फकीरे ।

सूर श्याम मो मुखर कीरे दे कीने तात निहोरे ।

पुष्टिमगीष्ट कीर्तन प्रणाली के अनुसार राजभोग दशिन अ खुल्लपर कीर्तनकार पांच पद गाते हैं। उष्ण काल में प्रभु ग्वाल बरों के साथ जल्दी ही जन में धनु चराने हेतु प्रस्थान कर देते हैं। दोपहर में जब उन्हें भूख लगती है तो दोपहर में भोजन हेतु घर भेज देते हैं और अपना भोजन बना लेते हैं। सब एकत्र होकर जन में भोजन करते हैं।

मिलि बैठसंग जैन लागे, बहुत बने कहि पाक ।

अपनी पत्रावली सब देखत, जहं तहं फील मिराक ।

सूरदास प्रभु खात ग्वाल संग, ब्रह्म लोक यह धाक ।

भगवान उन ब्रज भक्तों को अलीविक आनंद प्रदान करते हैं। समस्त सृष्टि को भोजन करानेवाले ग्वाल बालों के हाथ से छीनकर उनकी झूठन सा रहे हैं।

जब गोपियां पनघट परजल भरने जाती हैं तब कृष्ण कभी उनका मार्ग रोक लेते हैं कभी गगरी फौड़ देते हैं और कभी घूंघट उतार कर तरह तरह से चिढ़ाते हैं प्रकार भांति भांति से परेशान करते हैं -

पनघट रोके रहत कन्हारै ।

जमुना जल काउ भरन न पावै देखत ही फिर जाई ।

जब किसी गोपी को अक्सर मिल जाता है तब वह भी खूब परेशान कर देती है । एक गोपी ने कृष्ण की लुकटिया खीन ली । मांगने पर उत्तर देखिए-

घट भरि देहु लुकट तब देही ।

हाँ हूँ बड़े महर की बेटी, तुमसो नहीं डरेही ।

संध्या भोग के पद :

अधिकांश ग्रहीमें उत्थापन भोग एवं संध्याभोग साथ साथ करा दिये जाते हैं । उत्थापन पश्चात् संध्या आरती के दर्शन कराये जाते हैं फिर प्रभु सम्मुख शयन भोग रखकर शयन करा दिया जाता है -

माखन - रौटी ताती - ताती लेहु कन्हैया वारै ।

मन में रुचि उपजावे भावै, त्रिभुवन के उजियारै ।

और लेहु पक्वानन मिठई, बहु - विधि व्यंजन सारै ।

बीटयो दूध , सद्य दधि घृत मधुरुचि साखाहू भरे प्यारै ।

भोजन करते समय ही क्रीड़ा एवं गीउच्चारण में धके प्रभु सनड़ा ग्रस्त हो रहे हैं किन्तु सोने से पूर्व माता उन दोनोंको उष्ण दूध का पान कराती है ।

कीजे पान लता यह दूध ले आई यशोदा मैया ।

कनक कटोरीभरि लीजे, यह पय पीजे अचि सुखद कन्हैया ।

कीर्तन पुष्टिमाग का अभिन्न एवं आवश्यक अंग है । अष्टक्याप की स्थापना आवश्यक करके

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने इसी कीर्तन सेवा को ~~इस~~ सुव्यवस्थित एवं विस्तृत बनाया था। ~~ऐसे~~ श्रीनाथ जी की स्वरूपसेवा के ~~अब~~ प्रारंभिक साथ-साथ कीर्तन सेवा ~~अब~~ आचार्य जी कर चुके थे। सूरदास के पद मंगला से शयन तक के मिलते हैं। इन्होंने ही सबसे अधिक समय तक प्रभु की सेवा में अपना समय व्यतीत किया -

प्रथम करी माखन हरि चोरी ।

ग्वालिनी मन इच्छा करि पुरन, आयु भजे ब्रज खोरी ॥

मन मैं यहै विचार करत हरि, ब्रज घर घर सब जाऊँ ।

गोकुल जन्म लियो जेहि कारन, सबके माखन खाऊँ । ----

इसीप्रकार बच्चे के बढ़ने के साथ सभीप्रकार के पदों का सूरने निमाणि किया है। ~~ऐसे~~ ^{फिर} छुट्टनों चलना, ~~बिना~~ माँ का बेटे को पैदल चलना सिखाना, बच्चा मिट्टी खाने लाता है, उसे हर तरह से रोकना, मिट्टी खाने पर हाथ पर बांध कर डराना आदि ।

इस प्रकार नित्य सेवा प्रणाली में विविध प्रकार के भावों का तथा लीलाओं संबंधित पदों का गान किया जाता है। ऐसे पद अष्टहापी कवियों के काव्य संग्रह में तो मिलते हैं अन्य कृष्ण भक्त कवियों ने भी लिखे हैं परन्तु सूर दास कैसा सागर किसी ने नहीं मरा है। जिन लीलाओं के पद पुष्टिमागीय कीर्तनों में गाय जाते हैं उन्हीं लीलाओं तथा भावनाओं से संबंधित पदों का मूल स्रोत पुष्टिमागीय सिद्धान्त, सेवा भावना एवं सेवा प्रणाली काही मानना होना चाहिए। पीछे बताया जा चुका है कि प्रणाली दो प्रकार की (१) नित्य सेवा (२) वषात्सव सेवा। अब आगे थोड़ा वषात्सव सेवा पर भी प्रकाश डालेंगे।

पुष्टिमागीय उत्सवों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव को दिया जाता है। युग युग में जब भी धर्म सांकेतिक होता है, तब तब धर्म

संस्थापन, दुष्कृत, विनाश एवं साधुओं के रक्षार्थ भगवान् अवतार लिया करते हैं। भूतल पर आचार्यों के 7 प्राकट्य धर्म संस्थापनार्थ होता है। केवल सारस्वत कल्प में भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार पूर्ण विस्तार माना जाता है। इस पुष्टिमागीय सेवा में यह जन्मीत्सव जितनी धूम मन्मथ-जन्म-है धाम से मनाया जाता है और कहीं नहीं मनाया जाता। इसी कारण अष्टछाप के कवियों ने इनके जन्म का वर्णन अधिकाधिक पदों में किया है। श्रृंगार भी उत्कृष्ट कोटि का होता है तथा बाहरी सजावट और मोग्य सामग्री भी अधिक मात्रा में रखी जाती है। नन्दबाबा के घर पुत्र उत्पन्न हुआ है, सारे वृजम प्रसन्नता की लहर दौड़ गई है। सभी अपने काज छोड़ कर नवजात शिशु का मुख कपोल देखने को चल पड़े हैं। देखिए पद में कैसा सादासात चित्रण है -

आजु बन कोऊ बै जनि जाई।
 सब गाइन बहरनि समेत ले आनहु चित्र बनाई।
 ढोटा है रे भयो महर के कहत सुनाई आयी।
 सबहि घौषा में भयो कुलाहल, आनंद उर न समाई।
 कत हो वाहर बिन काज, वैगि चली उठि घाई।
 अनि अपने मन को चीत्यो नैन देख्यो आई।
 एक फिरत दधि डब धरत सिर, एक रहत गाई पाई।
 एक परस्पर दैत बधाई, एक उठत हंसि गाई। -----

इस प्रकार घर जाकर बच्चे देखकर सब ग्वाल बाल तथा गोपियां प्रसन्न होकर बच्चे को आशीर्वाद देती हैं -

रानी तेरो चिर भिज्यो गोपाल।
 वैगि बड़ो बड़ि होय विरघ लट महरि मनीहर बाल।
 उपजि परयो यह कूरिव माग्य बल समुद्र सीपझै लाल।
 सब गोकुल के प्रान जीवन धन वैरिन के उर साल।

फिर बच्चे को पालनाभूलाया जाता है, इसके पद विभिन्न कवियों में मिलते हैं । कुछ उदाहरण देखिए -

गोस्वामी जी का एक पद -

झूलन आई ब्रज नारि, गिरधरन लाल जु के सुरंग छिड़ोरना ।
सुभा कवन तन, पहरे कंसुपि सारी, गावत परस्पर हंसि मृदु बीलना ।
इत नंदलाल रसिक्कर सुन्दर, उत वृषभानु सुता क्वि सोहना ।
रपंग तरंग गह्यो पिय प्यारी, गोविन्द बलि बलि रति पति गोहना ।

चतुर्भुज दास के पदों में से एक उदाहरण -

छिड़ोरना माई झूलन की दिन आर ।
गरज गरज, गान दामिनी दमकत राग मल्हार जखन जमार ।
कवन खंब सुढार बनार, बिच बिच हीरा लार ।
डांडी चारि सुदेस सुहाई, चौकिन हैम जरार ।
रमकनीय कपकिनी पियारी, किंकिनि सबुद सुहार ।
चतुर्भुज प्रभु गिरिधरन लाल संग, बखि यामिनी मंगल गार ।

सूरदास का पद देखिए -

गोपाल माई पालने फलावे ।
मुनि मुनि देव कोटि तैतीसी कोतिक अम्बर छाया ।
जगको अन्त न पावे शिव सनकादि न पायो ।
जो सुत देखो नंद यज्ञादा गौद में घालि खिलायो ।
नाचत हंसत करत किलकारी मन अभिलाषा बढ़ायो ।
सूर स्याम भक्तन हित कारन नाना भेल बनायो ।

वर्षातिथियों पर कीर्तनों में गाए जाने वाले पद बघाई के अथवा उत्सव विज्ञेय के भाव को प्रकट करने वाले ही होते हैं । सभी उत्सवों पर पलना, जखन बघाई

पद ही गाये जाते हैं। पुष्टिमागीय सेवा के क्रमानुसार श्रीकृष्ण जन्मोत्सव के दिन प्रमुख कीर्तनकार ढाढ़ी और ढढ़िन की वेषभूषा पहन कर ढाढ़ी के पदों का गान करते हैं। कीर्तन गान पश्चात् कीर्तनकारों के नवीन वस्त्र तथा द्रव्यादि प्रदान किए जाते हैं। अष्टम ग्रह की कीर्तन प्रणाली के अनुसार महा-कवि के पद की जन्मोत्सव के दिन राजभोग दर्शन के समय गाया जाता है।

पुष्टिमागीय पदों में लोक जीवन के रीति-रिवाजों को भी ग्रहण किया गया है। किसी के घर में शिशु जन्म के समय जिन-जिन आचारों को देखा जाता है, इन सभी की भल्क इस सम्प्रदाय की क्रियात्मक सेवा में मिलती है। नाल छेदन, छूटी, का उत्सव १०-११ दिन का डस्टीन आदि के पद गाये जाते हैं -

जसोदा नाल न छेदन देखो ।

मनिमय जटित हार ग्रीवा को आज ही लैहा ।

नवजात उत्सव :

यह उत्सव विजय दशमी तक चलता है। प्रतिपदा से प्रारंभ होता है। इस उत्सव पर ६ विलासके पद प्रतिपदा से नवमी तक गाइ जाते हैं, ये पद श्री हरिराय जी कृत हैं। श्रृंगार में प्रतिपदा की लाल वसमा के कूल्हे श्रृंगार किया जाता है। पांच चंद्रिकाएं लाई जाती हैं। आमरण हीरों के, गोदी का श्रृंगार पंचरंगी। राजभोग आरती मोतियों के साथ उतारी जाती है। प्रतिपदा की मंगला से शयन तक छत्र मुरली के पद गाय जाते हैं -

मुरली हम सों बैर बढ़ाया ।

चली निपट इतराय नेक ही हरि अघरन परसायो ।

फूलो पिरत श्याम कर बैठी या हि गव बढायी ।

ज्या निरधन धन पाय अचानक नयन अकाश चढाया ।

हुं सूर स्याम देखत सिहात है तनी जाप रिझायो ।

त्रिभुवन पति श्री पति जे कहावत तिन मुरली वस पाए ।

कृष्णादास का मुरली के ऊपर एक पद देखिए जिसमें गोपियों की कृष्ण के प्रति आसक्ति का भी आभास मिलता है -

निकुंज में बैतु मधुर कल गावै ।

सप्त सुरन के रसिकराय पिय रसिकनि तीय बुलावै ।

सरद चंद रजनी दुम रंजित , मन्मथ मोह बढ़ावै ।

आधर तान, मान संपूरन, संगीत सुर उपजावै ।

वृन्दा विपिनविविध कुसुमावलि मधुप कमल मुरझावै ।

कोकिल मोर चक्री, सौर, सुक मंगल सब्द सुनावै ।

सुन्दर सुभा, सुखक जमुना तट, वरसिकनि को जिय भावै ।

कृष्णादास गिरिधर सुख सागर भाग बड़े सोई पावै ।

आचार्य वल्लभ के अनुसार तात्पर्यानुसार परमानंद ने भी मुरली में वही अर्धधैविकत्व आरोप किया है । मुरली रव की उसी समाधि दात्री भी उन्होंने चर्चा की है जो अन्य सूर तथा अष्टछापी कवियों में मिलती है । मुरली नाद पर गोपियां कुरंगिनी की भांति मुग्ध हैं । जिस मृगी पाणीन्द्रिय अन्तःकरण आदिको विस्मृत कर नाद लुब्धा हो जाती है , उसी प्रकार परमानंद जीकी गोपिकाएं भी नटवर कृष्ण के मुरली नाद पर आत्म विस्मृत हैं -

आवत मदन गोपाल त्रिभंगी ।

० ० ० ० ०

वचन रसाल सूरति सबु भूली सुनि वन मुरली नाद करंगी ।

मुरली के ऊपर गोपियों की खोज भी है क्योंकि वह उनकी दिनचर्या में बड़ा अन्तराम पहुंचाती है -

जकि रही सुनि मुरली को टेर ।

इतनेहुं किसी पानी बरि मिस तबाई मई गायन की बेर ।

मोर चन्द्रिका घरे स्यामघन चमन नयन की हेर ।

रास लीला का इस सम्प्रदायमें अत्यधिक महत्त्व है। श्रुति रूपा और अग्नि रूपा कुमारिका काइसी रात्रि को प्रभु ने अधरामृत का पान कराया था। जिसका पान कर लेना पुष्टिमार्ग का सर्वोच्च फल है। कृष्ण द्वितीया से अष्टमी तक सभी समर्थानमें एक पद सरस लीला का गान होता है। इन समस्त कीर्तन प्रणालियों में सरस लीला से संबंधित पदोंमें सूर रचित पद ही प्राप्त होते हैं। अष्टम ग्रह की कीर्तन प्रणाली में ही लीला संबंधित सूर के ७० पद संग्रहीत हैं जो वहां के कीर्तनों में गाए जाते हैं। इस सरस लीला में गोवर्धन लीला के पद भी गाए जाते हैं -

गोस्वामी जी जो अष्टकाप कवि में से ही एक सितारे हैं, उन्होंने गोवर्धन लीला पर कुछ पद व पद लिखे हैं। एक पद जो नीचे उदाहरणार्थ दिया जा रहा है, इसमें बताया गया है कि समस्त व्रजवासी इन्द्र की पूजा की तैयारी करते पर कृष्ण उन्हें ऐसा करने से रोकते हैं और विष्णु पूजा अर्थात् अपनी पूजा पर बल देते हैं। काफी समझाने और व्रजवासी सोचते हैं जब इसने इतने राक्षस मारे हैं इतना हमारा भला कि या है अतः वे इन्हें की पूजा की तैयारी करते हैं। अब गोवर्धन पूजा हो रही है, देखिए-

प्रथमहि क्षीर नखाई, न हरि गंगा जल से ढरकायो ।
दीपक भांति कान्ति कवन, गिर लागत पर सुहायो ।
जब परवत पर प्रगट भये हरि, अद्भुत रूप रसाला ।
मौर मुकुट मंजुल, मुरली मुख, पीत वसन उर माला ।
तन अति श्याम काम कौटिक छवि, चंचल नैन विसाला ।
निखत व्रज जन नर नारी सब, भोग करत गोपाला ।
श्री वृष्णभानु वादि व्रजवासी, महा मनोरथ पायो ।
गोपी जन सप्रेम मगन गोविन्द जन मंगल गायो ।

सूरदास का पद देखिए-

सुरपाहीं पूजा जान कन्हाई बार बार ब्रूकत नन्दराई ।
कौन देवी करत पुजाई, सो मोसा तुम कही समुझाई ।

महर कह्यो तब कान्ह बुलाई, सुपति सब देवन के राई ।

तुम्हरे हित में करत बुलाई, भीर बहुत घर जाउ सिसाई

इसके पश्चात् गिरिराज पूजा , इन्द्र कोप, एवं गोवधन धारण लीला, इन्द्र मान दमन आदि संबंधित विपुल पर गोवधन पूजा तक गाए जाते हैं ।

दीपोत्सव :

इस दिन प्रभु की श्वेत जरी का वागा एवं सिर पर कुल्हे का श्रंगार कराटा जाता है। स्वामिनी जी की श्वेत जरी की सफ़ेदी साड़ी एवं अन्य लाल वस्त्र धारण कराये जाते हैं । रात्रि समय मंदिर में समस्त स्थानों पर दीप मालिका सजाई जाती है । प्रभु के सम्मुख चौपड़ आदि क्रीड़ा सामग्री भी रखी जाती है । भोग भी विशेष रूप से तैयार किया जाता है।

आज दिपत दिव्य दीपमालिका ।

मानो कोटि रवि चन्द्रवि विमल भई निशि कालिका ।

गज मोतिन को चक्क पुरायो, विच विच ब्रज प्रवालिका ।

गोकुल सकल चित्रमणि मंडित शोभित फाल फमालिका ।

पहर सिंगार बनी राधाजु संग लिए ब्रज बालिका ।

फलक दीप समीप सौंज कर लिए कंचन थालिका ।

अन्नकुटोत्सव :

दीवाली के दूसरे दिन यह उत्सव सम्पन्न किया जाता है । यह उत्सव श्रीकृष्ण की अवतार लीला से संबंधित है । सारस्वत कल्प में श्रीकृष्ण ने इन्द्र के स्थान पर गोवधन की पूजा प्रवर्तित करवाई थी । इन्द्र गर्व दमनीपरान्त श्रीकृष्ण ने ही गिरिराज की कंदरा में प्रगट होकर स्वर भोग्य सामग्री को साया था । श्रीनयथ जी द्वारा ये दिन मोठे चावलों का ढेर बनाया जाता है जिस ग्वालों के भाव से सारी वृजवासी उसे लूटते हैं और प्रभु प्रसाद रूप में

गृहण करते हैं। भोग में सेव के लहडू ^{रखे} ~~अपने~~ जाते हैं। श्रृंगारसमय कमल पत्र बनाए जाते हैं। इस दिन हर घर में गोबर के गोवधन बनाए जाते हैं और पास ही प्रभु हेतु सिंहासन रखा जाता है। एवं पूजा हेतु समस्त सामग्री एकत्र करके वहाँ रखी जाती है। सायंकाल उत्थापन दर्शनीपरान्त अन्नकुट के दर्शन होते जाते हैं। सायंकाल अन्नकुट भोग के अवधि समय सूर के निम्न पद गाय जाते हैं। बालकृष्ण के भाव का इस समय का एक पद देखिए -

देखे रीं हरि भोजन सात ।
सहस्र भुजा घर उतर जैत है इत गोवन सों करत है बात ।
ललिता कहत देख हो राधा जो तेरे मन बाल समाप्त ।
धन्य सबै गोकुल के वासी संग रहत गोकुल के तात ।
जैमत देख नन्द सुख बीनो अति आनन्द गोकुल नरनारी ।
सूरदास स्वामी सुख सागर गुण आगर नागर दे तारी ।

गोपाष्टमी का उत्सव :

यह पुष्टिमास का विशिष्ट उत्सव है - श्रीकृष्णाने अवतरित होकर गोपूजाका प्रचलन किया था। इसी से प्रभु को गोपाल के नाम से पुकारा जाता है। इस दिन प्रभु की जरी की काकनी एवं चन्द्र मुकुट धारण कराया जाता है। गो चरणा लीला के पद गाय जाते हैं :-

आज मैं गाय चरावन जैसा ।
वृन्दावन के भांति भांति फल अपने घर में लैही ।
इसी अवधि कहो जिनि बार देखो अपनी भांति ।
तनक तनक पग चलिही कैसे आवत है राति ।

वसन्तोत्सव के पद :

वसंत ऋतु का आगमन है चारों ओर हरियाली दिखाई दे रही है ।

चारों ओर रंग पुष्पों की सुगंधी फैल रही है और तथा रंग बिरंगी तितलियाँ प्रमत्ता कर रही हैं ।

आई हम नन्द के द्वारे ।
 खेलत फाग बसंत पंचमी सुख समाज विचारे ।
 कौउ लै आर कुमकुमा के सर काहू के मुख पर डारे ।
 कौउ, अबीर गुलाल उम्ठावे आनंद तन संभारे ।
 मोहन की निरखे गोपो जन नीके बदन निहारे ।
 चितवन में सबहि वश कीने नागर नन्द दुलारे ।
 बाबत लाल मृदंग मुरज उफा फाँफ नीके फनकारे ।
 सूरदास, प्रभु देखि छिछोख विवश भये गोपवधू तन वारे ।

चतुर्भुज दास - के भाव देखिए कितने सुन्दर हैं कैसा रूपक बाँधा है -
 नव वसंत आगम नव नागरि, नव नागर गिरधर संग खेलत ।
 चौबा, चंदन आर, कुमकुमा ताकि ताकि पिय सनमुख खेलत ।
 पुहु पाँजलि जल भरत मनोहर, वदन ढापि अँवल पट पेलत ।
 चतुर्भुज प्रभु रस-रासि की रीकि रीकै सुख सागर झेलत ।

इसी प्रकार आगे भी कवियों ने इसका विस्तृत वर्णन किया है । परन्तु हमारा उद्देश्य इतने अधिक विस्तार में जानें का नहीं है । एक डौलीत्सव भी ब्रज में प्रचलित है इसमें प्रभु के छिडीले में लिटाकर झुलाया जाता है । यह उत्सव भी बसंत ऋतु का है ।

भूलत जुग कमनीय किशोर सखी चहुँ और झुलावति डोल ।
 ऊँची धुनि सुनि होत चकित मन सब निशिल वत राग छिडील ।

रामनवमी उत्सव :
 चैत्र शुक्ल नवमी की यह उत्सव भगवान राम के उत्सव के रूप में मनाया जाता है । इस दिन प्रभु को कसरिया पाग और कसरिया ही

वागा धारणाकरायो कराया जाता है। हल्दी का अष्टदल चीक बनाया जाता है और वहां स्नानार्थ चीको रखी जाती है। श्रृंगार के समस्त आभूषणों हीरों के धारण कराये जाते हैं, इसका कारण सेवा प्रणाली में लिखा है, 'रामचन्द्र जी हास्य की स्वरूप है और हास्य शुभ माना जाता है। ताले हीरा के आभूषण पहनये जाते हैं। इस दिन से धन तेरस तक प्रभु श्रृंगारके दर्शन वैष्णवों को पृथक् से कराए जाते हैं और राम से संबंधित पदों का गान किया जाता है-

रघुकुल षष्ठ प्रगटे है रघुवीर ।
 दैस दैस के टीको आयी, रत्न कनक मनि हीर ।
 घर घर मंगल होत बधाई, अति पुरवासिन भीर ।
 आनंद मगन भये सब डोलत, कहु न सौध शरीर ।
 मागध बंदो छूत छुटार, गो गपद हर चीर ।
 दैत असीस सूर चिर जीवा, रामचन्द्र सधीर ।

रक्षाबंधनोत्सव :

श्रावण शुक्ल १५ कासम्पन्न होने वाल यह उत्सव समस्त हिन्दू समाज में प्रचलित है। इस दिन बहने अपने भाइयों के स्वरक्षा हेतु रक्षासूत्र बांधती हैं। इसी दिन (यनबद्धी बलि राजा) मंत्रोच्चारण के साथ ब्राह्मण जात्रियों तथा वैश्यों में रक्षा सूत्र बांधा जाता है। इस पर ब्राह्मणों की दक्षिणा प्राप्त होती है। सूरका एक पद देखिए -

राखो बंधावत मान मये ।
 दच्छिना बुद्ध द्विजन की दीनी, गोवहंकार ली ।
 कुंज निकुंज श्री वृन्दावन के, विहृत अनंत ठये ।
 नचवत गावत करत कौलाहल उपजत मोद नये ।
 यह कौतुक देखत सुर नर मुनि बरणात कुसुम धरे ।

इस विवेचन से पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि पुष्टिमागीय सेवा नित्य एवं वषात्सव सूर संहित्य का मूल आधार है । पुष्टिमार्ग में मनाए जाने वाले उत्सवों से संबंधित महाकवि के सस्त्रों पद विभिन्न सेवा ग्रहों की कीर्तन प्रणालियों में उपलब्ध होते हैं । सूर सागर के पदों के मूल में भी पुष्टिमागीय भावना ही है । नित्य सेवा में से संबंधित विभिन्न पद प्रस्तुत किए जा चुके हैं । इसके अतिरिक्त भी सूर सागर के दशक स्कंध का सूक्ष्म अध्ययन करने पर अनेक ऐसे पद मिलते हैं जिन पर प्रातः काल से लेकर शयन तक की अवस्था में भावना के पद के पश्चात् दूसरे भी प्राप्त होते हैं । इन पदों से स्पष्ट फलक दिखाई पड़ती है कि इनकी महाकवि ने श्रीनाथ जी की कीर्तन सेवा के क्रम में की है । सूर सागर का प्रारंभिक एक पद देखिए -

आम आचर, लीलाधारी । सी राधा वस कुंज विहारी ।
 बड़भागी वै वृजवासी, जिनके संग खेलें अविनासी ।
 जा रस ब्रह्मादिक नहि पावैं, सीरस गोकुल गलित बहावे ।
 सूर सुख कहि कहा बखानै, गैविन्द की गति गौविन्द जानै

श्रीकृष्ण की इन्हीं लीलाओंको ध्यान में रखकर पुष्टिमागीय वैष्णव अपने प्रभु की सेवा करता है । सेवा का विधान संसार में आसक्त जीवों के मन का निरौघ करके प्रभु से संबंध स्थापित करा देना है । पुष्टिमागीय निरौघ का मूल आधार यम संयम अथवा इन्द्रिय दमन नहीं है । पुष्टिमागीय वैष्णवों के मन का निरौघ श्री कृष्ण की वृज में सम्पन्न की गई लीलाओं के श्रवण एवं तदनुसार प्रभु की सेवा करने से ही संभव माना जाता है । अष्टछाप के समस्त कवियों ने प्रभु की इन्हीं लीलाओंका गान अपनी सरस रचनाओं में किया है । सूर ने सारी लीलाओं के गान के साथ साथ वात्सल्य भाव का कोना - कोना छान मारा है । सूर के पदोंकी सूक्ष्म भावाभिव्यंजनागांभीर्य एवं स्वाभाविकता को देखकर यह मत स्थिर होता है कि चर्म चटुओं के अभाव में प्रभु की लीलाओं का ऐसा विशद भावपूर्ण और स्वाभाविक चित्र कोई कवि उस

उस स्थिति में ही कर पायेगा जब उसको अपने हृदय रूपी उपवन में प्रभु की समस्त लीलाओं का दर्शन होता रहे । आचार्य वल्लभ ने महाकवि पुष्टिमार्ग में दीक्षित करके स्वकृत सुबोधिनी टीका का रसामृत पान कराकर महाकवि के हृदय में श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओंको स्फुरित किया था । निश्चय ही सूरसागर महाकवि की मानसी सेवा का सुफल है । सेवा के मुख्य तीन तत्त्वों में उनकी कोटीन सेवा राग तत्त्व से प्रभावित मानसी सेवा ही है । सूर सागर के प्रत्येक पद में पुष्टिमागीय सेवा का प्रभाव परिलक्षित होता है । कुछ उदाहरण और देखिए -

नन्दभवन मेंकान्ह अरोगे, जसुदा त्यावे षाटरस भोग नीर ।
 आसन दे,चीको आगे धरि, जमुना जल राख्यो भारी ।
 कनक थार में हाथ धुमार, सत्रह सौ भोजन तहं आर ।
 ले ले धरति सबनि केआगे मातु परीसे जो हरिआगे ।
 खीर, खांड। घृत लावनि लाडू ऐसे होहिन अमृत खांडू । ---

पुष्टिमार्ग में प्रभु हेतु तैयार की गई सामग्री को भोग कहते हैं । इसी प्रसाद को ग्रहण कर वैष्णव, सेवक, मुखिया, चीतरिया सभी अपना निर्वह करते हैं । तथा इसी प्रभु की जूठन समझकर प्रेम से ग्रहण करते हैं ।

जूठनि मांगि सूर जन लीनो, बांटी प्रसाद सबनि को दीन्हो ।
 जन्म जन्म बाढ्यो जूठनि को चरो नन्द महर के धन को ।

भोग के पश्चात् सेवा में श्रृंगार का स्थान है । सम्प्रदाय के सेव्य ग्रहों में अत्यन्त कलात्मक ढंग से प्रभु को श्रृंगार धारण कराया जाता है । श्री वल्लभाचार्य का कथन है -

श्री कृष्णं पूजयेदभक्त्या यथालब्धा प्रचारकैः
 यथा सुन्दरतां याति वस्त्राभरणैरपि
 अलंकृतीति सप्रेम तथा स्थान पुरःसाम्

अर्थात् यथालब्ध द्रव्य के उपकारों द्वारा श्रोतृकृष्ण का पूजन करना चाहिए । वस्त्रों एवं आभूषणों से भी जिस विधि से कृष्ण के स्वरूप का दर्शन सुन्दर एवं मनोहारि हो उसी प्रकार अंगों के स्थान पुरःसर अलंकारादि श्रृंगार सप्रेम करना चाहिए । प्रभु की सेवा बाल और किशोर दोनों भावों से कसन-चमकिए। सम्पन्न को जाती है । इन्हीं भावों के अनुसार प्रभु का श्रृंगार किया जाता है ।

सूर सारावली में सेवा चर्चा ?

यद्यपि सारावली के विभिन्न छंदों का पुष्टिमागीय कीर्तन सेवा से पक्का संबंध नहीं है परन्तु फिर भी सारावली के विभिन्न छंदों में पुष्टिमागीय सेवा चर्चा ठीक उपलब्ध होती है -

श्री आचार्य जी ने महाकवि अष्टाक्षर मंत्र दीक्षा उपरान्त ब्रह्म संबंध दीक्षा से दीक्षात किया । आचार्य जी ने महाकवि भावतल्लिला का ^{करने का} पान आदेश दिया । पुष्टिमागीय सेवा के मूल तत्व एवं प्रभु की नित्य लीला गान कराने हेतु आचार्य ने उन्हें स्वकृत सुबोधिनी भागवत सार समुच्चय रूप पुरुषोत्तम एवं भागवत को अनुक्रमणिका का श्रवण कराया था जिस कारण महाकवि के हृदयमें प्रभु लीलाओं का स्फुरण हुआ था । महाकवि का कथन है-

करम जीग पुनि ज्ञान-उपासन सबहि ^{भूम} भ्रमायी ।

श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायी लीला भेद बतायी ।

ता दिन तैं हरिलीला गाई, एक लक्ष वद बंद ।

ताकी सार सूर सारावली, गावत अति आनंद ।

इस सारावली के छंदों में महाकवि अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में पुष्टिमागीय सेवा एवं पुष्टि भक्ति का विवेचन किया है । विभिन्न अवतार वर्णन करने पर महाकवि भावतलीलाओं का गान करता है -

अंकला अवतार बहुत विधि राम-कृष्ण अवतारी ।

सदा विहार करत ब्रज मंडल, नन्द सदन सुखकारी । ----

जन्म लेनेसे पूर्व प्रभु अपने माता पिता को अपना चतुर्भुजी रूप का दर्शन दरेखते
देते हैं तत्पश्चात् प्रभु के जन्म लेने तथा गोकुल पहुँचने का संचित वर्णन किया
गया है । वच्चों के जन्म पर यशोदा के द्वारा बघाई देने वाली की भीड़ लगी
है -

भयो मोर जसुमति गृह आनंद, मंगल चार बघाई ।

जागी महारि पुत्र-मुख देखी, आनंद उर न समाई । -----

चारों ओर से गोप गोपियाँ प्रसन्न मुख कुछ न कुछ घँट लेकर नन्द द्वार पहुँच
रहे हैं । घर मंगल गीत गाए जा रहे हैं । गोपकारं प्रसन्न मुख नाच रहे हैं ।
इसके पश्चात् महाकवि ने प्रभु के द्वारा विभिन्न राक्षसों के संहार से संबंधित
लीलाओं का गान किया है । प्रभु की आठ लीलाओं के वर्णन का क्रम अष्टायाम
सेवा के अनुसार ही है अर्थात् प्रभु के आगरणा, कलेशा, ग्वाली के साथ क्रीड़ा,
भोग, वन गमन, पुनः आगमन एवं संध्या तथा भोजनोपरान्त शयन इसी प्रकार
लीलाओं का वर्णन भी सूर ने प्रस्तुत किया है । इसके उपरान्त महाकवि ने
प्रभु तथा रुक्मणि वातालाप में प्रभु के ब्रज प्रेम की फलक दिखाई है -

एक दिना रुक्मणि सौ माघी, करत बसंत सुखदाई ।

सुन रुक्मणि राधिका बिन, मोहि पल दिन कल्प विहाई ।

कनक भूमि खचि रचित द्वारिका, कुंजन की छवि नाही ।

गोवर्धन पर्वत के ऊपर, बोलत मो सुहाई ।

ये दो भाव एवं तत्संबंधी लीला लीलाएं ही पुष्टिमागीय सेवा के मूल आधार हैं।
अतः कंद संख्या ८६८ से ८८० के अन्त तक पुष्टिमागीय सेवा का प्रभाव दिखाई
देता है । नित्य लीला के संबंध में कविकहता है -

नित प्रति मंगल रहत महर के, नित पति बजत बघाई ।
 नित प्रति मंगल कलस धरावत, नित प्रति वेद पढ़ाई ।
 बाल केलि क्रीड़त ब्रज आंगन, जसुमति को सुख दीनी ।
 तरुन रूप धरि गोपिन के हित, सबको चित हरलीनी ।

इसके पश्चात् दान लप्ला का वर्णन है । महककवि स्वयं प्रभु के मुख से कहलाते हैं -

जोग जुक्त कर ध्यान लगावत, जोग सिद्ध कर ज्ञान ।
 नैति नैति कह कहि निगम बतावत, ताहि होत निरमान ।
 जोग सारवा अरु ज्ञानभाषिनी, माया हृदय विनास ।
 प्रेम भक्त मेरी जस गावै, नैहि धट मेरी बास ।

गोवर्धन की वल्लभ सधन कंदरा में श्री स्वामिनी जी के सज्ज विहार करके प्रभु घर आकर शयन करते हैं । प्रातःकाल माता उन्हें जगाती है -

जसमति मत्तत जगावत मोरहि आगे अम्बज नैन ।
 करी मुखारी और कलक, कीनी जल अस्नान ।
 भोजन समय जान जसुमति ने लीनी दुहुन बुलाय ।
 बैठ आय जसमति की गौद में, आनंद उर न समाय ।
 बहु विधि के पक्वान बनार, परसति जसुमति माय ।
 आरोगत बल मोहन दीऊ मुख देखत ब्रजराय ।
 बीड़ी खाय चले खेलन की, बोच मिली व्रज नार ।
 ले चली पकर बांह राधा पे, सधन कुंज कुंज के द्वार ।

इन छंदों में प्रथम चार प्रकारके दर्शनों की छाप दिखाई देती है । साम्प्रदायिक मान्यतानुसार इस समस्त प्रभु निकुंज में श्री स्वामिनी जी के साथ विहार करते हैं । यह लीलारहस्यपूर्ण और गुप्त है -

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

आ गया कल्प रमण तुम ठहरे श्री मुख कही बखान ।
 सौ श्रुति सम होय ब्रज मंडल, कोनी रास विहार ।
 नवल कुंज में अंस बाहु धरि कीनी कैलि अपार ।

तदुपरान्त प्रभु का सा जानने का वर्णन मिलता है । मंगला समय का आगर्ण
 किशोर भावानुसार है । पु० मा० में वषाँत्सवों में वसंतोत्सव, होली, रास,
 आदि उत्सवों को मनाया जाता है । सारावली में इन्हीं का अधिक वर्णन
 है । इनका दूसरे कवियों ने भी विमूलन किया है । सारावली में भी सूर
 सागर कीर्ति सेवाओं का क्रम रखा गया है -

प्रथम बसंत पंचमी सुभ दिन मंगला चाय बघाये ।
 जसुमति बधाई बांटति फूलि आन न समाई ।
 उबटि न्हार स्याम सुन्दर की आभूषण पहराई ।
 घर घर ते आई व्रजनारी मंगल साज सवारी ।
 हैम कलस सिर धरि पूरन काम मंत्र उच्चारै ।

पु० मा० सेवा के सा अनुसार श्रृंगार दशैं में प्रभु को कण्ठो फाग अथवा बसंत
 खिलाया जाता है तत्पश्चात् आरती उतारी जाती है और प्रभु को ग्वालों के
 साथ खेलने के भाव से ग्वाल दशैं कराए जाते हैं। तत्पश्चात् निकुंजी राधा
 संग विहार का प्रसंग है । सारावली में भी महाकवि ने होली के उत्सव का
 वर्णन किया है। चैत्र में पु०मा० में होलीत्सव मनाया जाता है जिसका वर्णन
 हम पीछे कर आए हैं । उसी का संकेत सारावली में भी मिलता है -

सघन कुंज में डोल बखण बनाओ , झूलत है पिय प्यारी ।
 ललितादिक बोरी स्वावत, नानाभांति सवारी ।

इसकथन से स्पष्ट है कि प्रभु को व्रज लीलाओं में उनकी किशोर लीलारं भी नित्य

एवं अखंड लीलाओं में है । आचार्य जी ने पु० मा० सेवा के मूलमें इसी किशोर भाव एवं बाल भाव को मञ्जता दी है । सारावली के इन संकेतों से पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि पु० मा० सेवा से ही सर्वाधिक प्रभावित थे ।

सेवा फल में सेवा चर्चा :

सारावली के परिशिष्ट में सेवा फल नामक एक लघु ग्रन्थ संकलित किया गया है । इसे भी सूर को प्रथम प्रामाणिक रचना माना जाता है । इसमें महाकवि ने पु० मा० अष्टयामी सेवा के कर्मांको सेवा के मूल तत्वों और सेवा फल को स्पष्ट किया है । इस ग्रन्थ के प्रारंभ मेंही कवि कहते हैं -

भजे गोपाल भूल जिन जाड, मानुष जन्म यही है लाड
अर्थात् मानव जन्म जन्म का साफल्य निःसाधन वृजवासियों के स्वामी गायी के पालक श्रीकृष्ण का भजन अर्थात् सेवा करने मेंही है । पु० मा० सिद्धान्तानुसार सेवा का अधिकार गुरु के अनुग्रह से प्रभु से ब्रह्म संबंध करा देने पर ही संभव है । इसी बात को कवि इस प्रकार कहते हैं -

‘ गुरु सेवा करि, भक्ति कवळ कमाई , करपा भई, तब मन में आई
पु० मा० वैष्णव गुरु को कृष्ण रूप मानकर आर्य के चरणों का दृढ़ाश्रय ग्रहण करता है । यही दृढ़ाश्रय प्रभु वैष्णवोंको प्रभु का अनुग्रह प्राप्त कराता है । इसी अनुग्रह से ही वैष्णव सेवा का अधिकारी बनता है । महाकवि तो आचार्य तथा प्रभु के अन्तर हो नहीं करते थे । इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनके उनके देहावसान के समय गाया गया । यह पद है -

भरोसो दृढ़ इन चरनब कैरी ।

श्री वल्लभ नाव चन्द्र कटाबितु सब जामाहि अंधरी ।

सर्वा फल में भी महाकवि को स्पष्ट कथन है कि पु० मा० भक्ति गुरु सेवा

से ही प्राप्त हो सकती है। कवि सेवा की रीति बताते हुए कहते हैं -

‘ सुनी संत सेवा की रीति कर कृपा मन राखी प्रीत ’

अर्थात् मन में प्रभु के प्रति भाव रखने पर प्रभु अनुग्रह करते हैं। पु० मा० में इसी प्रेम का ही प्राधान्य है। इसी प्रकार कवि आठायाम की सेवा क्रम बताते हुए कहते हैं कि पु० मा० में प्रभु के लिए की जाने वाली छोटी से छोटी सेवा महत्वपूर्ण है, चाहे प्रभु को आरती करो, श्रंगार करो, शीशा बिखाओ, सभी का कुछ न कुछ फल मिलता है - पु० मा० सेवा का फल ही सेवा है और साधन भी सेवा है अतः कवि समस्त सेवाओं का विवरण करके अन्त में कहता है-

सेवा का फल कही न जाई, सुख सुमिरि श्री वल्लभराई ।

सेवा को फल सेवा पावे, सूरदास प्रभु हृदय स भावे ।

पु० मा० सेवा से मिलने वाला रक्षामृत ब्रह्मानन्द से भर बढ़ कर है। कवि कहता है -

‘ वेद पुरान में यो भाख्यो, सेवा रस व्रज कीधिन चारख्यो ।

किसी ने कहा भी है, ‘ सेवा की है भादुसुत रीति श्री विट्ठलनाथ जी सो राखे प्रीति ’ (श्री आचार्य प्रभु प्रगट बनाई, कृपा भई तब मन में आई) उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि सेवा का प्रचलन (बाल तथा किशोरभाव) से श्री आचार्य ने ही किया है। सब सेवाओं में मन्नसी सेवा को ही सर्वोपरि माना है सूर ने भी कहा है -

मनसा जो सेवा क आचरे, तबहि सेवा पूरी परै ।

सेवा सो आसरा करि रहै, दुख सुख बचन सबहि सहै ।

सेवा के प्रमुख तान्त्रा बताए हैं - श्रृंगार रस भोग, इन्हीं से सेवा का विस्तार किया गया है, सूरने इन तानों का नामल्लेख करके उनका फल बताया है।

श्रृंगारके विषय में कहते हैं - जो हरि का नित करे सिंगार ताकी पूरन है अंगोकार ।

क्योंकि प्रत्यक्षा सेवा के बिना वैष्णव श्रृंगार नहीं कर सकता तथा सेवा के लिए सेव्य स्वरूप आचार्य तभी प्रदान करते हैं जब वैष्णव का पूर्ण निवेदन तथा पुष्टिमार्ग में अंगीकार होजाता है - राग में के संबंध में कहते हैं -

जो ठाकुर को कीर्तन सुनावै, ठाकुर निकट बुलावै ।

अर्थात् कीर्तन सेवा से प्रसन्न होकर प्रभु वैष्णव को अपनी नित्य सेवा में सम्मिलित कर लेते हैं । भोग सेवा का फल बताते हुए कहते हैं -

‘जो ठाकुर को भोग सरावै, वह तो परम नित आनंद पावै ’

इन दोनों के अतिरिक्त प्रभु को सुख पहुंचाने वाली प्रत्येक क्रिया प्रभु को सेवा है । इसी से कवि ने समस्त सेवाओं का फल बताया है -

जिन ठाकुर को दरसन कियो, जीवन जन्म सुफल करि लीयो ।

० ० ० ० ० ०

जो सेवा में अगलस लावै सो जड जन्म प्रेत का पावै ।

इस प्रकार समस्त साहित्य पु० मा० सेवा से ओत प्रोत है । यह कीर्तन सेवा का होसुफल है कि आज हमें व्रजभाषा के अदाय भंडार के रूपमें महाकवि क० पद एवं अन्य रचनाएं प्राप्त होती है , पु० मा० कीर्तनों में सूर, सूरस्याम, सूरदास आदि विविध रूप ली पद निश्चय ही सूत्र कृत है । आजके समय से ही कीर्तनों में गार जाते हैं । इन पदों में पु० मा० सेवा का प्रभाव और अधिक परि-लक्षित होता है । इन समस्त तथ्यों का ध्यान धरते हुए कहा भी जा सकता है कि सूर साहित्य पुष्टिमार्गीय सेवा को ही देन है ।

परमानंद जी की सेवा से संबंधित वर्णन इसप्रकार है -

(१) बाललीला

माई री कमल नयन स्याम सुन्दर झूलत पल्लवा ।
बाल लीला गावति सब, गोकुल को ललना ।
अञ्जो असन तरुन चरनकमल, नख मनि ससि-जीती ।
कुटिल कव भंजराकृति, लतकत लट मीती -----

(२) मैं बारी मेरे लालन, पग धरी कृतियां ।
कमल नैन बलि जाऊँ बदन पर ।
सोभित-हानी न्हानी दू दूध की दंतियां ।
यह तेरी यह मेरी, यह बाबा नन्द की ।
यह तकी जी झुलावे तेरा पलना । -----

(३) मनिमय आंगन नंद के खेलत दौऊ भैया ।
गौर-स्याम जोरी बनी, बल कंवर कन्हैया ।
नूपुर कंकन किंकिनी, रत्नभुन भुन बाजे ।
मोहि रही व्रज सुन्दरी मनसा सुत लाजे । -----

(४) प्रातः समै सुत को मुख निरखत, प्रभुदित जुसुमति हरषित नंद ।
दिक्कर-करिन किरन मानों विगसत, उर प्रति अति उपजत आनंद ।
बदन उधार व जगावति बननि, जागो मेरे आनंद कंद ।
मनहूँ पयोनिधि मथत फीन फुल, देखै छि दिखाई नीतन चंद । ---

(५) जैवत नंद गोपाल खिन्नत ।
पहरि पन्हैयां बाबा बुकी निकट निकट डरपावत ।
व्रजानी बरजत गापाल। हर हरें ढिंग आवत
बारंबार दास परमानंद ऐसी पूत बाबा जोकी भावत ।

क्रीड़ा कौतुक

(१) गोपाल माई खेलत है चौगान ।

वृज कुमार बालक संग लीने, बृन्दावन मैदान।

चंचल बाजि नचावत, आवत, हीउ लावत पान ।

सब जित रहत तहां ही चलावत। करतबबा का आन ।

करत न सक निसंक महाबलि, हरत नृपति कुल मान ।

परमानंददास का ठाकुर गुन आनंद विधान ।

(२) बने बन आवत मदन गोपाल ।

नृत्पत हंसत, हंसावत किलकल, संग मसदत ब्रज बाल ।

बैनु मुरझ, उपचंग, चंग मुख, चलत विविध सुर ताल ।

बाजे अनेक बैनु रव सो मिलि, रानित किंकिनी जाल।-----

माखन लीला

(१) जसोदा चंचल तेरी पूत ।

खानंधी वृज भोतर डोलें, करे अटपटी सूत ।

दह्यी दूध घृत ले आगे करि, जहांजहां धरी दुराई ।

अंधिअरि घर कोऊ ना जाँन, तहां पहलै ही जाई।

गौरस को सब भाजन फौरे, माखन खाय चुराई।

लरिकन के कर कान परीरे तहां ले चल पराई । -----

(२) तेरी सौ सुनि-सुनि री भैया ।

थकै चरित्र तू नहि जानै, बोलि बूझि बूझि संकषीन भैया ।

व्याई गाय बकरुआ चाटत, ही पीवत ही प्रात खन भैया ।

याहि देखि धीरी विचकानी, मारन को दोरी मोहि भैया ।

द्वै सींगन के बोच परयो मैं तहां रखवारी कोउ न सैया ।

तेरी पुन्य सहाय भयो है, अब उबरयो बाबानंद दुह्या ।
 ये जीऊ बाटि परी ही मोपे भाजि चली कहि देया देया ।
 परमानंद स्वामी कीजनी, उर लाई हंसि लेति बलैया ।

(३३) अरी भैरौतनक सौ घोपाल, कहा करि जानि दधि को चोरी ।
 काहे को आवत हाथ चचावति, जीम न करिही थोरी ।
 कब छीकै ते माखन खायो, कब दधि मटुकी फोरी ।
 अंगुरियन कहि कहि कबहुन चाखत, घर छी भरी कमीरी । ---

दान लीला

(४) मैं तासौ किति बार कह्यो ।
 इहि मारग एक सुन्दर ढोटा बरवस लेत दह्यो ।
 इत उत सघन कुंज गह्वर तकि मारग रोक रह्यो ।
 अस्ति कमनीय अंग छवि निरखत, नैक न पात रह्यो ।----

(५) मटुकी लै उतारी घरी ।
 इन मोहन भैरा अंचरा पकरयो, तब ही बहोत डरी ।
 मोपे दान सांवरी मांगि, लोने हाथ करी ।
 मोहि को तुम गहि जु रहे हो, संग की गई सगरी ।
 पैया लागि करत हों विनता दुहु कर जोरि खरी
 परमानंद प्रभु दक्षिण बैन की, विरिया जात हरी ।

प्रमासक्ति

(१) जा दिन ते प्रीत स्याम सा कीनी ।
 ता दिन ते भैरे इन नैननि नैकहू नींद न लीनी ।
 सदा रहत चित चाक चढ़यो जो, और न कहु सहाय ।
 मन मैं करत उपास मिलन को, इहे विचारत जाय ।

- (२) मैं अपना मन हरि जोरयो, हरि सो जोरिसबन सो तोरयो ।
नचच नच्यो तो धूँघट कैसी लोक लाज डरु फटकि पिछारयो ।
- (३) मदन गोपाल करंग राती ।
गिरि गिरि परत संभारन तन को अघर सुधर रस माती ।
वृन्दावन कमनीय सघन बन, फूली चहुं और जाती ।
मंद संगंध मल मनिल, अति जुड़ात मैरी क्वातो ।-----

रूपमाधुरी

भावै मोहि माधो की आवनि ।
बराहापीड़ दाम गुंजामनि, वैनु अघर मधुर धुनि गावनि ।
स्याम सुभा तन गौरज मंडित, भेषा विचित्र बनावनि ।
बाल वृन्द मध्य नंद नंदन, आनंद रासि बढ़ावनि ।

रस रंग

लालन संग खेलन फाग चली ।
चोवा चंदन आर कुमकुमा, किरकत घोषा गलि ।
श्रुतु बसंत आगम नव नागरि, जीबर भार भरी ।
देखन चली लाल पिरघर की, नंद जु के द्वार खरी ।
० ० ० ० ० ०
नवल गोपाल , नवल व्रज बनिता निकसि चाहौ आर ।
देखौ कृसन की लीला विहरत गोकुल माही ।
कहत न बने दास परमानंद यह सुख अत ज नाही ।

विरह

व्रज के विरही लोग वै चार ।
बिन गोपाल ठगै से ठाढ़े अति दुरबल तन हार ।

मांत जसोदा पंथ निहारत निरखत सांभ सकारे ।

जो कौउ कान्ह कान्ह कहि बोलत अखियन बहत पनारे । --

(२३) प्रेम की पीर सरीर न भाई ।

प्रबल सुल सह्यो जात न सखिरी, आवे रोय न गाई ----

(३) माई री चंद लायो दुःख दैन ।

कहां वै दस, कहां मोहन, कहां सुख की रैन ।

तारे गिन गिन गई री सबै निसि नेकन लागे नैन गगगग

(४) बदरिया तैं कत व्रज पर घोरो ।

असलन साल सलावन लागी विधिना सिखी विद्धीरी ।

रही जु रही, जाओ घर अपने दुःख पावत है किस्तीरी ।

परमानंद प्रभु सो क्यों जोवे, जाकी विह्वरी जोरी ।

कृष्णादास जी के काव्य में सेवाभावना की अभिव्यक्ति :

रूपासक्ति

गिरिधर देखैं सुख होय ।

नैवर्त को यहै परमफल, मोहि विधित जई लोय ।

महामत नील अम्बुज का रूप लियो है निचोय ।

कृष्णादास नाथ नव रंगहि मिलि विरहै दुःख छोय ।

(२) ग्वालि कृष्ण दरस सो अटकी ।

बार-बार पनघट पर आवत सिर यमुना जल मटकी ।

मनमोहन को सुधानिधि, पिवत प्रेम रस गटकी ।

कृष्णदास धन्य राधिका लोक लाज सब पटकी ।

कैलि वणीन :

राधा रंग भरी नहिं बोलत ।
 मोहन मदन गोपाल लाल सो, अपनी यौवन तौलति ।
 चाहति मिलन प्रान प्यारे, को मेरी मन टकटौलति ।
 काँड़हूँ बहुत चातुरी भामिनी, कहं हमसों फ़कफ़ोरति ।
 प्रात ही लीगी सुनि सजनी, अबहि चमवर बोलति ।
 कृष्णदास प्रभु गिरिधर पियहित, सारंग नैन सलीलति ।

(२) बने हो रसय से आर प्रात ।
 आलस भरि बदन की सीमा, निरखि लजत जल जात ।
 संध्या बदै बोल कीये साँचे, काहे को लाल लजात ।
 कृष्णदास प्रभु गिरिधर चितवन, जुवति मृगी तकि घात ।

उत्सव संबन्धी :

वृन्दावन कुंजन में सुचि खसखानी रूषीं,
 सीतल बयारि फ़कि गीखन बहत है ।
 सुगंध गुलाबी जल, नाना बहु भाँतिन के ,
 लाय लाय, आय सखी सब किरकत है ।
 धार धुखा को बूझ कूटत है तहाँ पै नीकी ।
 दादुर मोर पिक स्वाँति जल पियवत है ।
 कृष्णदास फुहारे कूटे, आनंद रितु मन लूटे ।
 फ़ुकि फ़कि मेघ धार हीदन भरत है ।

चतुर्भुजदास जी में सेवा भावना के पद :

(१) जागो जागो गोपाल लाल दोही घौरी गया, सद्य दूध मथि
पिवा ध्या ।

भोर भयी खा तमचर बीले, घर गोपर द्वार सब खोल ।
गोपी रई मथनियां धौवे, अपनी अपनी दह्यी बिलीवे ।
सकल सखा बलावन आवे, कृष्ण ना ले ले भगल गार्वे ।
भैरवन वसन पलटि पहिराऊँ, चंदनतल्लि ललाट बनाऊँ ।
चतुर्भुज प्रभु श्री गोवर्धन धारी, मा मुख कृवि पर बलि गई
महतारी ।

(२) भैया मोहि माखन मिश्री भावे ।

मीठी दधि मधुघृत अपने कर, क्यों नहि मोहि खावे ।
कनक दोहिनी दूँकर मोको, गो दोहन क्यों न सिखावे ।
ओटयो दूध देतु घौरी कै, भरि कटोरा क्यों न प्यावे ।

दान लीला :

मटुककिया मेरी मोहन दीजे ।
जो ककु दधि चाखन को चाहो, तो रंचक वात ले खीजे ।
अनआए, धन अटक भोर हो, वन तन नौतन सारी भीजे ।
रंग बैशी अवार मोहि रहे है, कहा कहौ जो घर कोउ खीजे ।
चतुर्भुज प्रभु ही कालि आप हौं, सांचि बात पतीजे ।
गिरिधरलाल भयो प्रगट दान तुम, आजु न छ प्रभु कीजे ।

कृवि वणी

नवल किसानी नवल किसान, बनी है विचित्र जोरी ।
सोभा सिन्धु मदन मोहन रूप रासि माझि-नो ।

रजत तन गौर स्याम, प्यारी पिय भवान ।
 नव धन गिरधरन अं, अं मज्जू दामिनी ।
 पहिरै पर पियरी भूषान, भूषित माजे सब अं ।
 गज गति गोपाल नागर, नाकरी गज अज्जामिनी ।
 दास चतुर्भुज दंपति की उपमा न कौउ काम,
 मूररति कमल लीचन मृग नैनी कामिनी ।

- (२) आजु कमल नयन का कवि नीकी ।
 रति रस रंग निरखि उपमा की, कौटि मदन दुति फीकी ।
 रंगति ललित भुक्कुटि कौपाल, तामें सोभा अथ अघरमसीकी ।
 डगमगात, अलसात भी उठि, दरस दियो सुभलोकी ।

रास रंग :

प्यारी भुज ग्रीवा मैलि, नृत्पत पीय सुजान ।
 मदित परस्पर, लैत गति में सुगति ,
 रूप रास राधे गिरिधरन गुन निधान ।
 सरस मुरली धुनि सौ मिले सात सुर ।
 रास रंग भीने गावे आँर तान बंधान ।
 चतुर्भुज प्रभु स्वाम के स्यामा की नटनि देखि ।
 मोहे खा मृत मरु थकित व्योम विमान ।

- (२) सावन तजि हरियाली सुहाई माई, रिमकिम रिमकिम
 बरसत मेह भारी ।
 चूनरी की पाग बनी चूनरी पिछौरा करि, चूनरी चौली बनी
 चूनरी की सारी ।
 दादु भी पधिया बोलत, सब्द करत किलकारी ।
 गरजत गगन दामिनी दमकत, गावत मलार तान लैत न्यारी

विविध लीलार :

हा हा और सुनेगी कोउ ।
 बहुरि ग्वाल मुख ते जिनि काढ़े, जो हम जाने दोऊ ।
 बालक कान्ह निपट भोरी है, पायन चलन सिखायी ।
 ताको कहत भुवन आपुन मैं, चोरी माखन खायी ।
 घर हू करत कलेऊ कृम कृम, जो काऊ बहूत निहोरे ।
 सो क्यों अनत सकुच को लरिका, कुंवकी के बंद तोरे ।---

- (२) प्रानपति विटरत जमुना कूल ।
 लुब्ध मकरंद के बस भयी भंर जो, देखि रवि उदय मानी
 कमल फूल ।
 करत गुंजार मुरली ले जु सांवरी, सुनत व्रज बधु तन-सुधि जु भूले ।
 चतुर्भुज दास प्रभु जमुने प्रेम सिंधु मैं, लाल गिरधरन राखि कूल ।

हिडौला वर्णन :

माई
 हिडौरे कुसुमनि भांति बनाई ।
 नव किसोर मुरलीधर मूरति, दिम राधे सुखदाई ।
 दादुर मो पपैया बोलत नैनी नैनी बूंद सुहाई ।
 फीटा दैत सकल व्रव सुन्दरि, पवन चलत सुखदाई ।
 मत्तुर्भुज प्रभु गिरिधर लाल की, यह कवि वरनिन जाई ।

उत्सव संबंधी :

खलत बसैत माई गिरिधरन लाल, ज्वति जन आई नवल बाल ।
 किसरि भरि भरि बुरकत गुलाल, लपटावत चौवा अति रसाल ।
 चंदन लग्यो सुभा दोऊ गाल, तब मुरलीधर रिझवत गुपाल ।
 रही पग ठरकि सिर अघे भाल भयी देखत मनमथ अल बाल ।
 श्री गोवर्धनधर रसिकराय, चतुर्भुज दास बलिहारि जाय ।

- (२) तनक सो बदन, सदन सोभा की, तनक तिलक ढिंग तनक डिठौना ।
 तनक लटुरि सोहे, मुनिन के मन मोहे, मनो कवलन ढिंग बैठे अलि खौना ।
 तनक सो रज लागी, निरखत सो बड भागी, कंठ कठुला सोहे, नख बघना ।
 नन्ददास जसोदा आंगन में खेलै हरि, जाको जस गाय गाय सिव भये मगना ।

लीला वर्णन :

देखो देखो रो नागर नह नितैत कालिंदी तट,
 गौपन के मध्य राजे मुकुट लटक ।
 काक्खिनी किंकिनी कहि पीताम्बर को चटककुंडल की एण
 रवि रथ का अटक । ----

- (२) अही तो सा नन्द लाडिले ऋगहंगी ।
 भैर संग को दूरी जात है, मटुकी पटक डगहंगी ।
 भौर ही ठाडी कित करी मौकूं तुम जानी कछु कीनि न कहंगी ।
 तुम्हारे, संग सखा नहीं देखत अबहि लाउ उतरि छहंगी----

भक्ति-भावना :

रामकृष्ण कहिए उठि भौर ।
 अघ ईस के घुस घरे हैं, ये वृज माखन चौर ।
 उनके कुत्र चंवर सिंहासन, भरत सत्रुघन लखमन गौर
 उनके लकुट मुकुट पीताम्बर, नित गायन संग नन्द किसौर ।

गोस्वामी जो हितहरिवंश जो के काव्य में सेवापरक पद :

- (क) आजु बन नोकी रास बनायी ।
 पुलिन पवित्र सुभा जमुना तट मोहन बेणु बजायी ।

कल कंकण किकिणि नूपुर धुनि सुनि खगमृग सनु पायी ।
 युवतिन मंडल मध्य श्याम घन, सारंग राग जमायी ।
 तमल मृदंग उपंग मुरज डफ, मिलि रस सिंधु बढ़ायी ।
 ० ० ० ० ० ०
 परिरंभन चुम्बन आलिंगन, उचित युसवति जन पायी ।
 वरषात कुसुम मुदित नभ नायक, इन्द्र निसान बजायी ।^१

(ख) शरद राका रजनि विपिन वृन्दा सजनि ।
 अनिल अतिमंद शीतल सहित वास रो ।
 परम पावन पुनिल मृग सेवत नल्लि ।
 कल्पतरु तीर तीर बलबीर कृत रास रो ।^२

वृन्दावन महिमा :

प्रथम यथामति प्रणमऊं श्री वृन्दावन अति रम्य ।
 श्री राधिका कृपा बिनु सबके मननि आम्य ।
 वर यमुना जल स्निहत दिन ही शरद वसंत ।
 विविध भांति सुमनसि के सौरभ अलि कुल मंत ।^३

रूपमाधुरी :

नन्द के लाल हयौ मन मोर ।
 षांक विलोकनि चाल कबीली रसिक शिरोमणि नंद किशोर ।
 कहि कैसे मन रहत श्रवण सुनि सरस मधुर मुरली की धीर ।
 इन्दु गोविन्द वदन के कारण चितवन को मये नैन चकोर ।^४

१- गी हतिसुधा सागर (श्रीमज्जतुराशी जी) पृ० १२२

२- वही, पृ० १७६

३- वही, पृ० २०१

४- वही, पृ० १६६

हरिराय व्यास

वृन्दावन महिमा

माधुर्य भक्ति का अनुकरण करने वाले सभी सम्प्रदायों में वृन्दावन धाम की अनन्त महिमा है। व्यास ने भागवताक्त कृष्ण की वृन्दावन लोलाओं का संकेत करते हुए वृन्दावन महिमा में ललित और दीर्घ-काम पदों की रचना की है। उदाहरण देखिए -

धनि धनि वृन्दावन की चरनि ।
अधिक कोटि वैकुण्ठ लोक तैं, सुक नारद मुनि वरनी ।
जहाँ स्याम की वस्त्रम-कैलि कुल धाम काम मन हरनि ।
ब्रह्मा मोह्यो ग्वाल मंडली, भेद रहित आचरनि ।
० ० ० ० ० ० ० ०
तहाँ व्यास बसि ताप बुझाओ, अन्तरहित की जनि ।^१

यमुना महिमा :

कृष्ण लोला के उपकरणों में महत्वपूर्ण स्थान देते हुए व्यास जी ने यमुना का भागवत के अनुसार कृष्ण यामिनी कहा है -

जमुना जीरि जु की प्यारी ।
जाकी वैभव कही भागवत, सुक जयदेव विचारी ।
मनिमय तटी, उभट पट भूषण ब्रूषण पियहि सिंगारी ।
सौरभ सुधा सलिल जु राधा मोहन को रस भारी ।
सुर तरु राज विराजत तीर कुटीर समीर सवारी ।
० ० ० ० ० ० ० ० ०
व्यास स्वामिनी स्याम भामिनी वृन्दावन चंद उज्यारी ।^२

१- भक्त कवि व्यास जी (वाण्णी संकलन) पृ० २००-२०६

२- वही, पृ० २६२

रूपमाधुरी -

हरिमुख देखत ही सुख नैननि ।
 निरखत रूप अनूप निमेषा लात ही खेत कुनैननि ।
 बारै घर घर बात बात सुनि सुवन भरत सुख चैननि ।
 हंस कोटि दामिनी प्रतिविम्बित बिम्बाधर रस रननि ।
 निनु दामिनी हौं माल लई इति स्याम छबीले सैननि ।
 ० ० ० ० ० ० ०
 सहज मधुरता व्यास मन्द ध, कहत बने क्यां बैननि ।^१

वैष्णुमाधुरी -

मधुरमधुर धुनि आज वैतु बजावत ।
 मुदित उदित ताल बंधान रागनि कै, रसिक कुंवर श्रीराग अलावत ।
 देव सुरनि मधुकर मौर नाचत विथकित चंद मसदित धन गाजत ।
 उलट वहत ललिला सर उमगत, फुलकित वृन्दा विपिन विवराजत ।
 ० ० ० ० ० ० ०
 वरकात कुसुम मुदित नम नाइक, जय जय धुनि सुनि सब व्रज भ्राजत^२ ।

गोपी प्रेम -

भागवत में वर्णित गोपियों के रास विलास जैसे पृथुल और
 मांसल चित्र को भांति व्यास काव्य में भी ऐसी ही कल्प मिलती है ।

१- भक्त कवि व्यास (वाणी संकलन) पृ० ३८२

२- वही, पृ० ३११

तन्मयासक्ति -

जो भावै सैा लागनि कहत दे
 अग्नि पिछोडी पांव नदी जै, न्याव भेहि प्रीति निबहन दे ।
 हो जो बन मदमाती उखी रा, भरी छतियां पर मोहन रहन दे ।
 नवकुंज छिप अंग संग भिला, सुरति पुंज रस सिंधु थहन दे ।
 या सुख कारन व्यास आस के लोक वेद उपहास सहन दे ।

इनके विषय में श्री रामचन्द्र शुक्ल के कहा है, ' इनकी रचना परिमाण में बहुत विस्तृत है और विषय भेद के विचारसे भी अधिकांश कृष्ण भक्तों की अपेक्षा व्यापक है।^२ भागवत की रासपंचाध्यायी पर इन्होंने इसी नाम की रासपंचाध्यायी लिखी थी जो भ्रमवश सूर सागर में सम्मिलित कर लो गईं । नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के सूरसागर संस्करण में भी यह मूल है ।^३ शुक्ल जी ने इस प्रान्ति की ओर संकेत किया है ।

१- भक्त कवि व्यास जी (वाणी संकलन) पृ० ३२४

२- दक्षि० घृ० हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १६० (रामचन्द्र शुक्ल)

३- सूर सागर पत्ता खंड, पृ० ६६६-६७२

४- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १६०

षाष्ठ अध्याय

१६वीं - १७वीं शताब्दी के
कृष्ण-भक्त कवियों पर पूर्ववर्ती
प्रभाव

षष्ठ अध्याय

१६वीं०- १७वीं शताब्दी के
कृष्ण भक्त कवियों में सेवा भावना की
अभिव्यक्ति

श्रीमद्भागवत का ज्ञान पक्ष अत्यन्त दुरुह, गंभीर और समन्वयी है। इसका आचार तथा विचार दो पक्ष अतिशय शक्तिशाली होने के कारण समस्त भारतीय भक्ति साहित्य को प्रभावित करने में समर्थ हुए। इन तत्वों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है -

१- सामान्य तत्व

२- विशिष्ट तत्व

सामान्य तत्वों ने सगुण और निर्गुण दोनों ही प्रकार के भक्ति-साहित्य प्रभावित किया है। उदाहरणार्थ नाम महिमा को लिया जा सकता है। भगवान् के नाम को अमोघ शक्ति के विषय में निर्गुण भक्त कबीर सगुण भक्त सूर और सगुण रामभक्त तुलसी दोनों ही एक मत हैं। नाम माहात्म्य के सामान्य तत्व को समस्त मध्ययुगीन भारतीय-साहित्य ने एक प्रमुख वर्ण विषय बनाया। इसके अतिरिक्त गुरु-महिमा, स्तुति-गान, सत्संग, वैष्णव वैराग्य आदि वे तत्व हैं जो सामान्यतया समस्त भारतीय भक्ति साहित्य में पाए जाते हैं। श्रीमद्भागवत-

१- को को न तरयो हरि नाम लि-

सुवा पढ़ावत गनिका तारा, ब्याध तरौ सर साध कि

अन्तर्दाहि जो मिटयो व्यास को इन चित है भागवत ।

गाता के तरह ही मध्यकाल का सबसे प्रभावशाली ग्रन्थ माना गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में " इस काल के समाप्ति के आस पास परम शक्तिशाली भागवत पुराण का अभ्युदय होता है। उद्भूतकालीन धर्म-मत और साहित्य को इस पुराण ने अधिक प्रभावित किया " -

विशिष्ट तत्वों के अन्तर्गत विशेष रूप से कृष्ण भक्त साहित्य को प्रभावित करने वाले भागवतोद्भूत तत्वों को ग्रहण किया जा सकता है। इनको कृष्ण भक्त कवियों ने सामान्य रूप से और विशिष्ट कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय दक्षिण कवियों ने विशेष रूप से श्री मद्भागवत में कृष्ण लीला का जो सांगोपांग क्रमिक एवं विस्तृत तथा मनोरम वर्णन मिलता है, वह समस्त भारतीय साहित्य में अद्वितीय है। कृष्ण-लीला के अतिरिक्त श्रीकृष्ण का अलौकिक रूप माधुर्य, वेणु-माधुर्य और गोपी-प्रेम आदि तत्वों का जैसा अद्भुत चित्रण श्री मद्भागवत में है, वैसा न हरिवंश पुराण में है, न विष्णुपुराण में और न किसी अन्य पुराण में। कृष्ण भक्त कवियों को प्रभावित करने वाले सामान्य तत्वों का क्रम निम्न प्रकार से है-

१- भक्ति का सर्वश्रेष्ठत्व-

भक्ति को अलौकिक महत्ता और श्रेष्ठता को श्रीमद्भागवत ने सम्पूर्ण आस्था से प्रतिपादित किया। स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं कि - " कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म तथा अनान्य श्रेय साधनों से जो कुछ स्वर्ग और अपवर्ग अथवा मेरा परमधाम आदि प्राप्त होते हैं। वह सब यदि इच्छा करे तो मेरा भक्त है- मेरा भक्ति द्वारा ही सुगमता से प्राप्त कर सकता है। मेरे अनन्य भक्त

१- मध्यकालीन धर्म साधना, पृ० ३९ सूरसागर (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) पद ८९

मेरे देने पर भी भक्ति के अतिरिक्त केवल्य को भी कामना नहीं करते^१। ”

२- स्तुति -

भगवान् को स्तुति भगवान् को भक्ति का एक अंग है। आर्च होकर भगवान् को भक्त-वत्सलता और अपना कल्मष-परता, भगवान् को असौम शक्ति और अपनी अत्यन्त शक्तिहीनता का ऋजु भाव से कथन करने से जो व को परम शान्ति का अनुभव होता है। संस्कृत का स्तोत्र साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। महाकाव्यों में भक्ति रस की जो गंगा बहती है, वह भक्तों को विशेष रूप से आकर्षित एवं प्रभावित करती है। भगवान् को स्मृति वैसे ही पतित पावनी है। यदि उसमें स्तुति का योग हो जाता है तो कहना ही क्या ? स्वाभावतः मधुर दूध मधु मिश्रित होते ही अधिक आनन्ददायी हो जाता है। निश्चय ही भक्ति के साधनों में स्तुति गान ही एक प्रमुख और अनिवार्य साधन बताया गया है। भगवान् को प्रेम स्तुति भक्ति को प्राप्ति के लिए तो यह और भी आवश्यक है। ” श्री भागवत में भगवान् की जितनी अधिक संख्या में और जितनी स्तुतियाँ हैं, वैसे अन्य पुराणों में दुर्लभ हैं। संभवतः जलमय है^३। ” आदि मध्यावसान में यह ग्रंथ स्तुतिपरक है। भागवतकार का ऐसा मत है कि बुद्धिशाली महापुरुषों में मनुष्य के तत्त्व सत्कथन, ज्ञान, दान, वेदाध्ययन आदि सभी सत्कर्मों का एकमात्र अदाय फल भगवान् का गुणगान करता ही बताया गया है। स्तुति बुद्धि को जनक है। भागवत में लगभग १४० स्तुतियाँ हैं।

श्रीमद्भागवतोक्त स्तुतियों का सारांश -

परब्रह्म परमेश्वर अनन्त, अनादि, अखण्ड और अविनाशी और समस्त भूत प्राणियों के बाहर भीतर अलक्षित भाव से स्थित है। ” वह महामहिम

१- श्रीमद्भागवत ११-२०-३२-३४

२- परिनिष्ठा च पूजया स्तुतिभ्यः स्तवनय्यम । (श्रीमद्भागवत ११-१९-२०)

३- हिन्दी कृष्ण भक्त काव्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव, पृ० ११३ विश्वनाथ शुक्ल

अलङ्कारगति परम पुरुष जगत की स्थिति, और लय रूप लोला के लिए सत, रज, और तम, रूप की तीन शक्तियों का आश्रय लेकर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीन रूप धारण करता है। ब्रह्म का साकार नारायण रूप समस्त अवतारों मूल उद्भव स्थान है जिसे उसने सद् अनुग्रहार्थ धारण किया है। ब्रह्म का जो आनंद भाग निर्विकल्प और अखण्ड तेजोमय निर्गुण स्वरूप वह साकार सगुण रूप से किंचित् भी भिन्न नहीं है वह वस्तुतः अजन्म होकर भी स्वनिर्मित देव तिरियंग मनुष्यादि योनिधियों में स्वेच्छा से शरीर धारण कर धर्म मर्यादा के रक्षा के लिए अनासक्त भाव से विविध कीडारं करता है। समस्त जीव इसकी माया से बराबर जन्म लेते हैं संसार चक्र में भ्रमण कर रहे हैं। किन्तु बुद्धिमान लोग भव रोग निवृत्ति के लिए उस भगवान् की अनन्य भक्ति का आश्रय लेकर अकृतोमय हो जाते हैं। भगवान् की महिमा अनन्त है। उसकी माया के प्रभाव व गुणों का अन्त ब्रह्मा सनकादि नारद तथा स्वयं दशसहस्र फणावली मंडित शेष भी नहीं जानते। पृथ्वी के रज गुणों को गिनना संभव है परन्तु भगवान् के गुणों तथा पराक्रमों की गणना असंभव है। आदि पुरुष नारायण क्रीडार्थ मत्स्य, कूर्म, वराह, ह्य गीव, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बदराम, बुद्ध और कलि के आदि रूप धारण करते हैं। उनके प्रभाव से समस्त लोक में निः शोक होकर उनकी लोलाओं का गान करता है। आनंद प्राप्त करता है। कृष्ण भक्ति साहित्य में जो ईश-वंदना, विनय, प्रार्थना आदि का काव्य है उसमें भी इन्हीं विचारों का समावेश पाया जाता है।

३- नाम महिमा -

समस्त भक्ति-साहित्य में भगवन्नाम की कर्वाँ संचित रूप से आ चुका है। निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप अचिन्त्य है और नाम रूप की अपेक्षा रखता है। मध्य युग के सभी निर्गुण साधकों ने अपने हृदय में उस महान् शक्ति का नाम द्वारा

१- हिन्दो कृष्ण भक्ति साहित्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव- विश्वनाथ शुक्ल,

संकेत किया है, सगुण भक्त तो स्पष्ट ही साकार ब्रह्म के उपासक होने के कारण ईश्वर के नाम का माहात्म्य स्वीकार करते हैं, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में- “ मध्ययुग के भक्तों में भगवान् के नाम का माहात्म्य है बहुत अधिक है । मध्य युग की समस्त धर्म-साधना को नाम की साधना कहा जा सकता है । चाहे सगुण मार्ग के भक्त हो या निर्गुण मार्ग के नाम जप के विषय में किसी को कोई संदेह नहीं । इस अपार भव सागर एकमात्र नाम ही नौका रूप है। ” गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी रामचरितमानस में “ (राम न सकहे नाम गुन गार्ह) कहकर राम का माहात्म्य स्वीकार किया है। महाप्रभु चैतन्य के सम्प्रदाय में नाम संकीर्तन पर अधिक बल दिया गया है। सभी वैष्णव सम्प्रदायों में नाम जप और संकीर्तन को भगवत्प्राप्ति का अमोघ साधन माना गया है। किसी सम्प्रदाय में पंचाक्षर किसी में अष्टाक्षर, किसी में द्वादशाक्षर और किसी में द्वात्रिंशाक्षर मंत्र के जप का विधान है । पुराणों में भी ईश्वर नाम का विस्तृत वर्णन है जिनमें श्रीमद्भागवत और स्कंध पुराण विशेष उल्लेखनीय है ^१ ।

श्रीमद्भागवत पापों को नष्ट करने वाले भगवान् के नाम की महत्ता प्रतिपादित करती है। ब्रह्म हत्यारा, गुरुपत्नीगामी, चोर मद्यक, मित्र द्रोही जैसे पापी भी भगवान् का नाम लेकर तर जाते हैं। भगवान् का नाम लेने मात्र से अजामिल जैसे पापी का उद्धार हो गया । सर्पादि के काटने से, चोट लगने से उदर आदि की पीड़ा से विवश होकर लिया हुआ नाम भी यातना का अन्त कर देता है। तप, दान और जप से भी पापी का पाप दूषित चित्त शुद्ध नहीं होता लेकिन जाने- अनजाने भगवान् नाम के संकीर्तन से वह चित्त भी शुद्ध हो जाता है। भगवान्

१- मध्यकालीन धर्म साधना- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ५

कृष्णाय नम इत्येष मंत्रः सर्वार्थ साधकः भक्तानाम जपतां भूयः स्वर्गमोक्षाफलप्रदः।

(श्री हरिमक्तिरसामृत सिंधु, पृ० ५९ पर पद्म पुराण का वचन)

२- स्कंधपुराण, वैष्णवखण्ड, मार्ग शीर्ष माहात्म्य, अध्याय (११)

नाम के उच्चारण से भगवान् के अनेक दिव्य गुणों का ज्ञान होता है।
सतत् गुणगान करने वाले भक्त के हृदय में सदैव भगवान् रहते हैं।

गुरु महिमा -

भारत के ही नहीं, समस्त विश्व के आध्यात्मिक साहित्य में गुरु को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। वैदिक काल से आज तक गुरु की सर्वोच्चता निर्विवाद है। गुरु अपने ज्ञानांजन की शिला का श्रेय अज्ञान तिमिर से अंध शिष्य के नेत्रों को खोलता है जिसने गोविन्द का ज्ञान प्राप्त कराया वह गुरु है, गुरु ब्रह्मा है, विष्णु है महेश्वर है। किं बहुना साक्षात् परब्रह्म है। ज्ञान गुरु से ही प्राप्त होता है। सभी धर्म सम्प्रदाय एक ही स्वर से स्वीकार करते हैं। श्रीमद्भागवत के अनुसार गुरु भगवान् का ही स्वरूप है, उसे साधारण मनुष्य समझ कर उसकी किसी बात की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए गुरु सर्वदैवमय होता है^१। गुरु को अपना सर्व समर्पित करके रात-दिन उसकी सेवा में संलग्न रहना चाहिए^२। सर्वान्तर्यामी परमेश्वर गुरु-सेवा से जितना तुष्ट होता है, उतना यज्ञ, ब्रह्मचर्य, तप और उपशय आदि किसी अन्य साधन से नहीं होती^३। बिना गुरु की कृपा के मनुष्य को कोई सिद्धि प्राप्त नहीं होती। ज्ञान रूपी दीपक का दान करने वाले गुरु में मनुष्य का भाव देखने वाले मनुष्य के लिए समस्त शास्त्र ?वणजन्य ज्ञान हाथों के स्नान के समान निष्फल है^४।

१-आचार्य मा विजानो नान्नावमन्यते कांहीचित्, नामत्य बुद्धि या सूर्येत् सर्वदैवमयो गुरुः । - श्रीमद्भागवत - ११, १७-२७

२- मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत् मदात्मकम् । - श्रीमद्भागवत , ११-१०-५

३- नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेनवा, तुतमेयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ।

४- यस्यसाक्षाद् भगवत्तिज्ञानदो प्रदे गुरौ, मयसिद्धाः श्रुतः तस्य सर्वं कुंजर शीघ्रवत्।

सत्संग -

बिना सत्संग विवेक न होई, राम कृपा बिनु सुख न सोई ।

मुमुक्षु पुरुष के लिए यह एक अमोघ साधन है । श्रीमद्भागवत के अनुसार स्वर्ग और अपवर्ग का सुख भी सत्संगति के सुख का सामना करने में असमर्थ है । गोस्वामी जी भी इसी पक्ष के आदमी हैं । सांसारिक जीवन के सुख भोग तो क्षण भर के हैं । यह सत्य है कि भव भय से मुक्त होने के लिए सत्संग रामबाण औषधि है । सत्संग का मार्ग ही जन्म मरण हृषी भयंकर व्याधि से छुटकारा दिलाने के लिए सर्वश्रेष्ठ भगवान के पास ले जाता है। बुद्धिमान भक्त भगवान् से सत्संग को ही याचना करता है। महापुरुषों की चरण रज की धारण किए बिना ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त नहीं होता , चाहे कितने ही यज्ञ, तप, दान कर लिए जायें । सत्संग से ही भक्त को भगवान् की शक्ति प्राप्त होती है । सत्संग ही भगवत्प्राप्ति का अमोघ साधन है। अन्य साधन भले ही सफल न हों । विभिन्न युगों में दैत्य, राक्षस, गंधर्व, अप्सरा, स्त्रो, वैश्य, शूद्र आदि ने सत्संग द्वारा ही भगवान् की प्राप्ति की थी । सर्वसाधन हीन निरक्षर गोपियों ने केवल सत्संग जनित भक्ति भाव से परमपद प्राप्त कर लिया था ।

वैराग्य -

“अध्यात्म पक्षा के पथिक को दृढ़ वैराग्य वान होना चाहिए । अपना मनोगत समस्त कामनाओं का प्रमाणिकता से परित्याग करके जब साधक

१- रामचरितमानस ।

२- तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धर्म तुला एक जंग,

तुलन तात । सकल भात जो सुख लव सत्संग । - रामचरितमानस

३- तेषां विवरता पदभ्यां ताथर्नां पावनेच्छया, भातस्य किं न रोचते तावकानां

समागमः, श्रीमद्भागवत ४।३०।३७

अपने से अपने में हा तुष्ट हो आत्माराध होकर स्थित होता है तब उसको स्थितप्रज्ञ कहते हैं^१। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति वही कहलाता है जो इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर अपने वश में कर लेता है।

‘वशे ऽहं मस्य इन्द्रियगणि तस्य प्रज्ञाप्रतिष्ठिता’ (गीता २-६१)

मन जैसी चंचल शक्ति को वैराग्य से ही वश में किया जा सकता है। विषयों से वैराग्य होना भक्ति-साधना की प्रथम आवश्यकता है। ज्ञान और वैराग्य भक्ति के दो पुत्र हैं^२। ज्ञान और वैराग्य प्रेमाभक्ति के साधन हैं। वैराग्य उत्पन्न करने के लिए श्रीमद्भागवत में अनेक उपास्थानों का वर्णन किया गया है। देह गेह में आसक्त पुरुषों को ऊर्ध्वगति संसार का मिथ्यात्व निरूपण धर्म वर्णन प्रकृति पुरुष विवेक का अतीत प्रमुख विषय है। गृह धनादि में आसक्ति रखना कुमति जाव का अज्ञानता है। सांसारिक आकर्षणों में सुख खोजना अज्ञानता का ही लक्षण है। सांसारिक फंफंटों में फंसे रहना दुःख का कारण है। वैहिक सुखों में लिप्त रहने वाले सांसारिक मनुष्य का दयनीय दशा का चित्रण करके भागवत में वैराग्य उत्पन्न करने का चेष्टा की गई है। वैराग्य उत्पन्न करने के तीन साधन अपनाए गए हैं-

(क) रमणी के मोहक रूप का निन्दा

(ख) धन की निन्दा

(ग) मनुष्य शरीर की दुर्लभता

४-महत्संगस्तु दुर्लभो गम्यो मोघरच, सत्संगतलब्धया भक्त्या मयि मां स उपासिता
- श्री मद्भागवत ११।१३ , ११।२५

१- हिन्दो कृष्ण भक्त कवियों पर श्री मद्भागवत का प्रभाव, पृ० १२३

२- अहं भक्तिारतिस्थाता ह्यहं मे तनयो भवति, ज्ञान वैराग्यनाभानौ कालयोगेन
जर्जरौ । - श्री भागवतमाहात्म्य, अ० २ श० ४५

भारतीय-साहित्य में नारी एक और मात्र शक्ति के रूप में पूज्य है। वहाँ उसके मदिर रूप यौवन को अध्यात्म मार्ग की बहुत बड़ी बाधा भी बताया है^१। नारी के इस मादक रूप की ज्वाला से साधक और मुमुक्षु पुरुष को सावधान रहना चाहिए^२। जीव का सबसे बंधन स्त्री है, विश्व में कोई भी पुरुष ऐसा नहीं जो स्त्री की रूप माया से मोहित न हो। स्त्री माया रुपिणी है भगवान् की माया का सबसे प्रबल रूप है। योगी के लिए इसे नरक का हार और तृण से आच्छादित मृत्यु कोप माना गया है^३।

(ख) धन की निन्दा -

धनायं पुरुष को कभी भी भगवान् की प्राप्ति नहीं होती। भागवत में इस भारतीय दृष्टिकोण की अनेक स्थलों पर पुष्टि की है। धनछेनता वैराग्य की जनक है और वैराग्य से भगवत्प्राप्ति होती है। कल्याण का भी पुरुष को अनर्थकारी अर्थ का दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए अन्यथा वह १५ अनर्थों का शिकार होता है। ये १५ अनर्थ हैं- काम, क्रोध, गर्भ, अहंकार, भेद, बुद्धि, बैर, अविश्वास, चोरी, हिंसा, मिथ्या भाषण, पाखंड, स्पर्धा, स्त्री, धृत और मयपान आदि व्यसन। धन मद के कारण ही मनुष्य की सात्त्विकता नष्ट हो जाती है और वह पूर्णतया भगवत-विमुख हो जाता है। अतः अनर्थों के आश्रयों धन में दृष्टि रखना साधक के लिए घातक है।

१-(क) कियत्र हेयं कनकं च कान्ता

(ख) धारं कियेकं नरकस्य नारी (श्री शंकराचार्य कृत प्रश्नोत्तरी)

२- दीप शिखा सम जुवति तन, मन जनि होसि पतंग (रामचरितमानस)

३-योपयाति शनैर्याया मोषिहेवाविनिर्मिता

तायीक्षोतात्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवात्मम् । - श्रीमद्भागवत ६।१८।३९।-४२

४- स्तेयं हिंसानृतं, दम्भः, कामः, क्रोध, स्मयोमदः, भेदवैराग्य विश्वासः संस्पृष्टा व्यसनानि च एतेपंचदशानर्था ह्यमूला यता नृणाम्, तस्मादनर्थमथरिव्यं श्रयो र्थं हस्तस्यजेत् । - श्रीमद्भागवत ११।२३।२३

(ग) मानवदेह को दुर्लभता -

इस विशाल सृष्टि में मनुष्य हो विधाता को सर्वश्रेष्ठ रचना है। “न मानुस्यात श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्” मानव प्राणी इन्द्रियजयी अपने बुद्धि बल और उत्तम ज्ञान से श्रेष्ठ कर्म करने में समर्थ है। मानव योनी कर्म भूमि है और अन्य योनियों भोग योनी । मानव कर्मा का हो शुभ तथा अशुभ फल होता है। चरम पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्ति मनुष्य हो धर्माचरण के द्वारा प्राप्त कर सकता है- इसी कारण मानव देह दुर्लभ और महत्वपूर्ण है। किसी अन्य देहधारी में विवेक और वैराग्य नहीं है। ब्रह्म दर्शन को योग्यता रखने वाले पुरुष शरीर की रचना करके ही परमेश्वर को प्रसन्नता हुई थी अतः मानव देह ही सर्वश्रेष्ठ है। इस दुर्लभ वर देह को व्यर्थ ही नहीं गंवाना चाहिए। परम पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्ति के लिए इसे काम में लाना चाहिए। विषय सुखों को प्राप्त करने में ही इस अमूल्य रत्न को नष्ट करना उचित नहीं, विषयों के सुख तो दूसरी योनियों में भी प्राप्त हो जाते हैं। वैराग्य संसार से तारने के लिए नौका रूप है। बिना ईश्वर कृपा के वैराग्य प्राप्ति संभव नहीं^१। सर, तुलसी में भी यह विचार संस्कृत साहित्य से आया है^२।

श्रीमद्भागवत का वल्लभ सम्प्रदाय अष्टशापो कवियों पर प्रभाव -

“ज्यदेव के समय तक श्रीकृष्ण का रसिक रूप पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुका था। बहुत पहले ही हरिवंश पुराण (लगभग ४०० ई०) श्रीकृष्ण का

१- नूनं मे भगवांस्तुततः सर्वदेवभयो हरिः, येन नोतो दशामेतां निर्वैदरचात्मनः प्लवः

- श्रीमद्भागवत ११-९-१२५

२- बड़े भाग मानुष तनु पावा, सर दुरलभ सब ग्रंथहि गावा ।-रामचरितमानस,

उत्तरकाण्ड

गोपियों के साथ बिहार, हलांश क्रीडा के रूप में चित्रित हो चुका था । कालान्तर में उनका यह रूप अधिकाधिक विकसित होता गया । श्रीमद्भागवत और ब्रह्म वैवर्त पुराण में हम उसका चरम विकास पाते हैं^१। श्रीमद्भागवत में श्री कृष्ण के शरद रास का वर्णन है और जयदेव के गीति गोविन्द में बसंत रास का^२ । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार जयदेव का गीति गोविन्द भागवत परम्परा का ग्रन्थ नहीं है उसकी राधा भागवत में अपरिचित है^३। परवर्ती हिन्दी कृष्ण भक्त कवि जयदेव के गीति गोविन्द और श्रीमद्भागवत के रसिक कृष्ण से प्रभावित हुए । आचार्य शुक्ल के अनुसार मैथिल कोकिल विद्यापति जयदेव से पुरी तरह प्रभावित थे । विद्यापति को अभिनव जयदेव भी कहा गया है ।

विद्यापति (१४०३ ई०)

हिन्दी में कृष्ण काव्य का प्रारम्भ विद्यापति से ही माना जाता है। विद्यापति ने जो वैष्णव भी है शैव भी भक्त भी है। झुंगारी भी अपनी सरस पदावली में राधा माधव के प्रेम विरह और बिहार का वर्णन किया । ये संस्कृत के विश्व प्रकाण्ड पंडित थे । अतः संस्कृत कृष्ण काव्य से पूरी तरह प्रभावित थे । विद्यापति रससिद्ध भावी कवि थे । भागवत वर्णित श्री कृष्ण के मधुर रूप या मुग्ध होकर उन्होंने लोगभाषा में उनकी रूप माधुरी और रसिक क्रीडाओं का चित्रण किया है

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार सब सम्प्रदायों के कृष्ण भक्त भागवत वर्णित कृष्ण की ब्रज-लोला को ही लेकर चले क्योंकि उन्होंने अपनी

१- हिन्दी कृष्ण भक्ति-काव्य पर श्री मद्भागवत का प्रभाव, पृ० १९१

२- विहरति हरिरिह सरस बसति, नृत्पति युवती जनेन स्मं सखी विरही जनस्य दुरन्ते । - गीति गोविन्द, पृ० सर्ग ३-१

३- हिन्दी साहित्य, पृ० १६७

प्रेम लक्षणाभक्ति के लिए कृष्ण का मधुर रूप ही पर्याप्त है। श्रीकृष्ण के मधुर के शौर्य रूप की स्थापना पहले और बाल-रूप की बाद में। नवनीत प्रिय श्रीकृष्ण के बाल रूप की उपासना का प्रचार बाद में श्री बल्लभाचार्य ने किया। कृष्ण की मधुराभक्ति भी बल्लभ सम्प्रदाय में कम महत्व नहीं रखते। हित हरिवंश, हरिदास, चैतन्य निम्बार्क आदि के सम्प्रदायों का मत तो प्रधानतया मधुराभक्ति पर ही आधारित है। स्वच्छंद कृष्णभक्त मीरा और रसखान मधुराभक्ति के ही पोषक हैं। हिन्दी के कृष्ण भक्ति साहित्य में अष्टछाप के कवि विशिष्ट स्थान रखते हैं। अतः उन्हीं के रचनाओं पर श्रीमद्भागवत के प्रभाव का यथाशक्ति निरूपण करेंगे।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी श्री बल्लभाचार्य जी के पुत्र थे। उन्होंने सं० १६०२ अपने पिता के चार शिष्य और अपने चार शिष्यों को मिलाकर आठ भक्त-कवियों की मण्डली बनाई थी जो अष्टछाप के नाम से विख्यात हुई। कृष्ण-लीला गान के लिए अष्टछापी कवियों ने श्रीमद्भागवत को ही अपना प्रधान ग्रंथ चुना। सुना है श्री बल्लभाचार्य श्रीमद्भागवत के जिस प्रसंग की व्याख्या करते थे सूरदास उसी प्रकरण या अनेक ललित मुक्तक पद रच डालते थे। बल्लभाचार्य ने परमानंददास तथा सूरदास दोनों को ही श्रीमद्भागवत की अनुक्रमणिका सुनाई थी और श्रीकृष्ण की बाल-लीला का गान करने का अनुरोध किया था। परमानंददास ने अपने लाल की धार्मिक दुर्दशा का बड़ी मार्मिक वेदना पूर्ण भाषा में चित्रण करके श्रीमद्भागवत को भक्ति-भावना को अपने काव्य का विषय बनाया^१। अष्टछापी कवियों ने जहाँ दशम स्कंधो कृष्ण लीला का

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १२८

२- माघो वाघर बहुत घरी

कहन सुनन को लीला केनी मयादा न टरी

जो गोपिन को प्रेम न होतो, अस भागवत पुरान

तो सब ओघड प्येहि होतो, कथत गयैया गान

- अष्टछाप की वार्ता- सम्पा० द्वारकादास पारीक, पृ० २२

विशेष वर्णन किया वहाँ श्रीमद्भागवत की अन्य कथाओं और आख्यायिकाओं का उपयोग भी भक्ति निरूपण में किया, विशेषकर सुरदास ने अनेक दृष्टान्त और अन्तः कथाएँ श्रीमद्भागवत से ली हैं^१ ।

कुंभनदास (सं० १५२५-१६४०)

जब सुरदास जी वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हुए तो उससे पहले ही कुंभनदास जी गोवर्धन में श्रीनाथ जी की कीर्तन सेवा करते थे । ये विशेषतया मधुराभक्ति में आसक्त थे जिसका आदर्श गोपियाँ हैं । उन्होंने युगल लीला के पदों की रचना की । श्रीमद्भागवत के गोपी-प्रेम ने इन्हें अधिक प्रभावित किया था । कृष्ण रूप के प्रति गोपियों का आसक्ति भाव श्रीमद्भागवत की ही देन है।

(क) नैननि भरि देखो नन्द कुमार ।
ता दिन ते सब भूल गई हो अंग अंग सब हार ॥
बिन देखे हो विकल मई हों अंग अंग सब हारि
- अष्टछाप परिचय, पृ० १०७)

(ख) नैननि टकटकी लागि रहि
नख शिख अंग लाल गिरधर के देखत रूप वही
- अष्टछाप परिचय कुंभनदास काव्य संग्रह, पृ० १०७

(ग) कबहुं देखि हो इन वैखरु नैननि ।
सुन्दर स्याम मनोहरि भूरति अंग अंग सुज दैनन ॥
वृन्दावनि बिलार दिब-दिन प्रति गोप वृन्द अंग नैननि ।
- वहा-

१- हिन्दी कृष्ण भक्त काव्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव, पृ० १९४

श्रीमद्भागवत से यह उदाहरण लिया जा सकता है-

क्विवं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु
 यन्निर्विशत्युत करावपिगृह्यकृत्ये
 पादौ पदं न चलतस्तवपादमूला
 यामा कथं ब्रजमथो करवाय क्विवं^१

श्री भागवत के पद वनितोस्तवपशीलम् का भाव लिए हुए कुंभनदास की पंक्ति देखिए-

कुंभनदास प्रभु गोवर्धन घर, लालन है युवती सुखदाई ।

लीलागान-

(क) कृष्ण षष्ठि तरणि तनया तीर रासमंडल रचो ।
 अधर कल मुरलिका वेणु बाजे ।
 युवती जन जूथ संगं निरत अनेक रंग ।
 निरखि अभिमान तजि काम लाजे ।

० ० ०

(ख) गावत गिरि घरन संग, परम मुदित रास रंग
 उरुपति खमान लेत नागर नागरि
 चरवित ताम्बूल देत, घ्रण ताल गति लेत गिडिगिडिता
 गिडिगिडिता तता थुंग थेई अलाग लागरी

सूरदास (संवत् १५३५-१६२४) -

सूर सबसे अधिक प्रभावित हुए हैं- श्री भागवत से । सूर के यहां कुछ ही उदाहरण दिये जा सकें श्रीमद्भागवत का महत्व प्रतिपादन करते हुए बताया है कि मानव जीवन के लिए भागवत की कथा का श्रवण अनिवार्य है ।

नर ते जन्म पाइ कह कानो
उदर मरयो कूकर सुकर सों प्रभु को नाम न लीनो
श्री भागवत सुनि नहि श्रवननि गुरु गोविन्द नहीं चीन्हो

गीता और वेद के समान ही भागवत को महत्व देते हुए सूर लिखते हैं-

गीता, वेद भागवत में प्रभु यूँ बोले हैं आर्य
जन के निकट सुनियत है सदा रहत हो साथ

वैष्णव धर्म जिसे भागवत धर्म कहा जाता है। अपनी अहिंसा, सात्त्विकता आदि गुणों के कारण मध्यकाल में खूब पनप रहा था । इसका श्रेय श्रीमद्भागवत जैसे समर्थ भक्ति शास्त्र को है । एक स्थान पर स्वयं श्रीकृष्ण के मुख से वैष्णव को श्रेष्ठता का प्रतिपादन इस प्रकार हुआ है-

तुम साक्त वै भगत भागवत राग द्वेष ते न्यारे -

भागवत कथन-

कृष्ण के लीला-गान में सूर ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय सूरसागर में दिया तथापि उनका सूर सागर आदश स्कंधों में समस्त श्री भागवत को ही प्रस्तुत करता है-

श्रीमुख चारि श्लोक दये ब्रह्मा को समुफार्ई ।
ब्रह्मा नारद सौ कहे नारद व्यास सुनार्ई ।

व्यास कहे सुकदेव सो द्वादश स्कंध बनाई ।

सूरदास सोई कहे पदभाषा करि गइ ।

सूरदास ने श्रीमद्भागवत को भवसागर तरनै का साधन बताया है ।

श्रीभागवत सुनै जो कोई ताको हरिपद प्राप्त होई

० ० ०

सुनै भागवत जो चित लाई सूर सो हरि भजि भव तरि जाई

सूरसागर में सूरदास ने श्रीमद्भागवत की प्रायः समस्त कथाओं और अन्य विषयों का वर्णन - “सूर कहै भागवत विचार” अथवा “सूर कह्यो भागवत अनुसारि” इस प्रकार की उपसंहारता के पंक्तियों से किया है- सूरसागर के स्वात्मक संस्करण में प्रमुख कथाएँ ये हैं-

प्रथम स्कंध -

सूत शौनक संवाद, श्रीकृष्ण द्वारका गमन, धृतराष्ट्र वन गमन, अर्जुन का मथुरा से शोक समाचार लेकर लौटना, परीक्षित जन्म, पाण्डवों का परीक्षित को राज्य देकर स्वर्गारोहण, परीक्षित का दिग्विजय, परीक्षित शृंगी कृषि का शाप, परीक्षित शुक समागम ।

द्वितीय स्कंध -

विराट रूप वर्णन भगवत्भक्ति को प्रधानता का निरूपण भगवान के लीलावतारों की कथा ।

१- ००००००० कृष्ण भक्त कवियों पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव, पृ० १९८

तृतीय स्कंध -

उद्धव और विदुर की भेंट, मैत्रेय विदुर संवाद, ब्रह्मा की उत्पत्ति बराहवतार कथा, जय विजय कथा, हरिण्याज्ञा वध, कदमं देवहूति कथा, कपिल देव का अवतार, देवहूति कपिल संवाद ।

चतुर्थ स्कंध -

सती और दक्ष की कथा, ध्रुव कथा, पृथु कथा, पुरंजनोपाख्यान।

पंचम स्कंध -

ऋषिदेव की कथा, जडमरत और रहूगण संवाद ।

षष्ठ स्कंध -

अजाभिलोपाख्यान ।

सप्तम स्कंध -

वृसिंह अवतार कथा (प्रह्लाद चरित)

अष्टम स्कंध -

गजग्राह कथा, समुद्र मंथन और देवासुर संग्राम कथा, मोहिनी अवतार कथा, वाभनावतार कथा, मत्स्यावतार कथा ।

नवम स्कंध -

पुरुखा की कथा, च्वन और सुकन्या की कथा, बलराम खेती विवाह, राजा , राजा अम्बरीश का कथा, सौभरि ऋषि की कथा, गंगावतरण कथा, श्रीराम कथा, परशुराम कथा ।

दशम स्कन्ध -

भागवत के दशम स्कन्ध में श्री कृष्ण लीला का सांगोपांग वर्णन है जो अत्यन्त विस्तृत है। कृष्ण भक्ति युक्त ग्रन्थों से भी सूर ने कृष्ण विषयक सामग्री लेकर पद लिखे हैं। उदाहरणार्थ सूरसागर के दशम स्कन्ध में श्री कृष्ण द्वारा श्रीधर ब्राह्मण के अंग भां को कथा^१ है जो भागवत् में नहीं है। सूरदास को कृष्णलीला का स्फुरण हुआ था। अतः उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा तथा कल्पना द्वारा भागवत की कृष्ण लीला को मनोहर रूप में प्रस्तुत किया है। सूर के कथनानुसार दशमस्कन्ध का वर्णन ईश्वर का ध्यान करके मौलिक रूप में वर्णित किया है।

एकादश स्कन्ध -

नर-नारायण अवतार कथा, ह्सावतार कथा

द्वादश स्कन्ध -

परीक्षित को परमपद प्राप्ति ।

(दशम स्कन्ध पूर्वार्ध)

भागवतोक्त विश्लेष तत्त्व (विविध कृष्ण लीलाओं का गान)

सूरदास ने भागवत के दशम स्कन्ध की निम्नलिखित कृष्ण लीलाओं का गान किया है। कृष्ण प्रादुर्भाव, गोकुल में जन्मोत्सव, पुतनावध, शकटासुर वध, वृणावर्त वध, नामकरण, शिशु-क्रीडा, माखन-बोरी, उल्लूखल-बंधन, यमला-

१- सूरसागर , पद संख्या ६७५

जुनोद्धार, वृन्दावन प्रस्थान, गोचारण वकासुर वध, अघासुर वध, ब्रह्माकृत गोप बाल एवं गोवत्सहरण, धेनुक वध, कालियदमन, दावानल पान, प्रलम्ब वध, चीर हरण, यज्ञ-पत्नियों पर अनुग्रह, गोवर्धन पूजा तथा गोवर्धन धारण, हन्ड कृत कृष्ण स्तुति तथा कामधेनु कृत कृष्णाभिषेक, वरुण बंधन से नंद का मोचन, रास-लीला (श्री कृष्ण का अन्तर्धान होना) गोपिका गीत रास नृत्य तथा जल-क्रीडा (विधाघर शापमोचन, वृन्दावन विहार एवं वेणुवादन, शंख चूड़ वध, केशि-वध व्योमासुर वध, अकूर ब्रजगमन गोपिकाओं के उद्दिग्धता, अकूर कृत कृष्ण स्तुति , मथुरा गमन, रजक वध, धनुर्भाग, कुवल्यापीड वध, मल्ल एवं कंस वध, वसुदेव मिलन , यज्ञोपवीत, गोपी विरह, उद्धव ब्रजगमन, भ्रमरगीत, उद्धव प्रत्यागमन, अकूर गृह गमन।

दशम स्कंध उत्तरार्ध-

कालिय वन दहन, छारका प्रवेश, रुक्मणि पत्र प्राप्ति, कृष्ण रुक्मणि विवाह, मोमासुर वध तथा कल्पवृक्ष आनयन, रुक्मणि परीक्षा, प्रथुम्न विवाह, अनिरुद्ध विवाह, नृग उद्धार, बलराम ब्रजगमन , पौड्क वध, सुदक्षिणा वध, द्विविध वध, साम्ब विवाह, नारद संशय, जरासंध वध, राजाओं की प्रार्थना, पाण्डव यज्ञ शिशुपाल वध, पांडव सभा दुर्योधन का अपमान, शात्व वध, दन्तवक्त्र वध, सुदामा ब्राह्मण पर अनुग्रह, कुरुक्षेत्र में गोपियों से मिलन, देवकी पुत्र आनयन सुभद्रा हरण और अर्जुन सुभद्रा विवाह जनक और श्रुतदेव पर अनुग्रह, वेदस्तुति, शम्भु मोचन, (मस्यासुर वध) भृगुकृत त्रिदेव परीक्षा, अर्जुन को स्व स्वरूप का दर्शन एवं शंख चूड़ के पुत्रों का महाकाल पुत्र से आनयन ।

इस प्रकार सूरदास श्रीमद्भागवत से वर्णित कृष्ण लीला का पूर्ण वर्णन किया है । जिन स्थलों पर उनका पन अधिक रम गया है, उनका पर्याप्त विस्तृत वर्णन किया है। इनमें कृष्ण जो के 'केशीय लीलाएं' उल्लेखनीय है । कहो-कहो

तो सूर ने भागवत के श्लोकों का ही पूर्ण अनुवाद अपनी पदावली रूप में प्रस्तुत कर दिया है। देखिए निम्न पद परस्पर कितने साम्य रखते हैं-

सूरदास-

आनन्दे आनन्द बढ़्यौ अति ।
 देविनि दिवि दुन्दभौ बजाई सुनि मथुरा फाटे यादवपति ।
 विधाधर किन्नर क्लोल मन, उपजावत मिलि कंठ अमित गति ।
 गावत गुन गन्धर्व पुलकि तन, रचति सब सुरनारि रसिक अति ।
 वरषत सुमन सुदेश सूर सुर, जय जयभार करत मानत रति ।
 सिव विरंचि इन्द्रादि अमर मुनि, फूले सुखे न समात सुदित मति^१ ।

श्रीमद्भागवत-

मनांस्यासन्प्रसन्ननि साधुनामसुरद्वहम् ।
 जायमाने जने तस्मिन्ने दुर्दन्दुभयो दिवि-
 जगुः किन्नर गंधर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ।
 विधाधर्यश्च ननृतुरप्सरोग्भिः सयं तदा ।
 मुमुचर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः^२
 मन्दं मन्दं चत्वरं जार्जुरनुसागरम्

तृणावर्त प्रसंग में-

सूरसागर-

अति आनन्द आंगन में ठाढ़ी, गोद लिर सुत सारंगपानी ।
 तृणावर्त की सुरति आनि जिय पठ्यौ असुर कंस अभिमानी ।

१- सूरसागर, पद संख्या ६२४

२- श्रीमद्भागवत, १०, ३-५-७

गरु भये महि में बैठार, सहि न सका जननी अकुलाना ।
 आपुन गर्ह भवन में दौरी, कहु एक काज रहो लपटानो ।
 बौंठर महाभयावन आयी, गोकुल सबै प्रलय करि मानो ।
 महादुष्ट ले उडयो गोपालहि चत्यो अकास कृष्ण यह जानी^१ ।

श्रीमद्भागवत -

एकदारोहमारुढं लाल यन्ति सुतं सती ।
 गिरिमाणं शिशोर्पोढं न सेहे गिरिकूटवत् ॥
 भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता ।
 महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ॥
 दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंस भृत्यः प्रणोदितः ।
 चक्रवात स्वहपेण जहारासोनमर्मकम् ॥
 गोकुलं सर्वथावृण्वन्मुष्णंश्चक्षुषि^२ रेणुभिः
 हरयन्सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः^३ ॥

जन्मोत्सव के प्रसंग में-

सूरसागर-

ब्रज भयी महर के पूत यह जब बात सुनी ।
 ० ० ०
 सुनि घाई सब ब्रज नारि, सहज सिंगार किए ।
 तन पहिरे नूतन चोर, काजर नेन दिए ।
 किस कंकुकि तिलक लिलार, सोभित हार दिए ।
 कर कंकन कंवन थार, मंगल सब साज लिए
 सुभ स्रवननि तरल तरौव बैनी सिथिल गुह्य
 सिर वरषत सुमन सुदेह, मानो मेघ फुही

१- सूरसागर, पद ६१६

२- श्रीमद्भागवत, १०, ७, १८, २१

३- सूरसागर पद ६४२

ब्रजलोला के सभी उपकरणों वृन्दावन, यमुना, गोवर्धन, गोरं,
गोप बालक, नन्द, यशोदा आदि भगवतोक्त स्वरूप सूर ने ग्रहण किया ।

श्री कृष्ण को रूपसब रूपमाधुरी -

श्रीमद्भागवत में श्री कृष्ण सौन्दर्य के लिए कहा गया है कि समस्त
सृष्टि के सौन्दर्य को एक स्थान पर एकत्रित करके ही उसका कुछ आभास पाया
जा सकता है। इसी आधारभूत धारणा को लेकर सूर ने कृष्ण को रूपमाधुरी का
वर्णन किया है-

वर्ण- नील जलद अभिराम स्याम तनु, निरखि जननि दोह निवट बुलार

जंग-विन्यास- बंधुक सुमन अरुन पद पंकज , अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए ।

गुण माहात्म्यासक्ति-

हम तो दुंह भांति फल पायो

जो गोपाल मिले तो नो कौ, नतरु जगत जस दायो ।

कहं या या गोकुल के गोपो, बरन हीन घटि जाति ।

कहं वै श्री कमला के वल्लभ , मिलि बैठि एक पांति ।

निगम ज्ञान मुनि ध्यान अगोचर, ते भये घोष निवासी ।

ता ऊपर अब कहौ देखि धौं मुक्ति कोन के दासा ।

इपासक्ति -

सूर ने गोपियों का कृष्ण के प्रति इपासक्ति का विस्तृत तथा
विशद वर्णन किया । इसके वैविध्य तथा गंभीरता , एकनिष्ठता का अनुमान करना
कठिन है-

कठिन है ।

अलिहों कैसे कहीं हरि के रूप रसहिं
अपने तन में भेद बहुत ० विधि , रसना जानें न नेन दसहिं
जिन देखे ते आहिं वचन बिनु, जिनहिं वचन दरसन न तिसहिं
बिनु बानो ये उमंगि प्रेन जल, सुमिरि सुमिरि वा रूप जसहिं
बार बार पछितात यह कहि, कहा करो जो विधि न बसहिं
सूर सकल जगनि को यह गति, क्यों समुझावै रूप पसुहि^१

तन्मयासक्ति-

रहति रैन दिन दिन हरि हरि रह हरि रट
चितवति द्रष्टक भग चको सौ जबतें तुम विछुरे नागर नट ।
भरि भरि नेन नीर ठारति हैं सजल करति अति कंचुकि के पट
मनहुं विरह को विज्जुरता लागि, लियो नेम सिव सोस सहस घट
जैसें जब के अग्र ओस कन, प्रान रहत ऐसेहि अवधिहिं तट ।
सूरदास प्रभु सिलहुं कृपा करि, जे दिन कहै तेउ जाये निकट ।^२

परमविरहासक्ति-

श्रीमद्भागवत में वर्णित गोपी-विरह से प्रेरणा लेकर सूरदास ने गोपियों को परमविरहासक्ति ऐसा श्रेष्ठ चित्रण किया जो विश्व साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। गोपियों द्वारा लोक-लब्धा का त्याग, तात संयोग की सुखद स्मृति और विरहाग्नि की तीव्रता का श्रीमद्भागवत में उल्लेख^३ है। सूर का एक

१- सूरसागर , पद ४१५२

२- वही- पद ४७३९

३- श्रीमद्भागवत, १०-३९-१९-३१

उदाहरण देखिए-

अनल ते विरह अग्नि अति ताती ।

० ० ०

न्याहहि नागरि नारि विरह बस, जरत दिया ज्यों बाती ।

जे जरि मरी प्रगट पावक परि, ते जिय अधिक सुहाती ।

ढरति नोर नयननि भरि भरि सब, व्याकुलता मदमातां ।

सूर विधा सोई पे जानै, स्याम सुभग रंग राता^१ ।

सूर ने श्रीकृष्ण का वेणुमाधुरी और उसके लोकोत्तर प्रभाव का वर्णन किया है। मुरली को देखकर गोपियाँ ईर्ष्या से जल सी जाती हैं। श्रीमद्-भागवत के वेणुगात और युगल गात विशेष कर सूर के प्रेरणा के स्रोत हैं। उदाहरण देखिए-

मुरली हम पर रोष मरी

अंस हमारी आपुन अंचवत नैकहूँ नाहि डरी ।

० ० ०

ऐसी ठोठि टरी न उहां ते जिउ हम रिसनि मरी ।

यह तौ कियो अकाज हमारी अब हमें जानि परी^२

रास-लोला-

सूर ने श्रीभागवत रासपंचाध्यायों का विशद वर्णन किया है। परन्तु सूर के वर्णन में भागवत के रास वर्णन से कुछ वैशिष्ट्य भी हैं जो अन्य ग्रन्थों के प्रभाव का प्रतीक है। सूर ने रास को राधा-कृष्ण के गंधर्व विवाह के रूप में चित्रित किया है-

१- सूर सागर, पद संख्या ३५८१

२- -वहो- पद संख्या १८६०

जाकौ व्यास वरनत रास

है गंधर्व विवाह चित्त दै सुनौ विविध विज्ञास आदि^१ ।

इसालिए रासमंडल के मध्य एक प्रमुख गोपा के रूप में प्रतिष्ठित किया है। कथा-क्रम, भावना, रासारम्भ, कृष्ण का अदृश्य होना, गोपिका-गात तथा महारास आदि सब श्रीमद्भागवत के अनुसार ही है। उदाहरणार्थ-

सूरसागर-

सरद निशि देखि हरि हरष पायो

विपिन वृन्दा रमन, सुभग फूले सुमन, रास रुचि श्याम मनहि आयौ^२

श्रीमद्भागवत-

भगवानपि ता रात्रिः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः

वीक्ष्य रन्तु मनश्चक्रे योगमायायुपाश्रिता^३

३- परमानन्ददास - (संवत् १५५० - १६४१)

पुष्टि सम्प्रदाय में परमानन्द दास जो को रचनाओं एवं स्वयं गोसागर को उपाधि से विभूषित किया गया था^४। सागर शब्द श्रीमद्भागवतवाचो है जैसाकि श्री चारदास पारास ने वर वार्ता एवं वर भक्त पुरुषोत्तम सत्सनाम के श्लोक के आधार पर बताया है^५। वार्ता में आया है- "जो अनुक्रमणिका द्वारा श्रीभागवत रपा समुद्र श्री आचार्य जो महाप्रभु ने परमानन्ददास के हृदय में

१-सूरसागर, पद १६८९

२-श्रीमद्भागवत १०.१०.४००६ २- -वला- पद १६१६

३-श्रीमद्भागवत १०.१०.४००६ ४-श्रीमद्भागवत १०.१०.४००६ ५-श्रीमद्भागवत १०.१०.४००६

६-श्रीमद्भागवत १०.१०.४००६ ७-श्रीमद्भागवत १०.१०.४००६ ८-श्रीमद्भागवत १०.१०.४००६

३- श्रीमद्भागवत, १०, २९-१

४- अष्टकाप(सं० १६९७ को वार्ता और

भाव प्रकाश)सं० कंठमणि शास्त्री, पृ० १४३

घरयाँ ।^१ इस उदाहरण से ज्ञात होता है कि परमानंददास जी ने कृष्ण-लीला के ही पदों का गान किया था । पुष्टि-सम्प्रदाय के अनुसार परमानंददास जी ने भागवतोक्त प्रेमभक्ति को कृष्ण की चार अवस्थाएँ बाल, कुमार, पोगंड और किशोर लीला के माध्यम से अपनी भक्ति तथा श्रद्धा का प्रतिपादन किया था। बाल-लीला के गान से स्नेह, कुमार लीला गान से आसक्ति तथा पोगंड लीला के माध्यम से व्यसन तथा किशोर लीला के गान से तन्मयता प्राप्त होता है। उन्होंने प्रमुखतः भागवतोक्त कृष्ण लीला तथा गोपी-प्रेम को ही हृदय से ग्रहण कर उसका भक्तिपूर्वक प्रतिपादन किया है। परमानंददास को सागर का उपाधि दी गई है। इसका प्रमाण निम्न गीता का श्लोक है-

ह्यवैशिताचिनेन श्रीभागवतसागरात्
समुद्धृतानि नामानि चिंतामणिनिभानि हि ।

लीलागान-

१- बाल-लीला (जन्म से ढाई वर्ष अवस्था तक)

परमानंददास जी ने इसके अन्तर्गत कृष्ण जन्म, जन्म-महोत्सव, नामकरण, उलूखल बन्धन, मृत्तिका भक्षण, माखन-चोरी आदि भागवतीय लीलाओं का वर्णन किया है। सर्वत्र कवि कृष्ण के परब्रह्मत्व को नहाँ भूना है, प्रत्येक पद में ब्रह्मत्व का संकेत अवश्य मिल जाता है। उदाहरण देखिए-

बालविनोद गोपाल के देखत हो भावै ।

प्रेम पुलकि आनद भरि जसुमति गुन गावै ।

२-परमानंद सागर भुजिका में श्री परीख का लेख, पृ० २

३- अष्टकाप- संपादक कंठमणि शास्त्रा, पृ० १०१

बाल समेत धन सांभरौ आगन में धावै ।
 बदन चुमि गोद लिथो सुत जानि खिलावै ।
 सख विरंचि मुनि देवता जाको पार न पावै ।
 सो परमानंद ग्वाल को हंसि भलो मनावै ।

गोपियों के कृष्ण लाला-गान सम्बन्ध निम्नांकित पद का आधार
 भागवत का एक श्लोक जो पद के साथ नीचे दिया जा रहा है-

हरिलोछा गावत गोपाजन, आनंद में निसिदिन जाई ।
 बालचरित्र विचित्र मनोहर, कमल नैन ब्रज जन सुखदाई
 दोहन मंडन अंडन लेपन मंडन गृहसुत पति सेवा
 चारि याभि अवकास नहां पत सुभिरत कृष्ण देव देवा
 भवन भवन प्रति दीप विराजत कर कंकन नूपुर बाजे ।
 परमानंद घोष कौतुहल निरखि पाति सुरपति लाजे ।

श्रीमद्भागवत-

या दोहने वहनने मथनोपलेपप्रलेखनाभिरेणदितोक्षाणामार्जनादौ
 गायन्ति चैनमनुरक्तधियो ऋकण्ठयोधन्या व्रजस्त्रिय उरक्रमच्चित्तयानाः ।।

परमानंददास का विस्तृत परिचय पिछले अध्यायों में दिया जा चुका
 है। अतः यहां केवल उनका रचनाओं के संकेत-मात्र दिए जा रहे हैं जिनका श्रीमद्-
 भागवत से विशेष सम्बन्ध है ।

२- कुमार लाला (द्वार्षिक वर्ष से लेकर पांच वर्ष की अवस्था तक)

इसके अन्तर्गत कवि ने गोचारण भुरला, वादन तथा श्रीकृष्ण का

१- परमानंद सागर, पद ८०

२- -वही- पद ८१

३- श्रीमद्भागवत, १०, ४४, १५

वेशभूषा सौन्दर्य आदि का चित्रण किया है^१। यहां केवल इतना संकेत मात्र पर्याप्त है। उपरोक्त विषयों का वर्णन कवि भागवत के अनुसार ही किया है।

३- पौगण्ड लोला-(पांच वर्ष^१ से नौ वर्ष^२ की अवस्था तक)

इसके अन्तर्गत कवि ने चौर-हरण, गोवर्धन-धारण, इन्द्र का मान भंग आदि का वर्णन भागवत के अनुसार ही^३ है।

४- किशोर लोला - (नौ वर्ष^१ की अवस्था से ग्यारह वर्ष^२ की अवस्था तक)

इसमें कवि ने वेणुबादन तथा रास-लोला का वर्णन किया है। यह भागवत अनुकूल शरद रास है, है, उदाहरण देखिए-

रासमंडल में अन्यो भायो गति में गति उपजावै हो

० ० ०

शरद विमल निसि चन्द्र विराजत क्रीडत जमना बूलै हो

परमानंद स्वामी कौतूहल, देखत सूर नर भूलै हो ॥

कवि ने भागवत को प्रेम लक्षणा भक्ति की हो अपना आदर्श माना^३ है। इसके अतिरिक्त कवि भगवन्नाम माहात्म्य ब्रजमाहात्म्य आदि का वर्णन करना भी नहीं भूला है।

१- परमानंद सागर पद ११९-१२०-१२२

२- -वहा- पद २७२ से २८९ तक

३- परमानंददास गोपिन का प्रेम कथा सुक व्यास कहौ रो । - परमानंददास पद ४२१

(४) कृष्णदास- (संवत् १५२६-१९३६)

कृष्णदास ने भागवत को गोपा जनों की मधुरामक्ति को विशेष रूप ग्रहण कर राधाकृष्ण की रास और निकुंज लीला का वर्णन किया^१। उनके काव्य मधुर भावितरस प्राधान्य होते हुए भी कृष्ण की अन्य लीलाओं, कृष्ण का अलौकिक रूप मधुरा, कृष्ण का परब्रह्मत्व आदि विषयों का वर्णन पाया जाता है। उन्होंने भी भागवत के अनुसार ही इन्होंने अपने इष्टदेव का वर्णन किया है। कुछ उदाहरण देखिए-

१- लीलागान-

(कृष्ण जन्मोत्सव)

नाचत गोप कुमकुमा क्षिरकरा दैत अखिल नग पांति ।

बरषत कुसुम निकर सुरनर मुनि ब्रज जुवतो मुसकात^२ ।

(तुलनीय श्रीमद्भागवत १०-५)

२- गोवर्धन धारण तथा इन्द्रमान भंग -

जय जय लाल गावर्धनधारी इन्द्रमान भंग कीनों ।

बाम बाहु राख्यो गिरि नायक , दासन को सुख दोनों ।

सात दिवस सुरपति पचि हारयो, गोसत संगे न मनौ ।

कृष्णदास स्वामी मोहन के पाये परयो मति होनों ।

३- रासलीला -

रास रस गोविन्द करत विहार

सुर सुता पुलिन रम्य मंह फूल कुंद मंदार-

१- डा० दीनदयाल गुप्त- अष्टाक्षर और वल्लभ सम्प्रदाय, प्रथम खण्ड, पृ० २५१

२- अष्टाक्षर परिक्रम कृष्णदास काव्य संग्रह, पृ० २२६

५-गोविन्द स्वामी (१५६२-१६४२)

पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित होने के उपरान्त उन्होंने विट्ठलनाथ जी के व्याख्यानों से श्रीमद्भागवत का ज्ञान प्राप्त किया । उनकी भक्ति सखा भाव का थी^१ । इनके रचित ५७५ प्रकीर्ण पदों का संग्रह अथावधि सबसे बृहत्संग्रह कांक्रोला में प्रकाशित हो चुका है। इन पदों में भागवतीय कृष्ण-लोला, कृष्ण की रूप-माधुरी, कृष्ण के परब्रह्मत्व और गोपा-प्रेम के प्रमुख वर्णन के अतिरिक्त सामान्य भक्ति तत्त्वों, यथा भक्ति के श्रेष्ठत्व गुरु-महिमा आदि का भी वर्णन है । इसके अतिरिक्त पुष्टि सम्प्रदाय में वर्णित वर्षा^२त्सव श्रीमद्भागवत पर आधारित है, इसका वर्णन भी गोविन्द स्वामी ने किया^३ है ।

लोलागान -

कृष्ण-लोला और उनके उपकरणों में गोविन्द स्वामी ने बाल-लोला, गोप-सखाओं के साथ विविध क्रीडाओं, गोचारण, वन भोजन, यशोदा-वात्सल्य, वेणु-वादन, गोपियों की व्रत चर्या, रास-क्रीडा, गोवर्धन धारण, षड्भक्त विहार, यमुना और ब्रज माहात्म्य का वर्णन किया है। यहां केवल उन्हीं पदों का उदाहरण दिया जा रहा है जो भागवत श्लोकों से मेल खाते हैं ।

रास-लोला प्रसंग

अहो पिय कैसें कै धरत मृदुल चरन धरनि -

गिरि का कांक्रो अति कठिन नून अंकुर रसनाधर ।

प्रियदर्षि जियहि सुधि करि करि छतियां जरनि ।

सरसि सुजात गरम की श्रिय सुसत हमारे कठिन उर सहसा ही न
धरि सके डरनि ।

१-डा० दीनयाल गुप्त- अष्टकपा और वल्लभ सम्प्रदाय, प्रथम खण्ड, पृ० २६९

२-गोविन्दस्वामी- साहित्यिक विश्लेषण वार्ता और पद संग्रह, भूमिका, पृ० १०

श्रीमद्भागवत -

- (क) यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहस्तनेषु पीताः शङ्खः शनैः प्रिय दधमिहि
कक्षेषु ।
तेनाटवोयसि तदव्यथते न किंस्वत कूर्पादिपिप्रमनि धार्मवदापुषां नः^१
- (ख) शरदुदाशये साधुजात सत्सरसिजोदरश्रीमुषा^२ दृषा^३ ।

वेणु माधुरी के युगल गीत के प्रसंग में-

बेनु बाजत री मोहन कल ।
बाम कपोल बाम मुज पर धरि वलगितमुख रस चपल^३ द्रुगंचल ।
सिन्दुरारुण अधर सुधारस पुरत रन्ध्र मृदुल अंगुली दल ।
मोहत व्योम विमान वनिता खसित नोवी सुध्यौ न अंचल^५ ।

६- क्लृप्त स्वामी (संवत् १५७३-१६४२)

भागवत माहात्म्य एवं प्रामाण्य-

इन्होंने श्रीमद्भागवत एवं श्रीकृष्ण लोला के उपकरण यमुना, गोवर्धन,
गोकुल आदि का माहात्म्य गाया है-

३-गोविन्द स्वामी , पद संग्रह, पद ३५७

१-श्रीमद्भागवत, १०-३१-१९

२- -वहा- १०-३१-२

३- गोविन्द स्वामी , पद ४२०

४- -वहा- पद ४२०

५- -वहा- पद ४२१

जब लगि यमुना गाई गोवर्धन गोकुल गाऊं गुसाई
जब लगि श्री भागवत कथारस तब लगि कलि जुग नाई^१।

अपने गुरु श्री विट्ठलनाथ जी को स्तुति में उनके भागवत ज्ञान को चर्चा करते हुए श्रीमद्भागवत को वेदवाणी कहा है-

गो बनो जु वेद को काह्यत श्रीभागवत भले अबगाही^२

क्षीत स्वामी ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि श्री विट्ठलनाथ ने मुझे अन्य मार्ग छोड़ भक्ति मार्ग में रुचि दिलाई और भागवत के अनुसार भगवान् स्वस्वार्पण करने की शिक्षा दी ।

अपथ मार्ग तजि भक्ति मार्ग रुचि श्री गिरिबर घर दई दिखाई^३
तन मन प्रान समर्पन कीनों श्री भागवत विधि नई सिखाई^३

क्षीत स्वामी ने भागवतोक्त सामान्य भक्ति तत्त्वों में से विशेषकर गुरु-महिमा को ग्रहण किया है और अपने गुरु को तो ईश्वर कल्प ही माना है। इन विशिष्ट तत्त्वों में उन्होंने विविध कृष्ण-लोलाओं, श्रीकृष्ण की रूप माधुरा, श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व और गोपी-प्रेम का वर्णन किया है । इनके युगल लाला के पद राधावल्लभाय सम्प्रदाय के भक्त कवियों के पदों के समान ही हैं ।

लोलागान -

क्षीत स्वामी ने कृष्ण की गोचारण, वन-भोजन, बसन्त-लोला, व्रज बिहार, वेणुवादन और रास-लोला का वर्णन किया है। इसका रास वर्णन भी भागवत के महारास को भाँति शरददास को भाँति है ।

१- क्षीतस्वामी बोनो और पद संग्रह, पद ४२

२- -वही- पद ३७

३- -वही- पद १८८

(क) मुकुलित बकुल मधुप कुल कूजे प्रफुलित कमल गुलाब फूले ।

आ६ जुवति जुथ रासमंडल खेलत स्याम तरनिजा कूले^१ ।

गौचारण से ब्रजागमन -

आवै माह नंदनंदन सुख दैनु ।

संध्या समै गोप बालक नंग आगे राजत धेनु ।

गोरज मंडित अलक मनोहर, मधुर बजावत बैनू ।

हरि विधि घोष मांफ हरि आवत सबको पन हरि लेनू-।

(तुलनीय श्रीमद्भागवत १०, २१, ७)

क्षीतस्वामी ने कृष्णालीला के उपकरणों गोओं, वृन्दावन, यमुना और गोवर्धन का माहात्म्य भी भागवत के अनुसार अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है।

गौपा प्रेम -

इन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति रूपासक्ति, तन्मयासक्ति आदि का उल्लेख किया है। श्रीकृष्ण का मुरली माधुरी का प्रभाव मा. अपने लेखों द्वारा दिखाएं।

जिना न रह पाए हैं-

तन सृष्टि मूलि गर्ह भोदो जय , कहति हों त असों सांचो ।

भन हरि तिथा नंद के नन्दन, तिवनि म भिं बिदगने ।

जा दिन तैं मेरा इष्टि पर सखि, तब ते रह्यो न जावे ।

१- कृत स्वाभो के जावना और पदसंग्रह , पद ३

3-

-वश-

पद १२०

ऐसी है कोउ हितु हमारी, क्षीत स्वामी सों मिलाव^१ ।
 (ख) ऐसी को नार जो देखत वृत्त ते न टरै मेरे जीवन मूली^२ ।

तुलनीय श्रीमद्भागवत १०, २९-४०

चतुर्भुजदास (संवत् १५८७ - १९४२)

इन्होंने अपने पदों में कृष्ण के जन्म से गोपी विरह तक की ब्रज-लोलारों का वर्णन किया है^३। इनका रचना में कृष्ण की बाल-लोलाला, विनय और विरह-भावना के पदों की अधिकता है^४। सामान्य भक्ति तत्त्वों में इन्होंने गुरु-महिमा का वर्णन किया है और अपने गुरु गोसाईं विट्ठलनाथ जो को भगवान् के समान माना है^५। कृष्णलाला में विशेषकर इन्होंने बाल-झिड़ा, माखन-चोरी, वन-भोजन, गोचारण और रास झिड़ा का उल्लेख किया है। श्रीकृष्ण को रूप-माधुरी, वेणुमाधुरी और गोपी-प्रेम भी इनके प्रिय विषय हैं^६। यहाँ पर हम संक्षिप्त रूप में हो उनके पदों के उदाहरण दे रहे हैं। विशेष रूप से वही पद जिनकी तुलना श्रीमद्भागवत से हो सकती है। वैसे तो सभी अष्टाक्षरी कवियों ने लगभग अपना समस्त काव्य भागवत के अनुसार ही रचा है।

१- लीलाथान - माखन चोरी -

घर घर डोलत माखन खात

ग्वाल बाल सब सखा संगे लिए सुने भवन घांसि जात

१-क्षीतस्वामी जीवन, पद संग्रह, पद १००

२- -वहा- १२१

३- अष्टाक्षर परिचय, पृ० २७५

४- डा० दानदयाल गुप्त- अष्टाक्षर परिचय और बल्लभ सम्प्रदाय, प्र०खण्ड, पृ० २६३

५- -वही- पृ० १०१, १०२

६- अष्टाक्षर परिचय- चतुर्भुजदास- काव्य संग्रह, पृ० २७६-२९६

जब ग्वालिन जल भरि घर आई तबहि भजे मुस्कात^१
 चतुर्भुज प्रभु गिरधरनलाल सों नाहिन कबू बसात^१
 (द्रष्टव्य श्रीमद्भागवत १०-८)

वन-भोजन-

सुन्दर सिला खेल की ठौर
 मदनगुपाल जहाँ मधि नायक, चहँ दिसि सखा मंडली जौर ।
 बाँटत छाक गावर्धन ऊपर, बहुविधि कानन बैठे ठौर ।
 हंसि हंसि भोजन करत परस्पर चाखि चाखि लै अरोगत कौर ।
 कबहुँक बोलि गिरि के सिखर पर लै लै नाम धूमरी धौर ।
 चतुर्भुज प्रभु लीला रस रोभै, श्री गिरधरनलाल रसिक सिरमौर^२ ।
 (द्रष्टव्य श्री भागवत १०-१३-११)

रास-लीला-

प्यारी भुज ग्रीवा भेलि नृत्यत पीय सुजान,
 मुदित परस्पर लेत गति मे सुगति, रूपरासि राधे गिरिधरन गुननिधान ।
 सरस मुरली धुनि सों मिले सप्त सुर रासरंग मीने गावँ और तान बंधान ।
 चतुर्भुज प्रभु स्याम स्याम की नटनि देखि मोहे मृग लग अरु थक्ति^३
 व्योम विमान ।

(तुलसी तुलनीय श्रीमद्भागवत १०, ३३)

१- अष्टाक्षर परिचय- चतुर्भुजदास काव्य-संग्रह, पृ० १६

२- -वही- पद २२

२- -वही- पद ५६

रूप-माधुरी-

आजु कौ सिंगार सुभग सांवरे गोपाल कौ कहत न आवै देखे हो बनि आवै
मकर कुंडल तिलक माल कस्तूरी अति रसाल, चितवनि लोचन विसाल
काम कों छजावै

कंठ श्री वनमाल, फौरा कहि अति उताल, कवि निरखत त्रिभुवन तिय
धीरज मन न लावै ।

चतुर्भुज प्रभु गिरिवरधर नरसिख सुन्दर सुघर, ऐसी को बह मागिन
जो जातहो लपटावै^१ ।

इसमें कृष्ण के अनन्त रूप का वर्णन किया गया है। श्रीकृष्ण जो कवि हतनो बद्ध-
भुत है कि कामदेव भी उनके सौन्दर्य को निरख कर लज्जित से हो जाते हैं। चतुर्भुजदास
जी ने अपने आराध्य देव को सौन्दर्य का सागर माना है ।

वेणु माधुरी-

इसी प्रकार से कवि ने श्रीकृष्ण को वेणु की चर्चा करते हुए कहती है-
“ जिस समय श्रीकृष्ण ने मुरली अपने कर कमलों पर रखी तो गोपियाँ जो अपने-अपने
काम से बाहर जा रहो थी, मुरली की ध्वनि सुनकर सब ठगी सी रह गईं । इस
प्रकार श्रीकृष्ण ने मुरली के द्वारा पशु-पक्षी, जड़-चेतन सभी को वश में कर लिया^२ ।

गोपी-प्रेम -

गोपाल कौ मुखारविन्द देख्यो आज माई ।
तन, मन त्रै ताप तिमिर निरखत ही नसाई ।
सरस सरोज सुधा नैननि धरि पाई ।

१- अष्टाष्टा परिचय- चतुर्भुजदास काव्य-संग्रह, पृ० २७६-२९६

२- वही - पृ० ६१

सुखद समुद्र सोभा मोपै कही ह न जाई ।
धर्म कर्म लोक लाज सुतपति तजि धाई ।
चतुर्भुज प्रभु गिरधर में जाचै री माई ।

नंददास- (संवत् १९५०-१६४०)

अष्टक्षप के कवियों में भक्ति भाव के गांभीर्य, सर्वोन्नत दृष्टि, रचना-विस्तार और काव्यत्व की दृष्टि से सूर तथा परमानंददास के बाद नंददास का ही नाम आता है। डा० दीनदयाल गुप्त जी ने नंददास के स्फुट पदों और उनके अतिरिक्त १३ ग्रन्थों को प्रामाणिक माना है, ने सभी कृष्णभक्ति अथवा कृष्ण चरित्र से लगाव रखते हैं। डा० दीनदयाल गुप्त के अनुसार नंददास की प्रामाणिक रचनाएँ ये हैं- (१) रसमंजरी (२) अनेकार्थ मंजरी (३) मान मंजरी (४) दशमस्कंध भाषा (५) श्याम सगाई (६) गोवर्धन लीला (७) सुदामा चरित्र (८) विरह मंजरी (९) रूप मंजरी (१०) रुक्मणि मंगल (११) रास पंचाध्यायी (१२) भंवरगीत और सिद्धान्त पंचाध्यायी ।

इनमें से दशमस्कंध भाषा तो भागवत के दशमस्कंध के कुछ भाग का भाषा-नुवाद है। रास पंचाध्यायी गोवर्धनलीला, भंवरगीत, सुदामा-चरित्र और रुक्मणि मंगल भागवत की कृष्णलीला का वर्णन करते हैं। रसमंजरी, रूपमंजरी और सिद्धान्त पंचाध्यायी श्रीकृष्ण भगवान् की भक्ति का उल्लेख करते हैं।

नंददास जी ने श्रीमद्भागवत का माहात्म्य अपने शब्दों में इस प्रकार गाया है-

१-अष्टक्षप परिचय- चतुर्भुजदास काव्य-संग्रह, पृ० ४२

२- डा० दीनदयाल गुप्त : अष्टक्षप और वल्लभ सम्प्रदाय, भाग २, पृ० ८९५

३- -वहा-

पृ० ३७४

जब दिनमनि श्रीकृष्ण दृगनि तैं दूरि भये दूरि ।
 पसरि परयो अंधियार सकल संसार घुमहि घुरि ।
 तिमिर ग्रसित सब लोक- ओक लखि दुखित दयाकर ।
 प्रकट कियो अद्भुत प्रभाउ भागवत विभाकर^१ ।

श्रीमद्भागवत के पूर्वोक्त सामान्य तथा विशिष्ट तत्त्वों के उदाहरण क हमें नंददास की रचनाओं में प्राप्त होते हैं। यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं-

सामान्य तत्त्व- भक्ति सर्वश्रेष्ठत्व-

ज्योंहि हिर हरि चरित्र अमृत सिंधु सो रति मानी ।
 नंददास ताहि कुं मुक्ती लोन को सो पानी^२ ।

२- गुरु महिमा-

(क) जयति सकल तीरथ फलित नाम सुमिरन मात्र^३ ।
 (ख) अति प्रताप महिमा समाज जस सोक ताप अधहरन^४ ॥

विशिष्ट तत्त्व - लीलागान -

श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं में नंददास ने कृष्ण जन्म, जन्म महोत्सव, बाल-क्रोडा, वन-भोजन, गोवर्धन धारण, रास-लीला आदि का वर्णन किया है ।

१- नंददास ग्रंथावली- सम्पा० श्री ब्रजरत्नदास, रास पंचाध्यायी, पृ० ४

२- -वही - पृ० ३९६

३- -वही - पृ० ३२६

४- -वही - पृ० ३२६

यमुना तथा ब्रजभूमि का माहात्म्य भी गाया है।

रास-लीला-

कोउ मुरली संग रली रंगोली रसहि बढावति ।
 कोउ मुरली को कैंकि क्वीलो जदभुत गावति ।
 ताहि सांवरो कुंवर रिभि हंसि लेत भुजन भरि ।
 चुम्बन करि सुख सदन बदन तैं दे तमोल ठरि^१ ।

(तुलनीय श्रीमद्भागवत, १०, ३३, १०, १३)

श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी -

नंद भवन को भूषन माई ।
 जसुदा को लाल बीर लखर, राधारमन सदा सुखदाई ।
 इन्द्र को इन्द्र देव देवन को, ब्रह्मा को ब्रह्म महा बरदाई ।
 काल को काल इस ईसन को, वरुन को वरुन महा वरुदाई ।
 सिव को ~~काल~~ घन सन्तन को सरबस, महिमा वेद पुरानन गाई ।
 नंददास को जोवन गिरघर, गोकुल मंडन कुंवर कन्हाई^२ ।

१-नंददास ग्रंथावली- सम्पा० श्री ब्रजरत्नदास, रास पंचाध्यायी, पृ० २२

२-नंददास ग्रंथावली पदावली , पृ० ३४३

सप्तम अध्याय

पुष्टिमागीय सेवा-पद्धति
की अन्य सेवा पद्धतियों से
तुलना

सप्तम अध्याय

पुष्टिमागयि सेवा पद्धति को
अन्य सेवा पद्धतियों से तुलना

सम्बन्ध

भाक्त का प्रपञ्च हृदय से है, अन्तर्जगत को नाना वृत्तियों का
इष्ट के साथ भावात्मक संबंध से है, अतः इसके विकास का कोई
नहीं बनाई जा सकता । हृदय को भक्ति भाव का और प्रेरित करने के लिए
अनेक साधनों का सहारा लेना पड़ता है । उनमें से कुछ परम्परा से मान्य हैं,
जैसे नवधा भक्ति, कृष्ण भक्ति अनुराग प्रधान हैं । अतः हर स्थान पर उसमें
सांगोपांग विवरण नहीं मिलता । कृष्ण सम्प्रदायों में राग उत्पन्न होने के पूर्व
इसका स्थान निश्चित रूप से स्वीकार किया है ।

भक्ति के शास्त्रीय रूप का नाम है नवधा भाक्त है । सामान्यतया
यह भक्ति का जन्मदात्री समझा जाता है । इसी के साथ - साथ कृष्ण
सम्प्रदायों में एक विशिष्ट प्रणाली का विधान है जिसे अष्ट प्रार सेवा कहा
जाता है । नवधा भक्ति के प्रारम्भिक अंगों के आचरण द्वारा जब मन से
सांसारिक माया मोह का आवेश कटोपा होने लगता है और मन में प्रभु का
माहात्म्य ज्ञान प्रकाशित होने लगता है तब स्नेह उत्पन्न होने लगता है ।
पुष्टिमागयि आचार्यों के मतानुसार मन में जब स्नेह जागृत हो जाय तब भाक्त
सेवा प्रणाली में रत हो सकता है । अतः नवधा भक्ति का प्रारम्भिक विवरण
में प्रथम है तत्पश्चात् सेवा ।

नवधा भाक्त के नीचे प्रासङ्गिक हैं । श्रवण, कर्तन, स्मरण, पाद-
सेवन, अर्चन, जपन, वास्य, उत्सव तथा जात्यभिषेक । पुष्टिमागयि भाक्त
का भावना आत्मनिवेदन से जीत प्रीत है । पिता, स्त्रा, पुत्र, धन आदि

देह गेह के लारे जंबवों को गुरु का आदेश में न कृष्ण को निवेदित करता है, एवं अपने को श्रीकृष्ण का वरुत मात्र जानता है । पुष्टि सम्प्रदाय का वाक्या मंत्र देखिए -

श्रीकृष्णः शरणां नमः । अहस्त्र परिवत्सरमित काल जात
कृष्णवियोग जनित ताप वलेशानन्द तिरौभाववैः सह भगवते
कृष्णाय दशोन्द्रियद्राणान्तः करणानि तद्वनश्च दारागार
पुत्रविशेषपराणि आत्मना सह समर्पयापि दात्री हं कृष्ण त्वास्मि^१

इस समर्पण के अनन्तर ही उसे तनुजा, विसजा आदि सेवाओं का अधिकार मिल जाता है । सेवा द्वारा इष्ट देव का ज्ञानध्य प्राप्त होता है । नवाधा भक्ति के परिचायक पद चैतन्य सम्प्रदाय के साहित्य में नहीं के बराबर हैं ।

सेवा, नवाधा भक्ति का अपेक्षा अधिक क्रियात्मक तथा भावात्मक है । यह इष्ट देव के नाम तथा स्वरूप दोनों को होता है । इन दोनों में भी स्वरूप सेवा का अधिक महत्व है । स्वरूप सेवा का सांगोपांग वर्णन पुष्टि-मार्ग में किया गया है । इस मार्ग के अनुसार सेवा तीन प्रकार का होती है । तनुजा, विसजा, मानसी ।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में सेवा दो प्रकार का माना गई है - प्रकट तथा अप्रकट । प्रकट सेवा तन के समर्पण से का जाती है और अप्रकट सेवा अन्तरंग प्रेम से (मानसिक) । प्रकट सेवा के बिना अप्रकट सेवा असम्भव है । इसके लिए सुदृढ़ प्रेम की आवश्यकता है । यह सुदृढ़ प्रकट सेवा द्वारा हास्य पनपता है तथा दृढ़ होता है ।

गीर्ण श्याम के अहवरि, विपिन प्रगट अप्रगट पिचार ।

अन्तरंग हित चित सुदृढ़, प्रगट जतन धन हार ॥

सुधर्म तोषिनो, पृ० ५०

अप्रकट सेवा (मानसा) अखंड आराधन में मग्न होने पर होती है । अप्रकट लोला में मन के रसलोला होने पर देश और काल का बाधार्थ नष्ट होजाता है -

समय समय सेवा प्रकट आराधा वल्लभ लाल ।

अन्तरंग रस मग्न चित तहाँ नहीं गति काल ॥

वही, पृ० ३

ब्रज के सम्प्रदायों में अष्टधाप सेवा प्रत्यः इस रूप में चलता है, मंगला, धृंगार, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या, आरती एवं शयन । वल्लभ सम्प्रदाय में राजभोग के पूर्व ग्वाल का छठ प्रथा है क्योंकि इस सम्प्रदाय को सेवा प्रणाली सत्य भाव कैलेकर चला है । शेष दोनों सम्प्रदायों में समानता है । हरिदास जो को कोई निजि प्रणाली नहीं मिलता ।

इसमें वल्लभ सम्प्रदाय का अष्टधरं भावना बाल एवं पौगण्ड को है अतः उसमें अन्य सेवा भावना से पृथक् अपना वैशिष्ट्य है । चैतन्य सम्प्रदाय, राधावल्लभाय सम्प्रदाय में तथा निम्बाकी सम्प्रदाय में धृंगार रस ही मान्य है और उसी के अनुरूप सेवा का विधान है । विभिन्न सम्प्रदायों का अष्टधरं अष्टयाम सेवा में सूक्ष्म अन्तर है । अतः प्रत्येक सम्प्रदाय का सेवा भावना का यहाँ पृथक्-पृथक् उल्लेख हम कर रहे हैं ।

राधावल्लभाय सम्प्रदाय में अष्टयाम सेवा

इस सम्प्रदाय सेवाओं का विवरण केवलात प्रकार का है। मिलता है - मंगला, धृंगार, राजभोग, उत्थापन, संध्या, शयन तथा समय ।

मंगला -

दो घड़ा रात्रि रहे दो घड़ा दिन चढ़े मंगला का समय होता है । इसमें धन्य अपने नित्य क्रिया से तनूत होकर मोदर का प्रदन्तन कर का राधिका का को जगाता है और मुख प्रदन्तन करवाकर उनके वस्त्रवस्त्र सम्मुख प्रतःकालान

कल्ला प्रस्तुत किया जाता है। जागरण में जुन्दर पदों का पाठ को प्रथा है।

जगाईं री भईं देर बड़ी

अलबेला रेली अपय के संग, अलक लड़ के लाड़ लड़ा

0 0 0 0 0 0

विहारिनदास रति को कवि चरन जो छबि भी मन मांक जड़ो।^{१२}

(प्रतापक बाबा तुलसादास) (ओराधाजो का लिड़ा उत्सव के पद)

पिं० २००६ का कल्ला समय आरतो भा का जाता है इन समय के बाद अखियां राधा को भ्रमण हेतु ले जाते हैं। भ्रमण राधा का आपाद मस्तक का ध्रुंगार होता है तथा पुष्प चयन और कन्दुक क्रोड़ारं भा लेते हैं।

२- ध्रुंगार :

मंगला के बाद ध्रुंगार बारह घड़ी दिन बढ़ने तक ध्रुंगार का समय माना जाता है। ध्रुंगार समय आरंभ होने पर राधा पुष्पवाटिका सौन्दर्य देखने जाते हैं।

तब राधा का ध्रुंगार किया जाता है। उबटन आदि लगा कर नहलाया जाता है। तदन्तर वस्त्र विन्यास ध्रुंगार, तिलक आदि में राधा के रंग को सुशोभित किया जाता है -

काठु उजो तप्त जल जान्यो, काठू धारि उबटन जान्यो। १०५

रक करेल अगजा त्याई, टहल हेतु सग फिरत हैं धारि। १०६

सम्पाते जु के रस में माना, छिन छिन तिनका प्रीति नवानी। १०७

(रस मुखावलि लाला) (व्यास लाला भुवबास) १५३

श्री ध्रुंगार में राधा मस्तक पर चन्द्रिका तथा कृष्ण के मस्तक मोरपिच्छ कल्ला तथा फिर पैच धारणा कराया वज्र जाता है। पूर्णणि तथा रक्षादशा की हा मुकुट पहनाया जाता है। प्रातः राधा को आयं कृष्ण की।

वैष्णव विन्यास के बाद धूप आरता को जाता है। फिर भोग

निवेदन किया जाता है जिसमें भांति भांति के मिष्ठान आदि का विधान है ।
इस समय अस्थियाँ तरह तरह का कड़ा कौतुक का भा आयोजन करता है ।
इसके बाद श्रृंगार आरती का जाता है ।

मंगला एवं श्रृंगार के कार्यक्रम में पहले वंशों फिर राधा तत्पश्चात्
कृष्ण का सेवा को जाता है । यह क्रम होना आवश्यक है ।

३- राजभोग :

बारह घड़ा दिन बोलने पर तथा दिवस अवसान को ६ घड़ा शेष
रहने पर राजभोग का समस्त निश्चित किया गया है । दोपहर को भोजन तथा
आराम राज भोग के अन्तर्गत आता है । विभिन्न प्रकार के व्यंजन तनकर
चम्पकलता नाम को सेवा उन्हें प्रेमपूर्वक जिमातो है और ललिता बातों से मनो
रंजन करता है । विग्राम से पूर्व राजभोग का आरंभ होता है -

नैऋत्य धिय थार भर, पूरि प्रेम घृत ताय ।

लोने हित के करन जी, जारति करति उगाहि ॥

(रस मुन्नावली लाला) (व्यास लोला ध्रुवदास) पृ० १५४-५५

४- उत्थापन :

दिन के छः प्रहर से सायं तक अंध्या का समय है । इसमें राधा
कृष्ण को विग्राम से जिगाया जाता है । वाद्ययंत्रों से निद्रा भंग का ज्ञात,
है तत्पश्चात् मुक्त धुल्लाकर धीड़ा अहुत भोजन भा कराया जाता है । इस समय
भा धूप जारता होता है । तत्पश्चात् राधा कृष्ण अस्थियों जी स्त वनविहार के
लिख प्रस्थान करते हैं -

जहाँ जहाँ जार दिवा रंजी, जहाँ जहाँ बियाली क्यो ।

चलूँ कुंवार देखे अनारही, फूला सीमा कहा न जा ॥

फूला रता लड़ा तरु झाड़ी, फूला रहो जमना जल पाही ।

सिमरा आई सखा निहार, एक विस अति हा सुकुंवार

वही पृ० १५६

इति हम मिले नाहि सैठ है अहि आइ, रकि, निशा आज
बाच तेह गई ।

भूषण वसन घूरे देखे पुनि समुअत, कौन रक्त्रा दशा उअज है
सुखमई ।

इति ध्रुव ये जाये मिल्यो आमिल्यो मानि, नैनन में रुचिहि
को प्रेम बैलि नई ।

भजन तृतीय श्रृंखला लाला (व्यासलाला ध्रुवदास)

पृ० १०२

निम्नार्क संप्रदाय का सेवा-पद्धति :

निम्नार्क को सेवा पद्धति राधावल्लभ संप्रदाय से काफी मिलती
जुलती है । अन्तर केवल इतना है कि इसमें राधा का उत्कर्ष इतना अधिक नहीं
है जितना राधावल्लभ संप्रदाय में है । फिर भी इस संप्रदाय में कृष्ण-
उक्ता स्थान कृष्ण से अधिक हा प्रतीत होता है । अर्को के नाम में भा अंतर
है । इसमें ललिता प्रसूत है, इसमें रंगदेवी । इस संप्रदाय में हरिराय का ने
पांच मुख माने हैं - सेवा, सुरत, उत्साह, सख सिद्धान्त। सेवा प्रणाली
कानि रूपण सेवामुख के अन्तर्गत लोक्या गया है ।

इस संप्रदाय में अष्टयाम सेवा शक्तियों का वंदना के परवात्
गुरु रूप अर्जुन को कृपा का उद्बोधकर उदा भाव से आरंभ का जाता है।

मंगला :
----- निद्रा में राधाकृष्ण अने निगम हैं कि उन्हें समय आदि का ध्यान
दा नहीं रखा । अर्जुन द्वारा गाटे पदों को गाकर उन्हें जगाया जाता है -

आरंभ तोकर जाउ नलि, लो पुरांर गो ।

त्यों त्यों ओढ़त जान यह दांर तार यह कौन ।

(शेव सुत महाबाणा । पद १३)

सहचरियों के माँठे कंधों को झुंकर साधा जा उठता है तब मंगला का आरती होता है । उनके आंगन में लड़ होम का भाव प्रदर्शित किया जाता है । इस प्रकार दिन का कभी युगन स्वरूप का प्रतिष्ठा से आरंभ होता है । मुल प्रक्षालन कराकर उन्हें मंगलभोग कराया जाता है । तदन्तर पिंडशसन पर विराजमान युगलमान का मंगला आरती को जाता है । सर्वस्व समर्पण हो इस आरती में ज्योति जगाना है ।

२- मंगला चरणा आरती के पश्चात् सक्तियां दृष्टदे को कुंज स्नान हेतु ले जाती हैं । माणवों-को पर आग्नि कर उन्हें शुगंधित नौर से नहलाया जाता है । तत्पश्चात् पूर्ण धृंगार किया जाता है । धृष्ट धृंगार हो जाने के बाद उन्हें धृंगार भोग अर्पित किया जाता है जो कृष्ण राधा मनुहार करते हुए उन्हें भोग देते हैं । भोग के पश्चात् सक्तियां उन्हें आचमन कराती हैं । पान तिला रोरा का तिलक लगाती हैं । अंत में धृंगार आरती को जाता है ।

उनके पश्चात् दो राधाकृष्ण बन विहार के लिए कुंजों में निकलते हैं -

कुंज विशारो कुंजविहारिन कुंज विहार विहार रा ,
रंगदास दरहसि मनुदादिक रमत सरुचि बनजारे रो ।
अमृत कुंज को अमृत से से पा पो अबु प्रालपार रा,
फल-फल , कल, दल, विथलन धाहरि प्रिया अंगार रो ।

(महाभारत बुध सेवा पुत्र, पद ३०)

बनविहार करके राधाकृष्णभोजन कुंज में जाते हैं जहाँ विधि पूर्वक आजा गन्टाकर राक्षस मनमार व्यंजन परोसता है । भक्त अपना राजनैन्द्र्य का अनस्त लिप्ता को राधाकृष्ण के भोग के रूप में अर्पित करके उज्ज्वल उपराम होने का चैष्टा करता है ।

अपन शतासी रस रही, नतुर्विधा सुपुंज,
नंद दिन वृष्णभानुगा भोजन करत नकुंज । (गुणसत्क-गो भूट)

तत्पश्चात् उन्हें द्वारा प्रदान कर जाते हैं और राजभोग का आरंभ होता है । इस भोग के बाद राधाकृष्ण भुवन शैया पर विश्राम करते हैं ।

विश्राम के पश्चात् उत्थान का समय होता है । उत्थापन भोग में विभिन्न प्रकार का भोजन मिठाइयाँ अर्पित होजाते हैं । अलियाँ माँति माँति से राधाकृष्ण का सेवा में लगा रहता है ।

उत्थापन - भोग करके राधाकृष्ण फलबारा का आनंद लेते जाते हैं । साक्ष्याँ उनका आरंभ करता है एवं स्तुति गाता है । पहले राधा पुनः राधा का प्राधान्य रहता है -

पर भक्तिरति बर्द्धना श्यामा तम सुख देवि ।

रसिक मुकुट माने राधिके जय नजनोरज नैन ।

श श्या हादिता अतिप्रयावादिना उनमापनि धी राधा

अं अं टोना रूप सलीना भुम सुठोना श्रृङ्गण ।

म गवाणा भवा भुज , पृ० ३६-४०

इसके पश्चात् संख्या का कार्यक्रम होता है । इस समय संगीत का समारोह होता है । सलियाँ मधुर मृदंग बजता है । कोई नृत्य कोई वाद्यों से कृष्ण को प्रार्थन करने का चेषटा करता है । इस समारोह के उपरान्त राधा कृष्ण भिक्षुज में पधारते हैं । यज्ञ की करतें हैं । नार घड़ी बातों पर वे सदन में जीटते हैं । वहाँ व्यास कराया जाता है फिर सत्य समय जान उनका आरंभ हो जाता है ।

सत्य के समय सलियाँ शैया रच देता है । वे अनन्त राधाकृष्ण के लिए बताते हैं -

जोवत जुगल भंवर ने ठारी ।

कबहुँ तेज चरन नैननि में खतम नेह सुधारस पानरी ।

कमलेंक पद -पल्लव राधे कहे अपने मन कनान पितारी ।

कवुंके ओमट्ट नंद लाल के कोमल चरण कमल पुचकारी ।

भुगल शतक (ओमट्ट)

कुछ देर बाद उन्हें लीया जान पट बन्दकर बाहर चला जाता है । अर्धशरा में रात सात घंटा रहने पर सहचरियां आकर युगल जाड़े की जगाती हैं और उन्हें रात स्थल में ले जाया जाता है और वहाँ रात का आयोजन होता है । रात के अन्तिम राधाकृष्ण का ठहाहा किया जाता है ।

तत्पश्चात् वे शैया पर विराजते हैं और विविध विलास में निमग्न होते हैं । वस्तुतः शैया शयन का ही एक ढंग है किन्तु प्रहर भेद के कारण उनका अपना समय रखा गया है । इस निम्बाकथि सम्प्रदाय को अष्ट प्रहर सेवा का निवाह होता है ।

गौड़ोय सम्प्रदाय की सेवा पद्धति :

इस सम्प्रदाय को अष्ट प्रहर सेवा प्रणाली में राधा के धर्मिक परकिया होने के कारण भावुकता तथा रोचकता है । अष्टकालीन नित्य लोला का विभाजन इस प्रकार है - निशान्त लोला, पूवान्ह लोला, मध्यान्ह लोला, अपरान्ह लोला, प्रदोष लोला, रात्रि लोला, अलानिज लोला।

चैतन्य सम्प्रदाय की सेवा प्रणाली में लज्जाओं का विविधता दृष्टव्य है । राधाकृष्ण के अनुराग मय मिलन के मित्रां, अस्त्रियों, चाटु लोलार अपना पृथक् महत्त्व रखता है । गौड़ोय सम्प्रदाय में सर्वत्र सूक्ष्म विरलेषण का प्रभाव दृष्टिगत होता है ।

:- राधा का राजाज, राधाकृष्ण का राजाज, राधाकृष्ण का निद्राभंग, राधाकृष्ण के प्रीति अल्ला का पार गज, राधाकृष्ण का प्रत्युत्तर, पुनः अल्ला का उत्पति, ललिता का कौशल, राधाकृष्ण कटु राधा का वेद रचना,

गृहजनित विरह में आराधा कृष्ण का व्याकुलता तथा वृन्दाके कौशल से
राधाकृष्ण स्वगृह गमन ।

२- जागरण आराधा के प्रति भगवतो पौर्णमासा का १४ पारहासोक्ति
विशाखा का प्रत्युत्तर, दासियों का गृहकार्य समापन, आराधा का स्नान
रसोदगार, आराधा के रजना विलास के संबंध जित्तियों का प्रस्तावली,
आराधा का रसोदगार, आराधा का अनुराग, सखियों द्वारा राधा का
वैशा रचना, जागरण यशोदा द्वारा, आकृष्ण जागरण, प्रजवाल्की का
स्वगृह में आगमन, श्रीकृष्ण का गोष्ठ्यागमन, नन्दात्म्य में खाना बनाने हेतु
राधा का लाया जाना । आराधा का स्नान, सखियों के साथ आकृष्ण को
गोष्ठप्रत्यागमन, व भोजन लाला, सखियों के साथ राधा का भोजन, यशोदा
द्वारा आराधा का वैशा रचना, यशोदा द्वारा गोष्ठ सज्जा। सखियों के
साथ आकृष्ण का गोष्ठ गमन, यशोदा के आदेशानुसार आराधा का कुंदन-
लता के साथ, स्वगृह गमन, आराधा व सखी द्वारा जाटला का मनस्तुति तथा
जाटला के आदेश से सखियों के द्वारा राधा का सूर्य पूजा के श्रुति से आभार ।

३- मध्यान्ह लीला :

मध्यान्ह आभार - १५५५५५ जित्तियों के साथ राधा का अभिचार।
राधाकृष्ण का मिलन, राधाकृष्ण का होला, राधाकृष्ण का फूलन लाला,
वन प्रणय से आराधा का गमन, पुष्प चयन, आराधा द्वारा कौतुक श्रुति से
मुरली
केशला चरण, आकृष्ण ने राधा तथा दासियों का रहस्य गोपन, कृष्ण का
अनुनय प लेव, राधा द्वारा मुरली प्रदान, आकृष्ण राधा का प्रेम निश्चय,
मधुपान, आराधाकृष्णका राजक्रांता, जलक्रांता, मधुमंज, तथा सुवल सखियों
के साथ आकृष्ण का भोजन, आराधाकृष्ण का विलास, सुकसारिका द्वारा
आराधाकृष्ण का स्व गुण वर्णन। पालक्रांता, राधाकृष्ण का पालक्रांता
तथा राज-परिलस, ७७ जाटला के आगमन पर सखियों सहित आराधा सूर्य

मंदिर में जाना, सूर्य पूजा के अंत में अक्षर्यों जाह्नव राधा का गृह गमन तथा श्रीकृष्ण के विच्छेदन में राधा को व्याकुलता एवं अक्षर्यों द्वारा संतुष्टि ।

४- अथर्वण उत्तर गोष्ठ से राधा अपने गृह में श्रीकृष्ण के लिए पक्वान्न बनाना व स्नानादि लालारं, श्रीकृष्ण का गृह प्रत्यागमन, श्रीकृष्ण का उपरान्ध भोजन ।

५- श्रीकृष्ण श्रीराधा तथा कृष्णका प्रदोषोपरि आरोहण व दूर से परस्पर दर्शन, श्रीकृष्ण का नन्द सभा में गमन, नृत्यादि दर्शन, श्रीकृष्ण व बलराम का रात्रि भोजन तथा शयन, राधा का स्वगृह में रात्रि भोजन, दि लोला । सखियों के साथ राधा का अभिषार, श्रीकृष्ण का अभिषार, किंज में श्रीराधा कृष्ण मिलन, श्रीराधा कृष्ण का कानन शोभा दर्शन, तथा दोनों का रास-विलास, राधाकृष्ण का जल क्रीडा, राधाकृष्ण का विलास, स्वाधान भंडिका श्रीराधा, सखियों द्वारा श्रीराधाकृष्ण का सेवक ।

६- कुसुम रत्ना राधा कृष्ण शयन करते हैं और प्रातः तक निद्रालान रहते हैं ।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त सम्प्रदायों को सेवापद्धति तथा उत्तम सम्प्रदाय का अथवा पुष्टिमागयि सेवा पद्धति बहुत कुछ मानता है। पुष्टिमागयि सेवा पद्धति का विवेचन अन्य अध्यायों में किया जा चुका है। उक्त पुनः उल्लेख उचित नहीं है । पुष्टिमागयि सेवा को भा जाठ अर्थों में विभाजित किया गया है । इस प्रकार इन सम्प्रदायों में भा नवधा भात के साथ सेवा विभाजन कर दिया । किंतु एक ही समय में नानों में उत्तर सेवा उत्तमान से है ता सेवा विधा अगमन जा ली है ।

वल्लभ सम्प्रदाय का अष्टयाम सेवा का विस्तृत उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। अब हम दूसरे सम्प्रदायों का सेवा का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करते हैं। जहाँ का प्रभाव १६वाँ- १७वाँ शताब्दी के कृष्ण भक्त काव्यों पर पूर्ण रूप से पड़ा। वल्लभ जी का जहाँ भाँति अन्य सम्प्रदायों ने भी अष्टयाम सेवा को गृह्यता प्रकट था। यदि कुछ अन्तर था तो वह बहुत ही सूक्ष्म। अब इन सम्प्रदायों में सेवा का संक्षिप्त रूप देखिए -

राधावल्लभाय सम्प्रदाय में सेवा के अष्टयाम कहे गये हैं किन्तु विवरण सात प्रकार की सेवाओं का ही मिलता है - मंगला, शृंगार, राज-भोग, उत्थापन, अंब्या, शयन, शैया और समय।

१- दो घण्टों रात्रि रहै और दो घण्टा दिन चढ़े तक मंगला का समय होता है। इस सेवा में भक्त स्नानादि से निवृत्त होकर मंदिर का परिमार्जन होता है फिर राधाका जो की शयन से जगाया जाता है और उनके मुख प्रक्षालन पश्चात् उन्हें सात्र प्रालम्बकालीन केश्या दिया जाता है। जागरण के सुन्दर पद पाठों को प्रथा है। मंगला भोग के साथ आरता भाउतारो जाता है। उनके पश्चात् राधा को प्रतिलाल प्रमृष्ट के लिए अस्त्रियाँ ले जाती हैं। प्रमृष्ट में राधा का आवादनमस्तक शृंगार होता है। और फूलों का अयन तथा कन्दुक श्राद्ध आदि लालारं होता है।

२- मंगलाके अंत में से और बारह बड़ा दिन चढ़ने तक शृंगार का समय माना गया है। शृंगार समय आरंभ होने पर राधा स्वयं अश्वपारिका का सौन्दर्य देखने जाती है। स्नान कुंज में राधा के शरीर उबटन लगाकर स्नान कराया जाता है। तदन्तर ५२ विन्यास तथा शृंगार प्रक्या जाता है।

३ यथेष्ट विन्यास के बाद भूमि सरिता को जाता है फिर भोगा-निवेदित किया जाता है जिसमें भाँति भाँति के पिष्ठान आदि का विधान है। इस समय अस्त्रियाँ क्रोतुक क्रोड़ा नृत्य गान करती हैं तथा उसे दर्पणादिखाकर

तरह तरह के उपहार देती हैं ।

दिन के बारह घड़ा बौत जाने पर तथा दिवस अशान को छः घड़ा शेष रहने तक राजभोग का समय निश्चित किया गया है । मध्याह्न भोजन के उपरान्त आराम भा राजभोग के ही अन्तर्गत आता है ।

राज भोग के समय आराम का भा आयोजन है । एक उदाहरण देखिए -

नैन दोप छिय थार भारे, पूरि बूस् प्रेम धृत ताहि ।

लाने रहत के करान जी, जारत करति उमार्हि ॥ ^१

४- दिन के पिछले छः प्रहर के समयकाल तक अंध्या का समय है । उत्थापन में राधा कृष्ण को विग्रह ले जाया जाता है । बाध यंत्रों से निद्रा भंग का अणु जाता है । जगने पर मुह धुल्लकरहत्का सा भोजन कराया जाता है । उत्थापन में धूप जारती भा होता है । इसके बाद राधा कृष्ण वन विहार के लिए अस्थियों जा त प्रस्थान करते हैं । वन का अमराइयों में विचरण करते हुए उनके पुष्प चयन तथा नौका विहार आदि लोलाओं का भावना का जाता है । अस्थियों अपने युगल प्रेमा के लिए नृत्य गान जारत आनंद-त्रमोद करते हैं ।

५- दिन विहार से लौटने पर आय काल का भोग अर्पित किया जाता है । कई प्रकार मिठाइयोंका यत् स्वल्प भोजन भोग कहा जाता है । इन उदों के बाद कुछ पदों का गान होता है -

अद्भुत माटे मधुर कल, त्यागिता लाय ।

स्थावत थारै लालगी, पाइले प्रया चरवहि । ^२

इसके बाद अंध्या जारती होता है तत्पश्चात् राज लाता होता है । जसमें गायन वादन, नृत्य तथा संगीत के तानों का होता है ।

१- राज मुक्तावता लाला (व्यासोच लाला) पृ० १५१

२- वला, पृ० १५७

६- रात्रि के घड़ा रात बाने से आठ घड़ा रात्रि तक शयन का समय होता है । श्या में रात्रि का भोजन प्रस्तुत । क्या जाता है जिसमें पका खाया हो होता है तदन्तर आरती होता है ।

ऐन समय को चिरियां जाना, भोजन अोजत बाह कहु जाना ।
दूध घात मधुर्जित रुचिकारा, जल अगन्ध मरि जाना कारा ।
ज्वारि प्यारि के बारो दोनो, प्री प्यार जी आरती कोना ।^१

७- आठ घड़ी रात बाने पर बास घड़ी रात बाने पर श्या का समय है । कोल आन्त होकर राधाकृष्ण श्या भोग ग्रहण करते हैं । उसे अनन्ताभा भोग भा कहते हैं । प्रातः उठने पर राधा कृष्ण का क्राड़ा पुनः आरंभ हो जातो है ।

निम्बाकी सेवा पद्धति राधा वल्लभोय सम्प्रदाय से काफ़ी मिलती जुलती है । केवलअन्तर यह है कि इसमें राधा का महत्व कम है । निम्बाकी सम्प्रदाय के हरिव्यास देव जा ने पांच सुख माने हैं - सेवा, सुरत, उत्साह, सहज, सिद्धान्त । सेवा प्रणाली का निरूपण सेवा सुख के अन्तर्गत ही किया गया है । इस सम्प्रदाय में अष्ट प्रहर सेवा, सत्तियों को वन्दना के पश्चात् गुरुरूप सेवा को कृपा का उद्बोधन कर सेवा भाव से आरंभ का जाता है ।

१- रात्रि के सषु जिस सुख रस में राधाकृष्ण निमग्न रहते हैं वह काल बाधाहीन है । इस सुख में निमग्न रहने के बाद युगल जोड़ा को समय पल का ध्यान नहीं रहता । सत्तियां उनको इस आसक्ति को भव्य भाव से देता है और सेवा आरंभ करता है । छे कोमल और काठ शेदों द्वारा उन्हें जगाया जाता है -

आरत ताँर जाऊँ लिल लौं पुरहार लीन ।

रखौं त्यों पीढ़ित तानि यह नानि यह परा यह कौन ।^२

१- ३५ अ० अन्तः १७१-१७२-१७३ (रस मुक्तावली) (व्यालाजला ला ध्रुवदास) पृ० १५७

२- सेवा सुख (मन्त्रबाणा) पद, १३

सलियों के प्रिय वचनों को चुनकर राधा उठतो हैं फिर मंगला का स्तुति गायता जाता है । स्तुति से राधा रूप स्पष्ट होने के साथ उनका महत्त्व, आनंद का परावर्धन होने का बोध भा जाता जाता है । मुख लीला के पश्चात् उन्हें मंगला का भोग कराया जाता है । अन्तर सिंहासन पर विराजमान युग मूर्ति का आरता उतारो जाता है । मंगल आरतो के प्रकाश सलियां युगल जोड़े के दर्शन कर जसो जापको धन्य समझता है । हाव भाव के धार में रति का धृत , ज्योत्स्ना ज्योति तथा तन मन का मुक्ता चोकर , युगल विहार का आरती के अमिष्ठ उपकरण है । सर्वस्व समर्पण हो इत आरते में ज्योति जगाता है ।

हियमें हाव भाव लिए थारु रति धृत ज्योतिरु वाति विहारा ।
तन मन मुक्ताचोकर पुावे, आरति ओभट्ट अमिष्ठ प्रचावे ।^१

२- मंगला आरत १ के पश्चात् सलियां अपने आराध्य को कुंज में स्नान हेतु ले जाती है । उबटन आदि लगा कर स्नान कराकर उनका पूर्ण ढंगार करता है । फिर उन्हें ढंगार भोग अर्पित किया जाता है । कृष्ण राधा १ मनविहार करते हुए उन्हें भोग देते हैं । सलियां दोनों को आचमन करवाकर स्नान खिलाकर रोला का तिलक लगता है । फिर ढंगार आरता का जाता है ।

३- इस जासता के पश्चात् राधाकृष्ण वनविहार हेतु निकलते हैं -

यह तुल दे ज सलिन को सहज सरत रस लान ।
कुंज कुंज विहर हो मनज यच्छा जावान ।^२

ढंगार आरत करवाकर हृदय में उमंग भरि हुए खसमा खसमा खसमा कुंज का खयालवार वाच्यियां देलने लगते हैं तार कुंज कुंज में भ्रमण करते हुए प्रत्येक वस्तु में नम्रता का अंश करते हैं ।

१- पूर्ण शक्ति (१० भट्ट) २८

२- विवा कुंज (महाभाषा) पद ३२

४- इन विहार पश्चात् युगल जाड़ा भोजन कुंज में जाता है। वहाँ स्त्रियाँ विधि पूर्वक आसन पर बिठाकर मनमाये व्यंजन परोक्षती हैं। मध्याह्न के भोजन में लेह्य, पीष्य, मक्ष्य, भोज्य किसी प्रकार का व्यंजन नहीं छूटता। भक्त जनों रसेन्द्रियों का अमरुत लिप्सानी राधाकृष्ण के रूप में समर्पित करके उससे उपराम होने का प्रयत्न करता है। इस अन्वय कोषाकी आनन्दमय केषा तक पहुँचाने का प्रयत्न किया जाता है।

अपन स्तासीं रस अहाँ, चतुरविधा बहुपुंज,
नन्द नन्दन वृषभायुजा भोजन करत निकुंज ।^१

इसके पश्चात् अक्षचमन कराकर बोरों प्रदान कीजाती है। राजभोग का आरंभ होता है तत्पश्चात् राधाकृष्ण विभ्राम करते हैं। इस दिशा में कहीं कहीं रति केलि भी वर्णित है।

५- विभ्रानीयरान्त उत्थान का समय होता है। उत्थापन भोग में भाँति भँति का मेवा मिठाइयाँ होती हैं। स्वर्णि धाल में प्रत्येक क्षुत्तु का वस्त्र आभूषण प्रस्तुत की जाती है। स्त्रियाँ भाँति भाँति से राधाकृष्ण को सेवा में लगा रहती हैं। उत्थापन भोग करके राधाकृष्ण कुत्वारों का अर्चन लेते हैं। वहाँ स्त्रियाँ उनका आरती उतारती हैं। तथा उनका स्तुत गाता है। स्तुति में राधा का प्राधान्य रहता है -

परभाँति रति वदना व्यस्य स्यामा त - बुलदेना ।

रसिक मुकुट मनि राधिके जय मनारज नैना ॥ (५२)

० ० ० ० ०

राधादिना अति प्रिय गोदना उर उन्नादिना आराधे ।

शे अंग दीना लसलीना गुमादुठोना नाकृष्ण (५३)^१

१- अतासीस युगल रसिक (प्रोफेसर)

२- मजाजाणा सेवा बुल पृ० ३६-४०

६- गंध्या वन्दना के समय संगीत का समारोह जमता है। जप्त स्वरों में तान माढ़-मूर्छित, ग्राम आदि संगीत को बाराकियोंका प्रदर्शन करता है। इस प्रकार सारी शक्तियां मिलकर राधाकृष्ण को हर्षित करता है।

इस समारोह उपरान्त कृष्ण निकुंज में पधारते हैं। कुंज में युगल मूर्ति जिंहासन पर निराजमान करते हैं और शक्तियां युगल मूर्ति के दर्शन कर आत्म विभोर होता हैं। चार घंटा रात बिताने पर वे सदन लौटते हैं। उन्हें व्यास कराया जाता है फिर आसती होता है।

७- शयन के समय शक्तियां शैयारह देता हैं। राधा कृष्ण के चरण दबाता हैं और चंवड छुलाता हैं -

जोत जुगल चंवर हो ठारो।

कबुंके रेऊं चरमन नैननि में नवलम मेह सुधारस धारो।

कबुंके पद पल्लव राधे के अपने नैन-कनान निहारो।

कबुंके दो भट्ट नन्द लाल के कोसल चरन कमल पुवकारो।

कुछ देर बाद उन्हें साथे जान कर शक्तियां पट बन्द कर बाहर चला जाता हैं।

अपरात्रि में जब छः घंटा शेष रह जाती हैं तो शक्तियां जाकर राधाकृष्ण को जाकर रात स्थान में ले जाता हैं। रास के परभाव राधाकृष्ण का प्रभाव किया जाता है।

८- कृष्ण रासोपरान्त शैया पर निराजते हैं। शैया वस्तुतः शयन का स्थान है। प्रहर मेह के कारण इसका अपना समय रखा गया है।

गोदाय सम्प्रदाय का जष्ठ प्रहर सेवा प्रणाली में राधा के पराक्या होने के कारण भायुक्ता लगायी जाती है। जो प्रहज जात भागीमें निराजतकिया है - उपरान्त लाला, भूपान्त लाला, नयान्त लाला; अपरान्त लाला, प्रदीप लाला, रात्रि लाला, अखिल अखिलान्द्र लाला।

४- रात्रि जागरण एवं रातरंग के अतिरिक्त आतुरता से राधाकृष्ण आसक्त्य भरे लीये रहते हैं । दोनों की अवस्था विचित्र है । वैष्ण विन्यास तत्त्व व्यस्त है, भोर हुआ चा जाता है पर निद्रा अस्तित्व से वै ध्वस्त है ।

माटल चन्दन दूदल आमरण दूदल कुन्तल - १५ ।

अक्षर ललित गलित दुसुमावला धूर १ दुहुं मुल चंद ।

हरि हरि अल दुहुं स्यामर गौरि ।

शृंगार रस में पारक्या भाव का प्रमान्यता के कारण गीताय सम्प्रदाय में शृंगारिक वर्णन शुरू कर दिया गया है । कृष्ण को जगाने में वात्सल्य का अभाव है । जटिला आदि के प्रसंग में विषयानुकूल रस का उच्चार करते हैं । जगाने के समय मंगला की भांति राधाकृष्णका स्तुति अत्यन्त भक्तिभाव से का जाता है । सखियां युगल जोड़ा का दर्शन करती हैं । सखियां रोधा के जगने पर उसे देखकर लेकर अपने अपने घर चले जाती हैं और कृष्ण अपने माता के साथ चले जाते हैं ।

२- रात्रि के अवसान पर अररा सखियां उत्कर्षापूर्वक काम में लग जाती हैं । वैश मंदिर को स्वच्छ करके वैष्ण भूषण का आज शृंगार रहते हैं । दशनस्मार्जनो, दशना-राधना को थार में कपूर आदि से सुगंधित जल गागर में मुख प्रक्षालन स्नान के निमित्त पैदा पर रस दिया दिया जाता है । लंगोटा उकटन आदि भिन्न भिन्न आवश्यक वस्तुएं खींचा लाता है ।

स्यामला विमला मंगला अला आदि को देव कर राधाधका उनसे मिले मिलता है और रात्रि का रस कथा कहते कहते रसोद्गार से उनका कंठ कदगद हो जाता है । अपने मन्त्र प्रार्थना कर गये कृष्ण के मुखार को राधाउच्छल दृश्य से बलाना है । जातिर मित्र प्रचार विधाताने उनका निमणिकाया है, प्रेम जो जना करती है परन्तु उनके हा प्रेम में यह अवस्था जाता ही ?

और विविध तसरीजल सुलसतो वाला, फेवा नाहि करे प्रेनकार
रत ज्वाला ।

जानदार कहै नुर कारे कि दलित, बन्धुर लागे या हाम जागरे
पाशब ।

अनुराग के अतिरिक्त में उनका मन अन्य अपना वस्तुओं से उचर हो जाता है ।
और मात्र में पुलक नेत्रों में जलमाया रहता है । राधा के व्याकुल चित्त को
सा संभ्यां विरता प्रकार स्थिर करती हैं तथा उसे स्नान करवाकर उसका शरीर
शृंगार किया जाता है ।

अधर कृष्ण सदा कृष्ण कामुल धुल्लाकर उसका शृंगार करते हैं ।
कुन्दलता राधा को आश्वस्त करके राधा को लिता ले जाती है । और मार्ग में
कृष्ण से मिलता कर यशोदा के यहाँ पहुँचा देती है । यशोदा का राधा पर
बहुत ममत्व है । राधा भी तरह तरह के व्यंजन बनाकर यशोदा को खूब
कर देती है ।

३- पूजा के ल से राधा लिखियाँ लेकर दिवाभितार करता है । कृष्ण
राधा से मिलने के लिए अधिक जातुर हैं और उतावलों से चक्किरते हैं कि
न मालूम राधा कब तक नहीं आयेगा ।

देवमूर्त पूजन के कारण राधा कृष्ण से मिलता है और तार।
आराधना का फल कदम्ब तरु के नाचे श्यामल देवता से प्राप्त हो जाता है ।
प्रेम से व्याकुल दोनों एक दूसरे को पहचान नहीं पाते । वे भ्रम वशा में पहुँच
जाते हैं -

हुँ मु. रेरते हुँ मेल धन्द, राख कहै जनाल माधव कहै चंद ।
जात पुतलि जनु दुँ दुँ देह, ना जानिए प्रेम के मन मधुमेह ।^१

यामभ के बाद होला लाला होता है और फिर आन्दोलन
(कूल) लाला । तदनंतर राधा कृष्ण गोपियों के साथ वन में भ्रमण करते हैं ।

इन विहार के बाद नागर नागरा नधु वनन करते हैं । एक तो मधुर प्रेम का उज्ज उन्नाद उस पर मधु वान । राधा कृष्ण शिथिल हो जाते हैं तदन्तर श्री विहार के लिए जल क्रीड़ा का आयोजन होता है । राधा कृष्ण पर शुक्लारो का जातिलाप चल पड़ता है । रुक का गुरु है वृन्दा और शारिका का ललिता । रुक कृष्ण के रूप गुण का बखान करता है और शारिका राधा को । अंत में राधा कहि छाजा होता है । इससे पश्यत् पारा श्रृंगार होता है ।

४- इसमें लोकष्ण गोष्ठ से लौटते हैं वधर राधा भा गृह कार्य से निवृत्त हो जाते हैं । मरला का बनि जुनकर व्रज वनितारं अपने अपने द्वारा पर चढ़ कर कृष्ण के दर्शन हेतु नेत्र बिखार रन्तों हैं ।

कृष्णागमन से प्रफुल्लित हो यशोदा आरता काथाल सजाती है । साखियोंका मोड़ लग जाता है । हर एक कोई, न कोई बाध बजाता है । यशोदा विधि पूर्ण कजाता उतारता है । तथा जिजों को दान देती है । फिर कृष्ण राधा का जना भोजन करते हैं तथा खरिफ में गोदोहन हेतु पशुव जाते हैं ।

५- अपरान्त के अंत में कृष्णानंद अपनन्द के साथ वर से बाहर जाकर जिसो सुरम्य स्थान पर बैठते हैं और नट के समान प्रवृत्ति करते हैं । राधा उमारोहे समाप्त होने के पश्चात् उसके गंगा बलराम और कृष्ण ने अस्त व्यस्त जलंकार जादि उतार कर भोजन का वस्त्र धारण करते हैं । वरणा-प्रजासोपरान्त उन्हें भोजन भवन में ले जाता जाता है । बलराम कृष्ण माया पिता के साथ भोजन उमा रत्नों का अन्न आनंद लेते हैं । फिर उन्हें समन गृह में ले जाया जाता है । घाशोवन के पश्चात् कृष्ण के सो जाने पर राधा अपने अपने घर चले जाते हैं । राधा भा भोजनीपरान्त साखियों से परिभाषित होता है । पुष्पों से श्याम जमाने के पश्चात् राधा को बुलाने जाता है ।

६- कृष्ण के द्वारा आपाइन । २ जाने पर राधा कुटल अभिहार करता

है । तथा भूषी ढंगार करके नासा कमल लथ में लेकर आनन्दार सेतु चल देता है । अररा वातावरण शान्त है । अब लोग माठा माठा नाद का आनंद ले रहे हैं । भवाना कामना, कन्द लतिका, त्रिभुवन सुन्दरा आराधा स्वर्ग चम्पा के निभृत - विभुज में उवास्थित होता है ।

इधर कृष्ण भा जा आरे घर की ओरता देखते हैं भा रेशा ने उठकर मनहारा ढंगार करके अंधेरा रात में हल चल पड़ते हैं । राधा का सखा उन्हें मार्ग में मिल जाता है और वह दोनों का मिलन करके आनंद होता है ।

तत्पश्चात् रास आरंभ होता है । अलियों के अनिदि त्रेकृष्ण त्रिमंगा मुद्रा धारण करके रास रवाते हैं । इसी समय वे त्रिभुवन मोक्ष काम-जया वंशोनाद अपने उंगाल्यों में रन्ध्रों में पूरित करते हैं तथा राधा कृष्ण नृत्य करते हैं । रासोपरान्त अम शान्त हेतु जल छोड़ा होता है । तत्पश्चात् राधाकृष्ण का स्वान्त मिलन होता है ।

७- कुसुम रेशा पर राधाकृष्ण एकमुक्त होकर जन करते हैं । तत्पश्चात् प्रातः ने फिर वही क्रिया आरंभ हो जाता है ।

अष्टम अध्याय

उपसंहार

परवती कवियों पर प्रभाव

उपसंहार

परवर्ती कवियों पर प्रभाव

भारतीय आस्तिकता को जीवन को प्रत्येक अभिव्यक्ति का मौलिक संबंध किसी न किसी प्रकार आलौकिक शक्तियों से स्थापित करने का अभ्यास रहा है । प्रत्येक विधा किसी न किसी प्रकार ब्रह्म अथवा उसके किसी रूप से उद्भूत हुई है , ऐसी उसकी आस्था रहो है । रीतिकाल इससे कूट नहीं ^{का} ~~पछु~~ पाया है । भक्तिकाल के कवियों के काव्य का साहित्य विशाल भंडार पाकर रीतिकालीन कवियों ने उसी परिपाठी पर चलना उचित समझा । उस समय जनता की रुचि समाप्त हो प्रायः ही बुकी थी, अतः काव्य में विलासिता सहस्रोन्मुखी होकर विकसित होन लगी थी लेकिन धर्मभोरु कवियों के लिए एन्द्रिक प्रेम का स्थूल रूप में अभिव्यक्त करना सरल था । अतः उन्होंने राधा - कृष्ण की उपासना को कवच को भाँति अपने काव्य पर चढ़ाकर श्रृंगार के विभिन्न रूपों का वर्णन प्रारंभ कर दिया । इस प्रकार उन्होंने कृष्ण भक्तों की सगुण मधुरा भक्ति के प्रतीक उपास्य तथा उपास्या कृष्ण और राधा को अपने काव्यगत भावनाओं का लक्ष्य बनाया । शायद जीवन की विलासिता तथा रसिकता से जब वे घबरा जाते होंगे तो राधा यही अनुराग उनके धर्म भोरु मन को आश्वासन देता होगा । रीतिकाल का कोई कवि भक्तिहोन नहीं है क्योंकि भक्ति उसके लिए मनोविज्ञानिक आवश्यकता थी । कृष्ण भक्तों का अनुकरण कर अपनो सभी श्रृंगारिक भावनाओं को राधाकृष्ण में समर्पित कर दिया है। कृष्ण-भक्ति साहित्य को आधार मानने के कारण कृष्ण भक्ति साहित्य का प्रभाव रीतिकालीन साहित्य पर भाव एवं कला, दो रूप में प्राप्त होता है ।

श्रृंगारिक रूप में अर्थात् भाव पद्धत में, चमत्कारप्रियता, कलाप्रियता,

अर्थात् साध्य रूप में ।

पद रचना के अतिरिक्त रीतिकालीन कवियों की काव्य-कला कृष्ण भक्त काव्य से विशेषा प्रभावित है । कृष्ण भक्तों को भाँति रीतिकालीन कवियों ने भी कोमलकान्त पदावलीयुक्त ब्रज भाषा को ही अपने भावों को अभिव्यक्ति का साधन बनाया । अतः कृष्ण भक्ति कवियों की अलंकार विधान, उक्ति वैचित्र्य आदि प्रभाव रीतिकाल पर परिलक्षित होता है ।

केशव के बाद विहारी ही रीतिकाल के स्तम्भ हैं । ये कला के शिल्पो समझे जाते हैं । इनके काव्य का गुण है इनकी चित्रात्मक शैली । भावानुरूप शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति छाप इन्होंने भक्त कवि सूरदास से ग्रहण की थी । कृष्ण भक्तों की विशेषता सूर की कलात्मक वर्णयोजना शाब्दिक, चमत्कार, अलंकार योजना का विधान विहारी के काव्य में देखा जा सकता है ।

जिस प्रकार सूर दास जी ने वर्ण संगति, वर्ण मैत्री तथा अत्यानुप्रास द्वारा भाषा को समृद्धि प्रदान की उसी प्रकार विहारी ने उसी वर्ण योजना को अपना कर अपनी भाषा को आजाया है।

विहारी के की मटकनि, लटकनि, चितवनि आदि पर सूर तथा नन्द दास के पदों का गहरा प्रभाव है - नन्ददास का एक पद देखिए :-

त्रवननि कृष्ण रस भवन गंड मंडल मल बरसे ।
 प्रेमानन्द मिलि सुमंद मुसकनि मधु बरसे । (नन्ददास)
 तथा मुकुट लट लटकनि, भूकुटि भटकनि नारियन सुख दैत ।

विहारी का भटकनि लटकनि, चितवनि आदि पर सूर तथा नन्ददास के उक्त पदों का प्रभाव है -

भूकुति मटकनि पोत पर चटक लटकती चाल
 चल चरव चितवनि चौर चितु लियो बिहारी लाल ।

१- नन्ददास गुंथावली, रासपंचाध्यायी, ना० प्र० सभा दोहा ७ पृ० ३
 २- सूरसागर दशमस्कन्ध, ना० प्र० सभा पद ११४८
 ३- बिहारी सतसई पद ३०२

वर्णों तथा व्यंजनों के अतिरिक्त अलंकारों पर भी कृष्ण भक्त कवियों की अमित छाप रीतिकालीन काव्य पर है। रीतिकालीन काव्य पर संस्कृत का भी प्रभाव है। इन्होंने समस्त लक्षणा तथा मान्यतारं संस्कृत के रीतिशास्त्र से ग्रहण की थी। विहारी के काव्य में अनुप्रास, दृष्टान्त, मुद्रालंकार तथा अतिशयोक्ति अधिक प्रयुक्त हुए हैं।

नन्ददास - इहि विधि कुंवरी रूप मंजरी, सुन्दर गिरिघर प्रिय अनुसरी^१
सूरदास - मध्य ब्रज नागरि, रूप रस आगरि, घोष उज्जागरी स्याम
प्यारी^२

गोविन्द स्वामी - मुरली रखनि रस कौ रटनि मटकनि कटक मुकुट^३
चकट प्रिय प्यारी लटकनि लपटि उरसि राजे

अनुप्रास - विहारी - चमकरि मुंह तरहरि परमो, इहि घरहरि चित लाइ^४
विषाय तृष्णा पीहरि अजी, नरहरि के गुन गाउ

इस प्रकार नेत्रों को विशालता कानों तक प्रदर्शित करके ही कवियों ने अपने कवि कर्म को सफल माना है। भावपद्धति में नखशिख वर्णन, सौकुमार्य वर्णन आदि के भावों को कृष्ण भक्त कवियों की भांति ग्रहण किया है। सकुमारता को एक कलक देखिए -

नन्ददास - ता भूपन के भजन कोऊ, दीप न बज बरत सांझ ।
बिन ही दीपटि दीप जिमि, दिपय कुंवरी घर मांझ ।^५

विहारी - आं आं नग जामगत, दीप सिरवासी देह^६
दिया बढ़ार हू रहै, बढ़ी उज्यारा गेह ।

१- नन्ददास ग्रन्थावली, रूपमंजरी, ना००प्र० सभा० पृ० १४३

२- सूरदास, लक्ष्मस्कांद, पद १५१

३- गोविन्दस्वामी, कांकीली, पद ६२

४- विहारी सतसई, दोहा २१

५- नन्ददास ग्रन्थावली, वही पृ० १२०

६- विहारी सतसई दोहा ६६

पत्रा हो तिथि पाइये वा घर के चहुँ पास
नितप्रति पूनी ही रहै आनन ओप उजास

विहारो अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम दोहे जैसे लघु छंद को सनाया था । फिर भी उनको ७०० दोहों को सत्सई के रूपविधान, भाषा सौन्दर्य आदि पर कृष्ण भक्त कवि छाप दिखाई देती है । विहारी के दोहों में मृणाता माधुर्य गुण, नान्दात्मकता, सौन्दर्य जन्य, संगीतात्मकता एवं प्रेक्षणोपयता उतनी मात्रा में नहीं है जितनी हितहरिवंश, धुनदास व्यास आदि राधावल्लभीय कवियों में दिखाई देती है । पद्माकर, मतिराम, घनानंद इस गुण सिद्धहस्त कवि है । धुनदास की अभिव्यंजना शैली का प्रभाव रीतिकालीन कवियों पर किस रूप में दिखाई देता है आगे बता चलेंगे । शब्द शक्ति, अलंकार काव्य गुण और भाषा का प्रवाह यह बताता है कि धुनदास जी ने साहित्य-शास्त्र का विधिकृत अध्ययन किया था । दोहा कवित्त, सवैया, आरिल्ल, कुंडलियां तथा गैय पद रचना पर उनका पूर्ण प्रभाव दिखाई देता है । छंद, भाषा शैली वैचित्र्य आदि की दृष्टि से भक्तिकाल और रीतिकाल कवियों को श्रृंखला जाड़ने वाले कहे जा सकते हैं ।^१

पद्माकर -

----- धुनदास जी का प्रभाव पद्माकर जो के भाव पदा एवं कला पदा दोनों पर दृष्टिगत होता है । राधावल्लभीय सम्प्रदाय में नित्यविहार को अधिक महत्ता दी है । श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य का निरन्तर पान करने पर भी तृप्ति नहीं होती इस भाव को पद्माकर जो ने धुनदास से अधिक सरस एवं सजोव शैली में व्यक्त किया है ।

धुनदास - ज्यों ज्यों लाल देखे मुख नैनन को तृष्णा होत ।

प्यारो जे को रूप मानों प्यास ही को रूप है ।

ढोठि ढोठि रहो मिलि जैसे एक धारा^२ धुन ।

होहूँ भूलो देख दशा अति ही अनूप हैं ।

१- राधावल्लभ सम्प्रदाय - सिद्धान्त और साहित्य, डा० विद्येन्द्र स्नातक, पृ० ४७४

२- धुनदास भजन शृंगार सत लोला, तृतीय श्रृंखला पृ० १०३

पद्माकर - देखि दुग है ही सौं न नेकुहि अधि रन
 ऐसे भूकाभुक में भपाक अंखियां दई
 कोज कहा राम श्याम आनन विलोकिवै को
 विरचि विरचि न अनंत अंखियां दई ।^१

सूरदास के काव्य में यह भावना विशद रूप से अभिव्यक्त की गई है। वहाँ गापियां श्रीकृष्ण रूपमाधुरी का पान करने के लिए समस्त शारीरिक अवयवों के स्थल पर केवल अंखें ही चाहती हैं जिससे कि रूपासव तथा रूपसुधा का पान कर सकें।

वासकसज्जा नायिका का रूप धारण कर समस्त श्रृंगार से विभूषित राधा कृष्ण से अभिसार हेतु साखियों के साथ जाती है। राधा अपने मुख सौन्दर्य से चन्द्रमा को तथा अपने शरीर की सुगन्ध से वन उपवन फीका तथा सुगन्धित करती जा रही है। यहभाव पद्माकर ने कृष्ण भक्त कवियों से ग्रहण किया है। जहाँ जहाँ राधा के चरण पड़ते हैं पृथ्वी मजीठ की भांति लाल हो जाती है।

नन्ददास - जहँ चरन धरँ तरुनि, अरुन होति सी लीहि
 जु धरती धरतो फिर, तहँ तहँ अपनी लीह ।^२

पद्माकर - धरत जहाँई जहाँ पग है पियारो तहाँ ।^३
 मंजुल मजीठ हो के माठ से ढरत जात ।

कृष्ण भक्तों का श्रृंगार वर्णन नित्य विहार की भावभूमि पर प्रतिष्ठित होने के कारण बहुत विस्तृत तथा सांगोपांग वर्णन है। श्रीकृष्ण को उपास्य देव मानकर अपनी भावनाओं को समर्पित होने के कारण वही भाव को

१- पद्माकर - रत्नावली, फुटकल पद, ७६

२- नन्ददास ग्रन्थावली, रूपमंजरी, ना०प्र०सभा, पृ० १२४

३- पद्माकर ग्रन्थावली पद १४७

उदात्त भूमि समझी जाती है। यद्यपि श्रृंगार का इतना स्पष्ट तथा मांसल वर्णन ऐसा कृष्ण भक्ति भक्त कवियों ने कविता किया वैसा रीतिकालीन कवि तो न कर सके परन्तु कुछ छाप अवश्य पड़ी है। कृष्ण भक्तों को भांति रीतिकालीन कवियों ने लंछिता का वर्णन किया है। प्रेम का जो उदात्त रूप छटपटाहट कसक एवं वेदना परकीया में सम्भव है वह स्वकीया में नहीं। जब सलिल अबाध गति से बहता है तो वहाँ पान ने की धारा सदैव शान्त गति से बहती रहती है, जल की धारा में जभी तीव्रता अती है जब उसका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार परकीया में भी स्थल-स्थल पर और बाधाएँ, आशंकाएँ एवं अनिश्चितता होने के कारण उसके प्रेम में ज्वार भाटे का संयोग रहता है। पत्नी १६ श्रृंगार किए अपने पति की प्रतीक्षा में बैठी है, पति के आने पर उनके अलसाये नेत्र तथा उनमें पररतिचिह्न देखकर क्षुब्ध हो उठती है -

नन्ददास - अंजन अघर धरे, पोके लीक सीह आकी
काहे को लजात झूठी सीह खात ।^१

पद्माकर - छवि छलकस भरी पीक पलकन त्योही
श्रमजल कन अलकन अधिकाने ज्वे
कहे पद्माकर सुजान रूपखान तिया
ताकि ताकि रही ताहि आपुहि अजाने हैं ।^२

मतिराम की वर्ण योजना तथा अनुप्रास पर भी कृष्णभक्त कवियों का पूर्ण प्रभाव है।

मतिराम पर कृष्णभक्त कवियों का प्रभाव

अनुप्रास युक्त मृदुल पदावली पद्माकर की भांति मतिराम की भी विशेषता है। अन्य रीतिकालीन कवियों की भांति मतिराम की वर्ण योजना

१- नन्ददास रत्नमवली ग्रन्थावली, पदावली पद, ६६

२- पद्माकर रत्नावली, पद २३

पदावली अनुप्रास आदि पर कृष्ण भक्त कवियों का प्रभाव है। सूर को सरस पदावली का हो विकसित रूप मतिराम को पदावली में मिलता है।

सूर - मुक्तावली मनहुं जा पंगति सुभग अं चरचित कवि चंदन ।
सूरदास प्रभु नीप तरौवर तर ठाढ़े सूर नर मुनि बंदन ।^१

मतिराम - किंकिनी कलित कल नूपुर ललित रव ।
मीन तेरी देखि कै सकति करि गौन को ।
मृदु मुसकानि मुक्खन्द चारु चांदनी सी ।
राख्यो कै उज्यारी अभिराम द्वारा मीन को ।^२

कृष्ण भक्त कवियों ने भाषा को स्वाभाविकता का ध्यान रखा है। उनकी वर्ण योजना व पदावली सरसता का हो संचार करती है किन्तु मतिराम ने भाषा की कोमकांतता पर विशेष बल दिया है। सूरदास जानें कहीं कहीं अत्यानुप्रास द्वारा पदों में बलवत्ता उत्पन्न को है जैसे 'उठे मुसकाइ अकुलाइ अतुराइ कै, निकसि गर स्याम ब्रज नारि जान्यो। यह अत्यानुप्रास की गुण मतिराम के काव्य में भी प्रचुरता से प्राप्त होता है। अलंकार योजना पर भी मतिराम पर कृष्ण भक्त कवियों का यथेष्ट प्रभाव है।

सूर - हमारे हरि हारिल का लकरो
मन बच कृष्ण नन्द नंदन उर यह दृढ़ करि पकरो
जागत सौवत स्वप्न दिवस निसि कान्ह कान्ह जकरी
० ० ० ० ० ० ० ०
यह तो सूर तिनहि ले साँपी, जिनके मन चकरो ।^३

मतिराम - आयो है सयानप गयो है अजान मन,
तौहू उठि मान करिबे को टैक पकरो ।

० ० ० ० ० ०

१- सूरसागर, दशक स्कन्ध, ना० प्र० सभा० पद २३६८

२- मतिराम रत्नावली, पद ८६

३- सूरसागर, दशम स्कन्ध, ना० प्र० सभा, पद ३६८८

हा हा के निहारे हू न भरति हनि नैनो,
काहे को करति छठ हारल को लकरो ।^१

देव पर कृष्णभक्त कवियों का प्रभाव

विहारो, पद्माकर तथा मतिराम के पश्चात् देव पर कृष्णभक्त कवियों का प्रभाव यथेष्ट रूप से परिलक्षित होता है । देव के कला पदा तथा भावपदा दोनों पर ही प्रभाव दिखाई देता है ।

अनुप्रासिक मधुर वर्णों की योजना देव की एक विशेषता है । देव को इस छ योजना पर बुरादि कृष्णभक्तों का प्रभाव दृष्टिगत होता है ।

सूर - राधे छिरकत छोट छबोली ।
कुच कुंकुम कंचुकि बंद छूटे लटक रहो लट गीलो ।^२

देव - वारि के बुंद चुर्वं चिलकि अलकें छवि छलकें उखलो सो ।
अंजल भरीने भकें भलकें पुलकें कुच कन्द कदम्ब कलो सो ।^३

उक्त पद में अनुप्रास की सुन्दर छटा है । अनुप्रास के प्रयोग में देव ने व्यञ्जना विशेषा पर बल न देकर सूक्ष्म कोमल वर्णों में विशेषा ध्यान दिया है । देव ने समासहीन छोटे छोटे मधुर शब्दों की लड़ी प्रस्तुत कर दी है ।

अभिव्यञ्जना पदा के अतिरिक्त देव के भाव पदा पर भी सूर का प्रभाव विद्यमान है । विधापति के उपरान्त सूर का सूरसागर ४ शृंगारिक कविता का भी सागर है । वह इनके प्रभाव से मध्यकाल का कोई भी कवि बन नहीं सका है। उनका काव्य संयोग, क्रीड़ा, उपालम्भ तथा विरह का अमित भंडार है । देव ने भक्ति और कविता दोनों को दृष्टि से सूरसागर का परायण किया होगा ।

१- सूरसागर दशम स्कन्ध, ना० प्र० सभा, पद १७७८

२- देव और उनको कविता, ना० प्र० सभा, पृ० २६८

इन्होंने उन सभी प्रसंगों को ग्रहण किया है जिन पर सूर की क्षाप है। प्रेम के कारण मर्म को अभिव्यक्त करने वाला सूर का देव ने ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है -

सूर - बांह छुठार जात ही निबल जानि कै मोहि ।

हिरदै ते जब जाहुगे मरद बढ़ोगी तोहि ।

देव - ऊँधी हहा हरि सों कहियो तुमहो न यहाँ यह ही नहि मानो ।

या तन तैं बिकुरे तो कहा मन तैं अनतैं जो वसों तब जानो ।^१

भक्ति और विनय के पदों के अतिरिक्त रामलीला, संयोग, झोड़ाओं, खंडिता प्रसंगों तथा उच्छ्व गोपी संवाद पर कृष्ण भक्त सूरदास का अभिष्ट प्रभाव है। अन्य रीतिकालीन कवियों को भांति देव ने भी कृष्ण भक्त कवियों का प्रभाव पर्याप्त रूप से ग्रहण किया है।

देव को रामलीला के वर्णन कृष्णभक्तों से अति प्रभावित है। रास प्रारंभ होने पर गोपियाँ कुल-कानि, लोक लज्जा व गृह कार्य भूल कर किस आतुरतापूर्वक कृष्ण से मिलने जा पहुँचती हैं, यह भाव सूर तथा देव में अद्भुत है।

सूर - भंजन अंजन अं शृंगार, पट भूषण कूटो परिवार,

रास रसिक गुण एक गाय है ।

एक दुहावत तैं उठि चलि, पति सेवा कछु करि न भलो गाय ही,

उत्कंठा हरि सों बढ़ी ।

उफानत दूध न धरयो उतारि, सीधो थुलहो बुलकि बुलि है डारि

पुरुष तजे अवत हुते ।

पैष्यावत बालक धरि चलो पति सेवा कछु न करो मली धरयो

रह्यो भोजन भलो ।^२

१- देव और उनकी कविता, ना० प्र० सभा, पृ० २६८

२- सूरदासर रासलीला

देव - घोर अरु नीजन विपिन तरुनो जन है ,
 निकासीनिसंक निसि आतुर अतंक मैं ।
 गनै न कलंक मृदु लंकनि मयंक मुखो,
 पंकज पगन धाई भागि निसि पंक मैं ।
 भूषाननि भूलि पन्है उल्टे दुकूल देव,
 खुले भुजमूल प्रतिकूल विधि बंक मैं ।
 चूल्हे चढ़े छाँडे उफनात दूध भाँडे उन,
 सुत छाँडे अंक पति छाँडे परजंक मैं ।^१

अन्य प्रभाव के लिए डां नौन्द्र की निम्न पंक्तियाँ देखिए -

गोपियों की आतुरमतत के लिए देव ने पावस नदी की उपमा दी है, ' पावस नदी से ग्रह पावस नदी से पर उमड़ी अंगत तरंगित उरनि से ' ।

यह उपमा भी सूर की है जैसे, ' जल प्रवाह भादों की से को सके बहोरि ' ।

रास लीला के अतिरिक्त सुरति दानलीला तथा देव चरित के गोवधन धारणा आदि प्रसंगों में भी देव ने सूर से भाव तथा धटनाओं के संकेत ग्रहण किए हैं । पूणाय परिहास का वह मधुर चित्र जिसमें गोपियाँ राधा को राजपौरियाँ बनाकर कृष्ण को छकाती हैं, सूर से ही ग्रहण किया है । अथवा रीतिकाल के कवियों ने कहीं कहीं तो ज्यों का त्यों भाव ग्रहण किया कर लिया है । कहीं छायामात्र है कहीं अंशतः ग्रहण किया है । जहाँ कृष्ण भक्त कवियों ने राधा व कृष्ण को पारस्परिक श्रृंगारिक क्रीड़ाओं का सूक्ष्मातिशूद्ध वर्णन किया है, वहाँ वर्णन स्थूल या सगुण आधार होने के कारण लौकिक व पार्थिक हो गया है और दाम्पत्य रस एवं परकीया प्रेम अपने सभी रूपों सहित वहाँ विद्यमान है । इसी प्रेम प्रेम प्रणाली की रीतिकाल के कवियों ने अपनी सुझ

बुद्ध एवं प्रतिभानुसार विभिन्न रूपों में चित्रित किया है। रीतिकालीन कवि वैष्णवों के कृष्णभक्तों के समान साधक न थे। अतः उनके श्रृंगार वर्णन में आध्यात्मिकता का आवरण भी अनायास ही उतर गया है और उसका शुद्ध लौकिक रूप आलोचकों की दृष्टि में निन्दनीय बन गया है। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन कवियों की वाक्-विदग्धता, भाषा का लावण्य तथा माधुर्य और अहात्मक शैली का पूर्व रूप भी हमें कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं में मिल जाता है। कृष्णभक्तों के काव्य का बाह्य अभिधेयार्थ भी रीतिकाल के समकक्ष है। शब्द शक्ति, अलंकार, काव्य गुण, भाषा का प्रभाव यह बताता है कि कृष्ण भक्तों ने साहित्य शास्त्र का विधिपूर्वक परायण किया और उसी के अनुसार अपने भक्तिप्लावित काव्य का सृजन किया था। उनके काव्य में सभी कवि प्रसिद्धियाँ, अलंकारिक कृंद आदि उसी रूप में प्राप्त होते हैं जैसे परवर्ती रीतिकालीन कवियों द्वारा ग्रहण किए गये थे। पांडित्य भावना, चमत्कारप्रियता, बहुप्रसंग अनुप्रास योजना, वर्णयोजना आदि सभी पर कृष्ण भक्तों का अभिष्ट प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। रीतिकालीन सूक्त-बुक्त काव्य चमत्कार आदि पर परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से कृष्ण भक्तों का प्रभाव दिखाई देता है।

रत्नाकर और वल्लभ सम्प्रदाय

रत्नाकर जो का प्रमुख ग्रन्थ उद्धव शतक है जिस पर वल्लभ सम्प्रदाय को स्पष्ट छाप दृष्टिगत होता है ।

उद्धवशतक को भ्रमरगोत परम्परा में ही रखा गया है । यद्यपि उद्धव शतक में भ्रमर का संदर्भ लेणामात्र नहीं है, केवल एक छंद में गुन गुन ध्वनि उपस्थित हो गई है तथापि श्रीमद्भागवत के दशक स्कन्ध के ४६वें तथा ४७वें अध्यायोंके आधार पर उद्धव गोपी संवाद को भ्रमर गीत कहा गया है । सूरदास, नंददास, हितवृन्दावनदास, रोमानेश रघुराजसिंह, सत्यनारायण कविरत्न आदि की रचनाएं इसी कोटि में आती हैं । देव मतिराम पड़नाकर आदि ने भी इस परम्परा पर काव्य रचे । उद्धव शतक को कथाको रत्नाकर जो ने निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया है ।

- १- उद्धव का मथुरा से ब्रज जाना । कृष्ण के वियोग का चित्रण है ।
- २- उद्धव की ब्रज यात्रा । ३ छंद
- ३- उद्धव का ब्रज में पहुंचना । ६ छंद
- ४- उद्धव के ब्रज वासियों से वचन । ४ छंद
- ५- उद्धव के प्रति गोपियों के वचन । ६३ छंद
- ६- उद्धव की ब्रज विदाई । ५ छंद
- ७- उद्धव का मथुरा लौटना । ६ छंद
- ८- उद्धव के वचन श्री भावमान प्रति । ६ छंद

उद्धवशतक में कवि ने अपनी धार्मिक भावना का अभिव्यक्ति का है । निगुणभक्ति पर सगुण भक्ति को विजय दिखाई है । उद्धव का निगुण ब्रह्म को उपासना करने का अनुपदेश गोपियों के वृद्धा भक्तिपूर्ण विश्वास के समक्ष निरर्थक सिद्ध होता है । यदि उद्धव को कृष्ण को संदेश न पहुंचाना होता तो ब्रज में हो कुटार बना कर रहते -

छावते कुटोर कूं रम्य जमुना के तीर ,

गौन-रौन रति सौं कदापि करते नहीं ।
 कहै 'रत्नाकर' बिहाई प्रेमगाथा गूढ़,
 स्त्रीन रजना में रस और भरते नहीं ।^१

निगुण यही पराजय रत्नाकर जो के इस काव्य की विशेषता है और यही उद्धवशतक की महत्ता है ।

सूर को भक्ति भावना उमुड़ को एक लहर है जो अनायास ही उमड़ कर तटप्रान्त को जलमग्न कर देता है । प्रचल भक्ति की लहरें बंधनों के तट को तोड़कर असीमित हो जाती हैं और ज्ञान एक उच्च गंभीर एवं गहन पर्वत है जो तट पर स्थित है और भक्ति लहरों के इस आवेग को रोकने में असमर्थ है तथा स्वयं ही जलतरंग में तरंग हो उठता है ।^१ लज्जस० अरुणस० कसे० अरुणस० स० स० रत्नाकर का उद्धव ज्ञान रूपी गंभीर गहन पर्वत, गोपियों की पागलतन्त्र्य भक्ति की असीम सागर लहरों से तरल हो उठता है । इस तथ्य को अभिव्यक्ति रत्नाकर जोने बड़े ही कलात्मक ढंग से को है ।

हिन्दो साहित्य को अमूल्य एवं सर्वश्रेष्ठ विभूति तुलसीदास जो भी ज्ञानभक्ति निगुण सगुण के इस विभेद को सम्यक् ढंग से उपस्थित करने में असमर्थ रहे । पहले ज्ञानभक्ति, निगुण-सगुण तथा जोवब्रह्म शून्य में अविद स्थापित किया है -

निगुणाहि सगुणाहि नहि कछू भेदा,
 उभय हरहि भव सम्मज सदा ॥^२

निम्न उदाहरण में कवि ने गोपियों की विरह गाथा का मार्मिक वर्णन किया है जो नन्ददास जो के वर्णन से मेल खाता है -

दुःख सुख ग्रीष्म और सिसिर न व्यापे जिन्हें,

१- रत्नाकर और उनका काव्य, पृ० ७८

२- मानसदर्शन - डा० रम० के० लाल, पृ० १०६

३- रामचरितमानस - गोस्वामी तुलसीदास जो ।

क्षापे क्षाप रत्न लिये ब्रह्म ज्ञान वसाने में ।
 कहै रत्नाकर गंभीर सोई उद्धव की,
 धरि उघरान्यो आनि ब्रज के सिवाने में ।
 और मुख रंग भयो सिथिलित आ भयो,
 बैन इवि दंग भयो गर गरुवाने में ।
 पुलकि पसोजि पास चांपि मुरफाने कांवि,
 जानै कौन बहति बयारि बरसाने में ।

नन्ददास जी के काव्य में माघ मास में पाला पड़ने लगा है, विरह
 में दुःख की अनुभूति और भी तीव्र हो उठता है । नायिका कोमल बेल के समान
 मुझी जातो है । इसी भांति थोड़ी देर के लिए निद्रा उसे अपनी गोद में सुला
 लेतो है । स्वप्न में नायिका को स्मृति व्याकुल बना देतो है, स्व-प्न मिलन
 उसी भांति होता है जैसे चकई स्वयं अपनी छांह को ही छूने का प्रयास करती है-

बिन अरु रजनी पर तुषाररा, शीतल महा आनि को फारा ।
 मृदुल बेलि सो ब्रज कोबाला, भुरकि चलि हो गिरधर लाला ।
 अरु कहियो नलि हरि सो ऐसे, देखे जात दुःखहि तुम जैसे ।
 जो कबहुं हठि नांद ऊनये, सांविरे प्रिय सपने में पेये ।^१

रत्नाकर जी रस से अधिक स अलंकार शैली का अपनाने वाले हैं किन्तु जिस
 प्रकार से अलंकार सम्प्रदाय के प्रमुख अनुयायी रस तथा अलंकार को एक दूसरे
 का पोषक मानते हैं इसी प्रकार रत्नाकर जी का उद्देश्य भी अलंकार को सहायता
 से रस को पुष्ट करना ही जान पड़ता है। वास्तव में अलंकार का अलंकारत्व
 इसी में है कि वह प्रकृत अर्थ तथा प्रस्तुत रस का पोषक हो । यदि इस कार्य
 को करने में समर्थ नहीं होता तो अलंकार कविता कवियों के लिए भातृभूत हो
 जाता है ।^२

१- विरह मंजरी, नागरी प्रचारिणां सभा, पृ० १७१

२- भारतीय साहित्य शास्त्र, पृ० १०० - बलदेव उपाध्याय ।

रत्नाकर जी प्रमुख रूप से शृंगारो कवि हैं। शृंगार के मनोरम चित्र खाने में उन्होंने पर्याप्त कला का परिचय दिया है। शृंगार को आश्रयो-भूता राधा अथवा गोपियों का एक अजीब चित्र अपने शब्दों में कवि ने इस प्रकार खींचा है -

भरि जीवन गागरो में इठलाइके, नागरी चैटक पारि गई।
रतनाकर आहट पाई कलू, भरि घूँघट हारि निहारि गई।
करि बार कटाच्छ कटारिनि सौं, मुअकानि नरोचि पसारि गई।
भये धाय हिये में अधायघने, तिनपै पुनि चांदनो पारि गई।^१

सूरदास जी ने ब्रज में कभी दधि बेचते समय कभी पनघट पर कभी गोचारण स्थल पर गोपियों को कृष्ण से भेंट हो जाती है, वे एक एक कृष्ण को निहारती रहती हैं। गोपियों को इस आसक्ति। प्रेमाभिन्नव्यक्ति एवं शृंगार से पूर्ण चित्र कृष्ण-भक्ति साहित्य का विशेष अंग है। निम्न पद उपरोक्त कवि रत्नाकर के पद का भाव रखता है -

आवत ही जमुना भरे पानी
श्याम वरन काहू को ढोटा निरखि वदन धर गई भुलानी
उन मो तन में उन तन चित्यो, तबहि तैं उन हाथ विकाना
उर ~~अकक~~ धकधको टकटकी लागो, तनु व्याकुल मुख फरत न बानी।^१

१- शृंगार लहरो

२- सूरसागर (दशम स्कन्ध) अ० प्र० पृ० २०३

केशवदास और वल्लभ सम्प्रदायी कवि

यहाँ हम केशवदास के प्रकृति वर्णन के कुछ पदों के तुलना करेंगे क्योंकि अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है। केशवदास जी ने प्रकृति को अनेक रूपों में अभिव्यक्त किया है। यहाँ उदोपन रूप का उदाहरण है। वास्तव में उदोपन की दृष्टि से काव्य-शास्त्रों बसंत और वर्षा के विशेष महत्त्व दिया गया है। संयोग हो या विरह दोनों के ही मन को वर्षा उत्कंठित कर देता है। इसी कारण कालिदास ने इसे 'कामिजनप्रिय' कहा है। यह मनमोचन कराने वाली कृत है। विरह में शीतल चन्द्रमा सूर्य सा प्रतीत होता है, दिशारं अग्नि की प्रतीत होन लगता है -

हिमांशु सूर ही ली ली बात बज्र ली बहे ।
 दिशा ली कृसानु ज्यों विलेप अंग का रहे ।
 विशेष कालराति, सो कराल राति मानिए ।
 वियोग सीय को न काल लोक हार जानिए ।^१

वर्षा के दिन किसी प्रकार रीति कल्पते बात गर । शरद ऋतु के आगमन रहे
 सहे प्राणों को भो हर लैन को ठान ला है । श्याम के बबिब बिना शरद रात्रि
 फोको लगता है । चन्द्रमा को किरणों विद्या के समान प्राणाघातक ला रही है ।
 अब तो प्राण हो कृष्ण के बिना प्रयाण करने को उत्सुक हैं -

भाई अब तो यह शरद निसा लागत है फोको ।
 श्याम सुन्दर अंग रहत तब हा ये नोको ।
 ससिहर संताप कारी बरसत विषा बूंदे ।
 मारुत सुख सुभाय तज्यो दसो दिशा मुँदे ।
 परमानंद स्वामी गोपाल परिहरि हम सिरबई ।
 प्राण पयान करत चाहत मिलहु कपट विषाई ।^२

१- रामचन्द्रिका बारहबां प्रकाश अंश ४२

२- परमानंददास पद संग्रह पद २४१, दा-दयाल गुप्त के संग्रह से ।

रातिकाल तथा आधुनिक काल के कवियों का भांति मध्यकालीन दृष्टान्तक कवियों ने भी गुंगार को ओ-क उपकरणों सहित अभिव्यक्त किया है। जिस प्रकार ऊपर साम्यता दिखाई जा चुका है उसी प्रकार अनेक स्थानों पर साम्यता दिखाई देती है।

भारतेन्दु जो तथावल्लभ सम्प्रदाय का कवि

भारतेन्दु जो युग प्रवर्तक कलाकार थे। इस काल में राष्ट्रियता का लेप सा हो गया था। युग पुरुष अपने विचारधारा में जन जागरण का संकेत करता दृष्टिगत होता है। सज्जन राष्ट्रवादी कलाकार यत्र तत्र अपने भावपूर्ण गीतों में सामाजिक चेतना का संदेश फूंकता दिखाई देता है। भारतीय पतन के मूल कारणोंको इंगित करते हुए अत्यन्त दार्ढ्यपूर्ण शब्दों में जन समाज की उदात्तता अंगठन, अंध परम्परा आदि को देख कलाकार की महान पीड़ा का अनुभव होता है। भारतेन्दु के गीत उनको अन्तर्जाति को अभिव्यक्ति है। कलाकार चेतन प्रणवी है, देश और समाज को सज्जन करना उसके जीवन का आद्य ज्ञान पड़ता है। काव्य में दो पक्षोंका निरूपण मिलता है - कलापक्ष और भावपक्ष। भारतेन्दु जो में काव्य-प्रचुरता से भर पाई जाती है। कमलात्मक अन्ति अभिव्यञ्जन तथा काव्य चमत्कार प्रदर्शन भी उक्त गीतों में प्रदर्शित होता है। ऐसे गीतोंको कलापक्ष में रखा जा सकता है। गीतों में जहाँ भावात्मक उदात्त को परिपुष्टि होता है तो वहाँ भावपक्ष के अन्तर्गत हो जाता है।

कलात्मक दृष्टि से नाट्यकार ने अधिकांश शब्दों का योजना केवल चमत्कार तथा अलंकारिकता का प्रदर्शन करने के लिए दो है। रातिकालीन शायर लिए हुए शब्दों का प्रयोग नाट्ययोजना में भी अधिकतम से मिलता है। कहीं - कहीं पर सेनापति तथा देव के उत्कृष्ट शब्द उद्धृत किए गये हैं। कलात्मक चमत्कार में अनुप्रासों का मंजुल कटा पर विनाम करने वाले वर्णन में

काव्यकौशल देखिए -

तरुनि तनुजा तट तमाल तरुवर बहू छाये ।
फूके फूल सी जल-परान हित मनहूँ सुधार ।^१

निम्न अवतरण में रूपालंकार का छटा बहुत हा लालित्यपूर्ण प्रतात होता है ।
रसमें बसंत वर्णन का अभूतपूर्ण छटा देखिए -

पोरी तन परयो फूलो सरसो सरस सोई ।
मन मुरकान्यो पतकार मनो लार् है ।
सीरो स्वास त्रिविधि समीर सो बहती सदा ।
अंख्यां बरसि मधुकरि सी लाई है ।
‘हरिचन्द’ फूले मन मन के मसूसन सों,
ताहि सो रसाल बाल बढिके बौराई है ।
तेरे बिकुरे तैं प्रान कंत के हिमन्त अंत,
तेरो प्रेम योगिनो बसना बनि आई है ।

इसके अतिरिक्त श्रोत स्वामी कुंभनदास और चतुर्भुजदास आदि वल्लभ सम्प्रदायी कविगणों ने भी इनो प्रकार के प्रकृति चित्रण किए हैं । श्रोत स्वामी ने निम्न वर्णन वसंत, धमार, और फाग के अन्तर्गत किया है । इन्होंने प्रकृति को अधिकांश संयोग रूप में चित्रित किया है । वसंत के आगमन पर प्रकृति का शोभा सहस्रशृंगुनी हो उठती है, इसका वर्णन देखिए-

आयो रितु राज साज पंचमी बसंत आज ।
मीनें द्रुम अति मनूप अंब रहे फूलो ।
बेलि लपुटी तमाल सैत पीति कुसुम लाल ।
उडवत रंग स्याम भाम मंजर रहे फूली ।
रजनी सब भई स्तब्ध सरिता सज विमल पच्छ ।
उड़गन पति अति अकाज परसत रस मूली ।

१- उत्तम प्रताप, तासरा दृश्य ।

२- श्रोतस्वामी पद अग्रह = काकरीली, पद ५२

उपराक्षत दोनों उदाहरणों में दुःख साम्यता अविगत होता है । हमें अनेक प्रकार
 प्रकार हम और अनेक स्थलों पर साम्यता पाते हैं । यहाँ इतना ही समाधान
 है । इस प्रकार भारतेंदु हरिश्चन्द्र पर वल्लभ सम्प्रदायी कवियों का कहीं-
 कहीं प्रभाव परिलक्षित होता है ।

सहायक ग्रन्थों की तालिका

- १- मध्ययुगीन हिन्दी कृष्ण भक्तिधारा और चैतना सम्प्रदाय,
लेखिका डा० मीरा श्रीवास्तव
- २- निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्णभक्त हिन्दी कवि।
(नारायण दत्त शर्मा)
- ३- भागवत सम्प्रदाय (भारतवर्ष के वैष्णव सम्प्रदायों का एक
गम्भीर अध्ययन (वल्लभ उपाध्याय) नागरी प्रचारिणी
सभा, काशी, सं० २०१० वि०
- ४- रत्नाकर और उनका काव्य,
लेखिका कुमारी ऊषा जायसवाल, एम०ए०, एल्०टी०
- ५- केशव और उनका साहित्य,
डा० विजय पाल सिंह
- ६- कृष्ण भक्ति साहित्य और रीतिकाल परम्परा,
(राजकुमारी मित्तल)
- ७- सूर सागर में पुष्टिमागीय भावना,
(डा० धर्म नारायण बोधन)
- ८- परमानंद सागर में पुष्टिमागीय तत्त्व,
(भावान सहय, एम० फिल० हेतु)
- ९- सूर और उनका साहित्य,
(डा० हरवंश लाल शर्मा)
- १०- भागवत दर्शन,
(डा० हर वंश लाल शर्मा)
- ११- हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव,
(१४वीं से १७वीं शताब्दी (विश्वनाथ शुक्ल)

- १२- श्रीमदभागवतं (श्री वेदव्यास संस्कृत की वाठविभिन्न
टीकाओं से संवलित, सम्पादक श्री नित्य स्वरूप
ब्रह्मचारी) वृन्दावन, सं० १९६० वि०
- १३- अष्टछाप परिचय,
(प्रभुदयाल मिश्र)
१४- परमानंद सागर,
(डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल)
भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़
- १५- श्रीमदभागवत महापुराण (श्री वेदव्यास अनुवादक श्रीमुनिनाथ)
गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण १९६७ वि०
- १६- श्रीमदभागवत गीता,
१७- सूर सागर (सूरदास २ खंड नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)
तृतीय संस्करण सं० २०१५ वि०
- १८- नन्ददास ग्रन्थावली,
(नन्ददास, सम्पादक श्री ब्रजरत्न दास)
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम सं० २००६ वि०
- १९- अष्टछाप वीर वल्लभ सम्प्रदाय,
(डा० दीन दयाल गुप्त) प्रथम सं० २००४ वि०
- २०- मीराबाई की पदावली,
(सम्पादक श्री परशुराम चतुर्वेदी),
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सप्तम संस्करण,
सं० २०१४ वि०
- २१- रसज्ञान वीर धनानंद,
(सम्पादक स्व० बाबू अमीर सिंह)
हलाहाबाद प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण, १९२६ ई०

२२- श्रीहित सुधासागर,

(संकलयिता स्वं जीवनी लेखक चौबे नवनीत कवि)

मथुरा ब्रह्मा प्रेम, इटावा, प्रथम संस्करण, सं० १६६७ वि०

२३- ब्रज माधुरी-सार,

(सम्पादक श्री वियोगीहरि)

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, चतुर्थ संस्करण,

संवत् १९६६ वि०

२४- भारतीय साधना और सूर साहित्य,

(डा० मुंशीराम शर्मा सोम आचार्य शुक्ल)

साधना सदन, कानपुर, १९५३ ई०

२५- मध्यकालीन प्रेम साधना,

(श्री परशुराम चतुर्वेदी)

साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद, प्र०स०, १९५२ ई०

२६- धनानंद ग्रन्थावली,

२७- नन्ददास ग्रन्थावली,

(ब्रज रत्नदास) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,

सं० २००६ ।

२८- सूर साहित्य की झुल्लूँ का,

(रामरत्न भटनागर व श्री वाचस्पति त्रिपाठी)

२९- सूर निणय,

(प्रभुदयाल मिश्र व श्री द्वाकि प्रसाद त्रिपाठी)

३०- हिन्दी साहित्य का इतिहास,

(श्री रामचन्द्र शुक्ल)

३१- सूर की भाषा,

(डा० प्रेम नारायण)

३२- अष्टकाप,

(विद्या विभाग कांकरौली)

- ३३- ब्रज भाषा साहित्य का नायिका भेद,
(प्रभु दयाल मिश्र)
- ३४- सूर साहित्य,
(आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी)
- ३५- अष्ट छाप,
(धीरेन्द्र वर्मा)
- ३६- अणार भाष्य,
(वल्लभाचार्य)
- ३७- श्री सुबोधिनी टीका,
(वल्लभाचार्य)
- ३८- सूर की कान्की,
(प्रेम सत्येन्द्र)
- ३९- भक्तमाल,
(नाभादास)
- ४०- सिद्धान्त मुक्तावली,
४१- सिद्धान्त रहस्य
४२- हरिराय वाडःमुक्तावली, भाग१,
(श्री हरिराय)

पत्र-पत्रिकारं

- १- कल्याण - साधनांक वीर भक्ति चरितांक
२- अभिनव भारतीय - हरवंश लाल शर्मा

